प्रस्तुत कृति का नाम	–	समयसार प्रश्नोत्तरी
आधार	–	श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति टीका
मंगल आशीर्वाद	–	प. पू. आचार्य 108 श्री सन्मति सागर जी महाराज
ग्रन्थमाला के प्रेरणा श्रोत	–	क्रान्तिकारी धर्मोपदेशक 108 मुनि श्री सूर्यसागर जी (अरगकर)
ग्रन्थ माला संरक्षक	–	श्री राजेन्द्र प्रसाद जी बडौली वाले X/472 जैनगली रघुबर पुरा नं. 1 गांधी नगर दिल्ली.31
प्रश्नोत्तरी कर्ता	–	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी प्रखर प्रवचन कर्ता सिद्धान्त के ज्ञाता मुनि श्री सूर्यसागर जी (अरगकर)
प्रधान सम्पादक	–	विद्यावारिधी प्रोफेसर टीकम चन्द जैन एम-84 नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 फोन - 2280137
प्राप्ति स्थान	–	प. पू. आचार्य 108 श्री सन्मति सागर जी संघ एवं अनिल कुमार जैन X/511 गांधी नगर, दिल्ली-31
सर्वाधिकार सुरक्षित	–	पू. मुनि श्री सूर्य सागर जी (अरगकर) द्वितीय संस्करण 1000 प्रति वर्षायोग सन् 1996 दिल्ली
लेजरटाइपसेटिंग	-	पी-मोनिका ग्राफिक्स फोन : 2433293
मुद्रक	:	गीतांजलि प्रिन्टर्स, गांधी नगर

सादर समर्पित

अज्ञानान्धकार के कूप से निकालकर सन्मार्ग की ओर लगाने वाले

भगवान महावीर तीर्थंकर के अनुगामी अहिंसा के पुजारी,

प्रशान्तमूर्ति, समाधि सम्राट मुनिकुंजर चारित्र चक्रवर्ती

श्री 108 आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर)

के

तृतीय पट्टाधीश

तपस्वी सम्राट

भारत गौरव

वात्सल्य रत्नाकर

सिद्धान्त चक्रवर्ती

सन्त शिरोमणी

आचार्य श्री 108
सन्मति सागर जी महाराज

की जन्म-जयन्ती के सुअवसर पर

सादर समर्पित

मुनि सूर्यसागर (अरगकर)

मुनि कुंजर समाधि सम्राट चारित्र चक्रवर्ती
आचार्य 108 श्री आदिसागरजी (अंकलीकर)
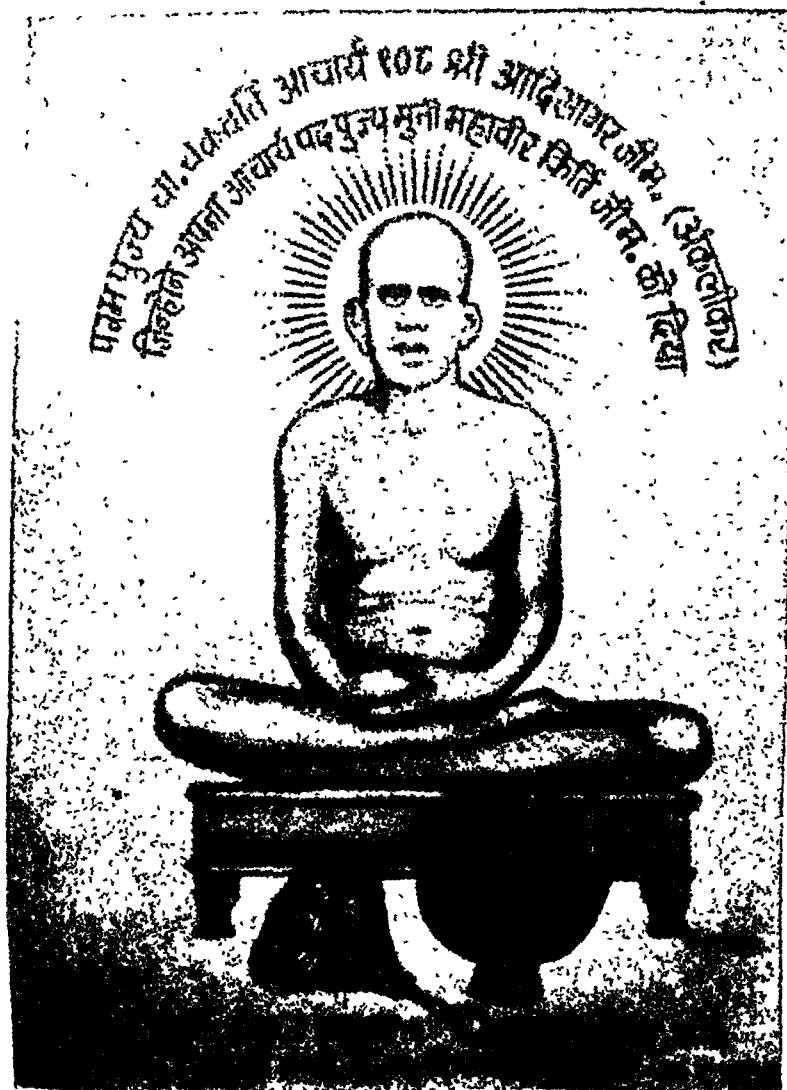
जन्मतिथि	*आचार्य पद*	*समाधि*
फाल्गुण कृ. 13	ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी	महाशिवरात्रि
सन् 1866	1915	1944 उदगांव
अंकली	जयसिंगपूर	कुंजवन महाराष्ट्र

मुनि कुंजर चरित्र चक्रवर्ती परम पूज्य 108 आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर का संक्षिप्त

जीवन परिचय एवं परम्परा

जन्मस्थान-	महाराष्ट्र प्रांत-सांगली जिला-कृष्णा नदी के किनारे वसा मनोहर सुन्दर ऐसा अंकली ग्राम में हुआ।
जन्म का नाम-	शिवगौंड़ा पाटिल
पिता का नाम-	श्री सिद्ध गौंड़ा पाटिल
माता का नाम-	श्रीमती अक्का वाई
पितामाह का नाम-	श्री शंकर गौंड़ा पाटिल
भाई-	दो-(1) वाल गौंड़ा (1) वाव गौंड़ा
कुल-	क्षत्रिय
समाज में स्थान-	गाँव के जागीरदार
वंश अथवा जाति-	चतुर्थ जैन
धर्म श्रवण कराने वाले गुरु का नाम-	पं. अप्पा शास्त्री, उदगाँव जो कि वहाँ से 3 कि.मी. दूर है।
गुरु चरणों में समर्पण-	वाल्यकाल में नादणी मठ के भट्टारक स्वामी जिन्नाप्पा जिसे क्षुल्लक दिक्षा देने विनती और अल्पवय एवं गृहस्थ कर्तव्य पूर्ण न होने के कारण रुकावट।
क्षुल्लक दीक्षा गुरु-	नांदणी गाँव के भट्टारक जिन्नाप्पा स्वामी सन 1906 स्वाति नक्षत्र में
उम्र-	31 वर्ष

ऐलक दीक्षा-	दहिगाँव में जिनेन्द्र साक्षी में स्वयं।
मुनि दीक्षा-	स्वयं श्री 1008 देश भूषण, कुल भगवान एवं पावन सिद्ध क्षेत्र स्थल मुनि दिक्षा (यहीं से छिन्न-भिन्न हुआ शिथिल मुनि निर्दोष प्रारम्भ हुआ।
मूल तपस्या भूमि-	उदगांव कुंजवन तह-शिरोल जनपद-कोलापुर, प्रांत-महाराष्ट्र
मुनि श्री आदिसागर जी के परम भक्त-	दयावान भद्र परिणामी सात गौंड़ा (आचार्य शांति सागर जी दक्षिण वाले)
आचार्य पद प्रदान-	ज्येष्ठ सुदि पंचमी 1915 स्थान-जयसिंगपुर
प्रमुख शिष्य-ऐलक-	शांति सागर जी महाराज एवं महावीर कीर्ति जी महाराज जी। मुनि श्री अभिन्दन (नसलापुर वाले) मुनि श्री-वर्द्धमान सागर जी
आचार्य पद प्रदान-	अपने सुयोग्य शिष्य मुनि श्री 108 महावीर कीर्ति जी को प्रदान किया।
समाधि स्थान-	उदगाँव कुंजवन महाराष्ट्र फाल्गुन बदि तीज सन् 1944
समाधि में उपस्थित साधुगण-	आचार्य महावीर कीर्ति जी, आचार्य शांति सागर जी, आचार्य श्री देशभूषण जी, आचार्य विद्यानन्द जी, मुनिराज नेमी सागर जी एवं अनेक त्यागी व्रति श्रावक-श्राविकाओं के सानिध्य में सम्पन्न हुआ।

आचार्य श्री गुरूपरम्परा के मूर्धन्य साधुगण त्यागीवृती-

1. तीर्थ भक्त, समाज उद्धारक, समाधि सम्राट यंत्र-तंत्र के बिशिष्ट ज्ञाता, चरित्र चक्रवृर्ति 18 भाषाओं के ज्ञाता आचार्य श्री 108 महावीर कीर्ती जी।

2. परम तपस्वी, चरित्र चक्रवर्ती, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य आदि सागर जी के तृतीय पट्टाचार्य आचार्य श्री 108 सन्मति सागर जी।

3. निमित ज्ञानी शिरोमणी, वात्सल्य मूर्ति, तीर्थोद्धारक, समाधि सम्राट, संत शिरोमणी, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य विमल सागर जी।

4. गणधराचार्य, श्रमणोत्म, वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री 108 कुंथू सागर जी।

5. परम पूज्य आचार्य देव संभव सागर जी।

6. प्रवचन केसरी, तर्क शिरोमणि, परम जिनवाणी उपासक आचार्य श्री 108 पुष्प दन्त सागर जी।

7. आचार्य श्री 108 सुधर्म सागर जी।

8. परम जिनवाणी उपासक, सिद्धान्त के ध्याता, शांत मूर्ति आचार्य विमल सागर जी के प्रथम पट्टाचार्य आचार्य श्री 108 भरत सागर जी

9. आचार्य ऐलाचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री 108 कनक नन्दी महाराज जी।

10. आचार्य श्री 108 पदमनन्दि जी महाराज

11. आचार्य कल्प श्री 108 करूणानन्दी जी।

12. आचार्य कल्प श्री 108 हेम सागर जी।

13. आचार्य श्री 108 विराग सागर जी।

14. प्रज्ञाश्रमण, प्रवचन केसरी, आचार्य श्री 108 देव नन्दि जी महाराज।

15. आचार्य श्री 108 कुमुद नन्दि जी।

16. आचार्य श्री 108 कल्पश्रुत नन्दि।

17. बालाचार्य मुनि श्री श्री 108 योगिन्द्र सागर जी महाराज.

18. उपसर्ग विजेता, चरित्र चूड़मणी, जिनवाणी उद्धारक ऐ. शांति सागर जी (सात गौंड़ा आगे आचार्य शांति सागर जी दक्षिण के नाम से देश विख्यात हुए।

19. परमपूज्य 105 क्षुल्लक पाश्र्वकीर्ति महाराज वर्तमान में आचार्य देश भूषण जी के पट्टाचार्य आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी।

इस तरह भारत की पावन भूमि पर मानवता के शांतिस्वरूप धर्म ध्वजा आचरण के माध्यम से लहरा रहा है।
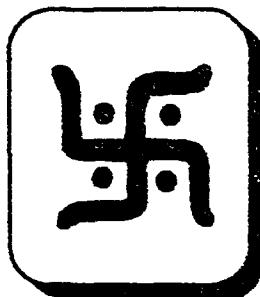
तीर्थ भक्त समाधि सम्राट आचार्य आदि सागर के द्वितीय पट्टाधीश आचार्य महावीर कीर्ति महाराज
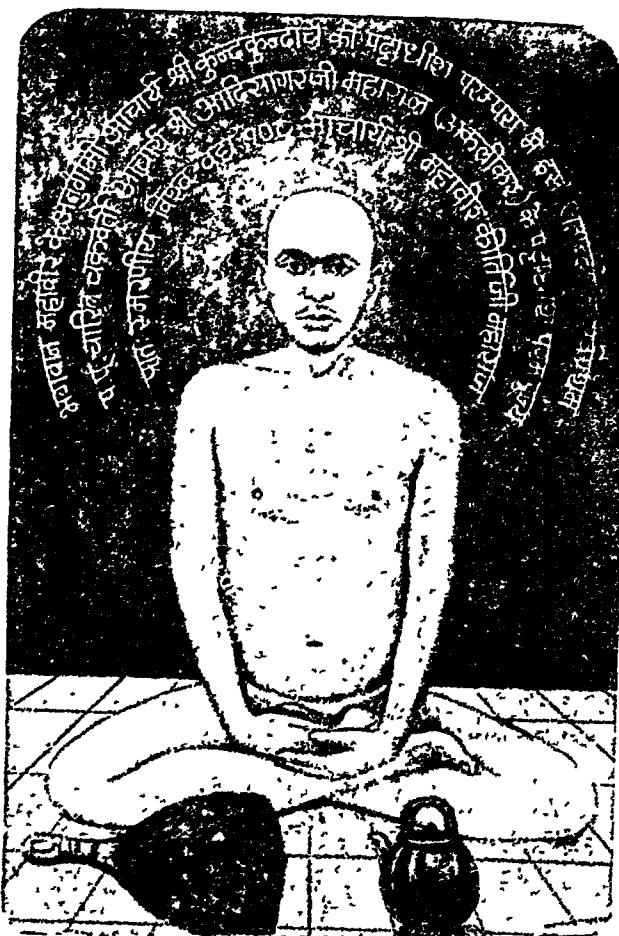
जन्म वैशाख कृष्णा 8 सं 1967 फिरोजाबाद (उ. प्र.)

मुनि दीक्षा सं 1999 ऊदगाँव (महाराष्ट्र)

आचार्य पद सन् 1944

समाधि 6 जनवरी सन् 1972 मेहसाना (गुजरात)

परम तपस्वी आचार्य आदि सागर अंकलीकर के तृतीय पट्टाधीश आचार्य सन्मति सागर जी महाराज

जन्म सं 1995 फफोतू (एटा) उ. प्र.

दीक्षा 2017 श्री सम्मेद शिखर जी

आचार्य पद सं. 2028 मेहसाना (गुजरात)

क्रान्तिकारी, धर्मोपदेशक सिद्धान्त रत्नत्रय के मर्मज्ञ

समयसार प्रश्नोत्तरी के कर्ता

मुनि श्री 108 सूर्यसागर जी (अरगकर)

जन्म तिथि 22-7-1963 श्रावण शुक्ल-दुज अरग (महाराष्ट्र)

मुनि दीक्षा 19 मार्च 1995 पार्श्वनाथ मन्दिर आमेर जयपुर (राजस्थान)

"आशीर्वाद"

तीर्थंकरों की देशना परमागम है। वह गणधरों और प्रतिगणधरों से प्राप्त होती रही है। प्रस्तुत ग्रथ "समयसार प्रश्नोत्तरी" है समय सार के मूल ग्रंथ कर्ता कुंद कुंदाचार्य है, जिनको इस निकृष्ट पंचम काल में प्रत्यक्ष तीर्थंकर सीमधर स्वामी की देशना श्रवण करने का सौभाग्य मिला समयसार अध्यात्म क्षेत्र में सर्वोत्तम ग्रंथ है, अल्पज्ञानियों को क्लिष्ट है, उसपर अमृतचंद्राचार्य ने आत्मख्याति टीका की तत्पश्चात जय सेनाचार्य ने तात्पर्य वृत्ति टीका करके सुलझाया है। जिसकी हिन्दी टीका यें भी हुई जिससे उलझनें सुलझती गई। लगभग 18 वर्ष पूर्व श्री नेमीचन्द जी पाटनी टोडरमल स्मारक जयपुर वाले आगरा मिले थे वहाँ समयसार पढ़कर स्वच्छंद हो जाते हैं व्रतों को छोड़ देते हैं संघ छोड़ देते हैं दान पूजा आदि हेय है पुण्य हेय है इत्यादि. उन्होंने समाधान किया कि समयसार के रहस्य को जो न ही समझते वे स्वच्छंद प्रवर्ती करने लगते हैं। दानादि पुण्य कार्य श्रद्धा में हेय है। परन्तु पुण्य कार्य करने का निषेध नहीं किया जाता। सम्यग्दर्शन का प्रभावना अंग है तथा उन्होंने जैन पथ प्रदर्शन पत्र पढ़ाया जिसमें पं. फुलचन्द्र जी कैलासचन्द्र जी, पं. जगमोहन लाल जी ने महावीर जी में निर्ग्रंथ मुनियों को नमस्कार करने का संदर्भ था, जयपुर वर्षा योग में साढ़े चार महीने पर्यन्त निरंतर प्रवचन सार का स्वाध्याय संघ सानिध्य में हुआ जिसमें गाणिनी आर्यिका

श्री विजय मती माता जी उपस्थिति थी। टैप केसिटों में समाधान टैप किया गया। उनके विचारों में अंतर नहीं है। वर्तमान में समयसार से संवंधित प्रश्न उठ खड़े होते है. उनका भी समाधान इस समयसार प्रश्नोत्तरी में उपलब्ध होगा। इसके कर्ता मुनि सूर्य सागर जी हैं। जो अज्ञानधंकार के कूप से निकालकर सन्मार्ग, मुक्ति मार्ग पद की ओर लगाने वाले भगवान महावीर तीर्थंकर के अनुयार्यी, अहिंसा के पुजारी, प्रशांत मूर्ति, परमाराध्य, आचार्य श्री शांति सागर जी महाराज द्वारा वंदित, दक्षिण भारत के वयोवृद्ध, दिगम्वर संत, आदर्श तपस्वी, प्रतिम उपसर्ग विजेता, महामुनि, चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर, समाधि सम्राट, धर्म प्रवर्तक दिगम्वराचार्य श्री 108 श्री आदि सागरजी महाराज (अंकलीकर) की परम्परा के दीक्षित हैं। निकट वर्ती हैं उनके ज्ञान का क्षयोपशम अच्छा है सदुपयोग किया। प्रस्तुत कृति के अध्ययन से भव्य प्राणी आत्मवोध प्राप्त कर सच्चे मोक्षमार्ग में चल सकेगें और अपने को शुद्धात्म स्वरूप में परिणमन कर सकेंगे अत; इस सर्वोपयोगी कृति के प्रकाशन के लिए शुभाशीर्वाद है। इसके सम्पादक प्रोफेसर पं. टीकम चंद जी जैन नवीन शाहदरा दिल्ली वालों की गुरुभक्ति व निःस्वार्थ जिनवाणी सेवा सराहनीय है, उनको भी मेरा शुभार्शीवाद।

आचार्य सन्मति सागर जी

卐

मंगल कामना

आध्यात्मिक ग्रन्थ के अमर गायक आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी द्वारा रचित समयसार महानग्रन्थ के प्रश्नोत्तरी तैयार करके जैन धर्म का अपूर्व कार्य किया है। सभी प्रश्नोत्तर आगमानुकूल है।

समयसार प्रश्नोत्तरी मंगलकारी ज्ञान वर्द्धक मोक्षमार्ग को दर्शाने वाली एवं जन जन के कल्याणार्थ परम पवित्र सिद्ध होगी प्रस्तुत कृति का एक वार जरूर अध्ययन करें।

प्रस्तुत समयसार प्रश्नोत्तरी के कर्ता प्रकाण्ड विद्वान मुनि श्री 108 सूर्यसागर जी महाराज हैं। मुनि श्री सिद्धान्त ग्रंथो का अच्छा ज्ञान है।

मैं यही मंगल कामना करता हूँ कि प्रस्तुत समयसार प्रश्नोत्तरी का घर घर में प्रचार प्रसार हो तथा जन जन के हाथों में पहुँचे भव्य जीव अध्ययन करके आत्मकल्याण के मार्ग में लग जाये। यह कृति अमृतज्ञान प्राप्त कराने में परम सहायक सिद्ध होगी। समयसार प्रश्नोत्तरी के अध्ययन करने कराने वाले सभी महानुभाव को मेरा मंगल शुभ आशीर्वाद। संपादक प्रोफेसर टीकमचन्द जैन एवं सहयोगी अनिल कुमार जैन को भी आशीर्वाद।

मंगल कामना के साथ

आचार्य कुमुदनन्दी महाराज

मंगल आशीर्वाद

मुझे यह जानकर बहुत हर्ष हो रहा है कि हमारे संघस्थ साधु मुनि सुर्य सागर जी द्वारा लिखा हुआ समयसार प्रश्नोत्तरी का प्रकाशन हो रहा है इसमें अध्यात्मा की कठिनाइयों को सरल रूप से करने का प्रयास किया है और इससे अबाल-वृद्ध सभी वर्ग के जीव समयसार को आसानी से समझ कर अपना कल्याण करे यही मेरा शुभ आर्शीवाद है।

मुनि शुभसागर जी महाराज
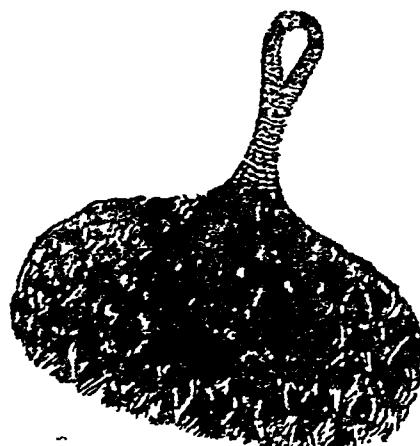
आद्य वक्तव्य

प्रश्नोत्तरीकर्ता मुनि श्री सूर्य सागर

भगवान आदिनाथ से लेकर वर्धमान पर्यन्त चौवीसों तीर्थंकर एवं अन्य समस्त केवली जिस अध्यात्म मार्ग से आत्मकल्याण किया वह मार्ग बहुत ही दुर्गम है। अनेक जगह भोले प्राणी समय के अनुसार इसका आशय न समझकर भटक रहे है क्योंकि यह प्राणी कुछ अनुयोग का स्वाध्याय करके सीधा अध्यात्म का सहारा लेता है तव स्वच्छंद होकर मनमानी करने लगता है इन सभी भोले प्राणीयों पर एवं अपने शुभोपयोग रूप परिणाम को स्थिर करते हुये करनानुयोग से अनभिज्ञ जीव भी अपने उपादान शक्ति का परिचय देने वाला समयसार का अनुसरण करने में जो कठिनाई होगे, उन समस्त कठिनाईयों को देखते हुये हमने "समयसार प्रश्नोत्तरी" का संकलन किया है इसका मूल उद्देश्य अध्यात्म में सरल प्रवेश हो उन कठिनाईयों को दूर करने के लिये हमने जयसेनाचार्य तात्पयेवृति टीका एवं आचार्य ज्ञानसागर जी की हिंदी टीका का विशेष सहयोग लेकर किया है, इसी के साथ कठिन शब्दों का अर्थ जगह जगह है उनका करणानुयोग आदि कुछ अन्य ग्रन्थों से सरल करने का प्रयास किया है, पाठक जन इसका सदूपयोग अवस्य करेगे, यह हमारे जीवन का प्रथम प्रयास है और आदि महावीर सन्मति सूर्य प्रकाश समिती का द्वितीय पुष्प है इसके सम्पादन कार्य प्रो. पंडित टीकमचंदजी जो आगम के अच्छे ज्ञाता है इन्होंने बड़ी कठिनाई से इसका संशोधन एवं संपादन का कार्य किया है उन्हें भी मेरा शुभ आर्शीवाद है सभी जिनवाणी उपासक भव्य जीवों से मेरा अनुरोध है यह समयसार पूर्ण रूप से पुनः प्रकाशित किया है। इससे पूर्व भी समयसार प्रश्नोत्तरी दो भागों में आदि महावीर सन्मति सूर्य ग्रन्थ माला द्वारा प्रकाशित हो चुके है। अतः स्वाध्याय प्रेमियों की मांग को देखकर इसे पूर्ण रूप से प्रकाशन का भार सौंप गया है। जोकि सभी जीव आत्मा जिनवाणी का श्रवण कर आत्मकल्याण करें यही शुभ भावना है।

मुनि श्री सूर्यसागर

दो शब्द

यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि पूज्य 108 मुनि श्री सूर्यसागजी महाराज ने समयसार प्रश्नोत्तरी नामक पुस्तक लिखी है जो जन मानव को लाभ दायक होगी क्यों कि जिसमें जितने भी प्रश्नोत्तर है वह वीतरागता से जुड़े हुए है मानव अनादि काल से वासानाओं का दास बना हुआ है और संसार में भटक रहा है जब ऐसी वीतरागता की झलक पुस्तकों में पढ़ने को मिले और सरल भाव से प्रश्नों से उत्तर समझ में आ जाए तो ऐसी ही पुस्तक है यह समयसार प्रश्नोत्तरी जो आत्म कल्याण में महान सहायक होगी और तभी इनका परिश्रम सफल होगा इनका अध्ययन श्रेष्ठ है, निरन्तर ध्यान मगन स्वाध्याय में लगे रहते है। सो धन्य है आगे भी संसारी प्राणियों के कल्याण हेतू ऐसे साहित्य निकलते रहे। यही भगवान से प्रार्थना है.......

संघस्थ ब्र. मैना बाई जैन
नमोस्तु

सम्पादकीय

सर्वज्ञ भगवान महावीर से प्रवाहित होता हुआ ज्ञान आचार्यों की परम्परा से श्री मद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य देव को प्राप्त हुआ। सर्वज्ञदेव के मुख से प्रवाहित श्रुतामृत की सरिता में से जो अमृत भोजन भर लिये गये वे वर्तमान में अनेक भव्य जीवों को शाश्रवत सुख का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य देव रचित अनेक शास्त्र हैं। उनमें समय प्राभृत अथवा समय सार नामक शास्त्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट आगम है।

इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य यथार्थ आत्मस्वरूप का पहिचान कराना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आचार्य देव ने अनेक विषयों का निरूपण किया है। जीव और पुद्गल के निमित्त नैमित्तिकपना होने पर भी दोनों का अत्यन्त स्वतन्त्र परिणमन, ज्ञानी को रागद्वेष का अकर्ता उभोक्तापना, अज्ञानी को रागद्वेष का कर्ता भोक्तापना, विकार रूप परिणमन में अज्ञानी का स्वयं का ही दोष, शास्त्र में प्ररूपण है। निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक यथार्थ मोक्षमार्ग में चरणानुयोग का स्थान इत्यादि अनेक विषयों का इस शास्त्र में प्ररूपण है। निश्चय-व्यवहार की संधिपूर्वक यथार्थ मोक्षमार्ग का विवेचन इस अनुपम ग्रन्थ में उपलब्ध है। इस ग्रन्थाधिराज का मूल उद्देश्य है कि द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक विषयों को जानकर पर्याय का अवलम्बन छोड़कर द्रव्य स्वभाव के विषयभूत वस्तु का अनुभव करना। द्रव्य दृष्टि का एकान्त करेगा तो पर्याय में रागादिक होते हुये भी अपनी जिम्मेदारी नहीं समझेगा और पर्याय दृष्टि का एकान्त करेगा तो अपने को ज्ञान-दर्शन स्वभावी जानकर जो रागादिक में हटाने हेतु निरन्तर अपने

स्वभाव का आश्रय लेगा वह रागादिक का नाश करके परम पद को प्राप्त करेगा।

प्राकृत गाथाओं में निवद्ध 'समय सार' के प्रतिपाद्य विषय को विस्तार से समझाने हेतु श्री अमृतचन्द्राचार्य देव ने आत्मख्याति नाम की अद्‌भुत संस्कृत टीका की, श्री जय सेनाचार्य देव ने तात्पर्य वृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखी तथा उसके वाद भी अनेक विद्वानों ने हिन्दी में अनुवाद करके 'समय सार' को वोधगम्य वनाने का प्रसंशनीय प्रयास किया। किन्तु इस ग्रन्थराज में इतना अमृत भरा है कि इसका जितनी बार पान किया जाये उता ही अमरत्व प्रदान करने वाला है। आचार्य कुन्द कुन्द देव द्वारा 'समय सार' में प्रतिपादित गूढ़ एवं गम्भीर विषय सामान्य जन की भी समझ में आ सके तथा हृदयगम हो सके इसी पुनीत उद्देश्य को परिलक्षित करके प्रस्तुत कृति समय सार प्रश्नोत्तरी की रचना की गई है।

स्वाध्याय तप के भेदों में पृच्छना का विशेष महत्व है। संशय को दूर करने हेतु अथवा निश्चय को दृढ़ करने के लिये प्रश्न पूछना सो पृच्छना है। पढ़ते समय या पढ़ने के वाद शिष्य के मन में जहाँ कोई शंका उठे ऐसी स्थिति में, अथवा कोई वात आगम में स्पष्ट न हो सकी हो उसके सम्बन्ध में गुरुजनों से समाधान पाने का प्रयत्न करना पृच्छना है। ये प्रश्न विषय की सुस्पष्टता के लिए प्रारम्भिक कदम है। प्रश्नोत्तरी कर्ता द्वारा स्वयं प्रश्न उठाकर उसका सम्यक् समाधान करना, अतीव कठिन कार्य है। किन्तु अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी प. पू. मूनि श्री 108 सूर्यसागर जी महाराज ने पाठकों के हितार्थ यह महान कार्य सम्पन्न कर 'समय सार' के गूढ विषय को सरल कर बोधगम्य बना दिया है। ऐसा करके आपने न केवल स्व-पर कल्याण का कार्य किया वरन् अपनी महान गुरु परम्परा की प्रसिद्धि को वृद्धिगत किया है। प. पू. चा. च. मुनिकुंजर समाधि सम्राट आचार्य 108 श्री आदि सागर जी महाराज (अंकलीकर) की

गौरवपूर्ण परम्परा के पट्ट पर आसीन भारत गौरव, तपस्वी सम्राट सिद्धान्त चक्रवर्ती सन्तशिरोमणी आचार्य 108 श्री सन्मति सागर जी महाराज के आप परम शिष्य हैं तथा समर्पित गुरु भक्ति के साथ साथ पठन पाठन व लेखन में ही अपने समय का सदुपयोग करते हैं।

आप क्रांतिकारी ओजस्वी प्रवचन कर्त्ता है। अत; श्रोताओं में नवचेतन जागृत कर देते हैं किन्तु आगम व भाषा समिति की मर्यादा तथा गुरु आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। आपकी कृति 'समय सार प्रश्नोत्तरी' नामक ग्रन्थ का अध्ययन कर पाठक गण अवश्य ही लाभान्वित होंगे, ऐसी मेरी आशा है।

ऐसी अनुपम कृति के सम्पादन का जो दायित्व मुझे सौंपा गया वह प. पू. आचार्य 108 श्री सन्मति सागर जी महाराज के आशीर्वाद से ही पूर्ण हो पाया। पूज्य मुनिराज द्वारा लिखित विषय वस्तु को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया गया है मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिससे आचार्य कुन्द कुन्द देव द्वारा प्रतिपाद्य विषय का अन्यथा हो जाये क्यों कि निजवाणी समाविष्ट करना उचित नहीं है। इस कृति में निहित सम्पूर्ण विषय वस्तु का सम्पूर्ण श्रेय व दायित्व पू. मुनि श्री 108 सूर्यसागर जी महाराज का ही है। प्रस्तुत कृति के सम्पादक के रूप में कार्य कर जिनवाणी के प्रसार में जो मेरा किचिंत योगदान हुआ यह मेरा परम सौभाग्य है। जो गुरु कृपा का ही फल है।

द्रव्य दाता

स्व. श्री जैनी प्रसाद जैन

स्व. श्रीमती मगन मूर्ति

सपरिवार

4637 गली मोर सिंह जाट, पहाड़ी धीरज

प्रदीप ब्रदर्स (कुलर वाले)

दूरभाष : 7514630, 7535502

सहयोगी :

सौ. सुषमा जैन धर्मपत्नी श्री सुरेश चन्द जैन

रमेश रेडीमेड स्टोर

4450, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-110006

दूरभाष : 7518629

क्रान्तिकारी धर्मोपदेशक मुनि श्रीसूर्यसागर जी का

जीवन परिचय

जन्म नाम-	नेमगोडा पाटील (उदयकुमार जैन)
जन्म तिथि-	22-7-1963 श्रावण शुक्ल दुज
पिता श्री-	बालगोंडा उर्फ तात्यासों मलगोंडा पाटील
मातुश्री-	कुसाबाई पाटील
भाई-	एक (मलगोड़ा पाटील)
बहन-	एक (मालुताई अण्णासों चौगुले) (आष्रा)
जन्म स्थान-	अरग ता. मिराज जि. सांगली
प्रांत-	महाराष्ट्र
गोत्र-	चतुर्थ जैन
लौकीक शिक्षा-	एस,एस,एल,सी (दसवीं)
धार्मिक-	धवल, जयधवल, महाबंध के विशिष्ट योग्यता गृहस्थ जीवन में संबंधित सामाजिक सेवा संस्था 1) **शिव सेना 2) वीर सेवा दल**
वैराग्य का कारण-	धर्मोपदेश (मुनि श्री धवल सागरजी)
विद्या गुरु-	गणधराचार्य श्री 108 कुंथू सागर जी एवं संघस्थ साध
दीक्षा-	18 मार्च 1994
दीक्षा गुरु-	मुनि कुंजर समाधि सम्राट आचार्य श्री 108 आदिसागर (अंकलीकर) के तृतीय पट्टाचार्य परमतपस्वी सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य परमेष्ठि सन्मति सागरजी।
दीक्षा उपरान्त नामकर्ण-	मुनि श्री सूर्यसागरजी

- ॐ नमः सिद्धेभ्यः -

मुनि श्री 108 सूर्यसागर जी (अरगकर)

मंगलाचरण

वीतरागं जिनं नत्वा ज्ञानानन्दैक सम्पदम्।
समयसारस्य प्रश्नोत्तरी तात्पर्यवृत्ति आधारैः।।1।।

प्र01 मूल समयसार कौन से आचार्य ने लिखा है ?

उ0 समयसार मूल गाथा के रूप में आचार्य परमोष्ठि कुन्द कुन्द देव ने लिखा है।

प्र02 समयसार में मूल गाथायें कितनी हैं ?

उ0 समयसार में कथित गाथायें चार सौ उन्तालीस (439) हैं, लेकिन मुद्रित प्रतियों में चार सौ सैंतीस है। (437)

प्र03 दो गाथाओं का अन्तर कहाँ है ?

उ0 कर्त्ताकर्म अधिकार मे कथित गाथा अठहत्तर है लेकिन मुद्रित प्रति में उन्नासी (79) हैं। इसी तरह मोक्षाधिकार में कथित गाथा बाईस (22) और मुद्रित में उन्नीस (19) गाथाएँ हैं। इस तरह कर्त्ता कर्म अधिकार में मुद्रित प्रति में 19 गाथाएँ हैं कथित में तीन गाथाएँ बढ़ी हैं, सिर्फ इनमें एक ही अधिकार में कम होकर अन्य अधिकार में तीन बढ़ गयी है इस तरह दो गाथाओं की भिन्नता पायी जाती हैं।

प्र04 समयसार की मूल गाथा को सरल रूप से समझाने के लिये कोई आचार्य ने टीका की है या नहीं ?

उ0 समयसार को सरल करने की कोशिश सर्वप्रथम आचार्य अमृत चंद्र महाराज जी ने आत्मख्याति टीका में की लेकिन बहुत ही वरिष्ठ (कठिन) भाषा में है, और आचार्य जयसेन

महाराजजी की तात्पर्यवृत्ति अति सरल, मन्द बुद्धि जीवों को सरल रूप से समझ में आती है। इस तरह दो आचार्यों ने भव्य जीवों पर अनुकंपा की है।

प्र05 समयसार में कितने अधिकार हैं ? वे कौन-कौन से हैं ?

उ0 समयसार में (12) अधिकार हैं।

1. पीठिका अधिकार
2. नवपदार्थ अधिकार
3. जीवाधिकार
4. अजीवाधिकार
5. कर्तुकर्माधिकार
6. पुण्यपापाधिकार
7. आश्रवाधिकार
8. संवराधिकार
9. निर्जराधिकार
10. बंधाधिकार
11. मोक्षाधिकार
12. सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार

इस तरह बारह अधिकार हैं।

प्र06 पीठिका अधिकार किसे कहते हैं ?

उ0 कोई भी कार्य करने से पहिले जैसे रूपरेखा, पूर्व तैयारी जो करते हैं उसे पीठिका कहते हैं, इसी तरह विषय प्रतिपादन पूर्व जो भूमिका बतावे उसे पीठिकाधिकार कहते हैं।

प्र07 अधिकार किसे कहते है ?

उ0 कल्प, पर्व, अधिकार, अध्याय, परिच्छेद कहो यह सब एकार्थ वाची और उन्हीं को अधिकार कहते हैं।

प्र08 मंगलाचरण में किनकी वन्दना की है ?

उ0 मंगलाचरण में सभी सिद्ध भगवान की वन्दना की है।

प्र09 परमेष्ठि पाँच है और यहाँ एक ही परमेष्ठि की वन्दना क्यों की ? अन्य की क्यो छोड़ दी ?

उ0 पाँचों ही परमेष्ठि पूज्य है वन्दनीय है आराधनीय है। लेकिन प्रश्न यह उठता है पाँचों ही परमेष्ठि सभी जीवों के द्वारा वन्दनीय है या नहीं सभी जीवों के वन्दनीय तो कह नहीं सकते क्यों तीर्थंकर बालक भी क्यों न हो सभी परमेष्ठिको नमस्कार न करते हुए सिद्ध परमेष्ठी की वन्दना मुख्य रूप से करते हैं साधू परमेष्ठि एवं गृहस्थ सभी जीव पंचपरमेष्ठियों में निराकुल, गमनागमन रहित अवस्था नहीं पायी जाती एक ही परमेष्ठि जिनका मरण कभी नहीं होता उस अवस्था विशेष अर्थात् सभी जीवों का अंतिम शरण सिद्ध भगवान है तभी ये वन्दनीय है पूजनीय है, इस बात को नमस्कार करके सर्वोच्च मानव, यतियों के लक्ष्य को दिशा दिया है, अत; सिद्ध भगवान् की वन्दना करना उचित ही है।

प्र010 वन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 रत्नत्रयधारी यति आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, वृद्धसाधु एवं पंचपरमेष्ठि आदि के गुणों को जानकर श्रद्धा सहित होता हुआ विनयों मे प्रवृत्ति करने को वन्दना कहते हैं।

प्र011 मनोवन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 वन्दना करने योग्य गुरुओं आदि के गुणों का स्मरण करने को मनो वन्दना कहते हैं।

प्र012 वचन वन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 वचनों के द्वारा उनके गुणों को प्रकट करने को वचन वन्दना कहते हैं।

प्र013 कायवन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 प्रदक्षिणा देना, नमस्कार करना आदि क्रियारूप कार्य करने को काय वन्दना कहते हैं।

प्र014 निश्चय वन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 जिस गुनानुवाद में सदा शाश्वत विद्यमान रहने वाले तादात्म्य संबंध से युक्त बाह्य क्रियाओं से रहित आचरण के रूप में जो प्रवृत्ति करता है उसे निश्चय वन्दना कहते हैं।

प्र015 व्यवहार नय से वन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 सदाशास्वत विद्यमान रहने वाले गुणनुवाद को लक्ष्य मे रखकर जो बाह्य क्रिया रूप जो वन्दना प्रदक्षिणा, स्तुति आदि जो किया जाता है उसे व्यवहार नय वन्दना कहते हैं।

प्र016 अराध्य और आराधक भाव किसे कहते है ?

उ0 जिनकी हम वन्दना, स्तुति, गुणनुवाद करते है उस भाव को अराध्य भाव कहते हैं। और जिनके द्वारा किया जाता है उसे आराधक कहते हैं।

प्र017 निश्चय और व्यवहार सिद्ध भगवान की वन्दना किसे कहते हैं ?

उ0 निश्चय नय से अपने आप में ही आराधक भाव को स्वीकार करने रूप निर्विकल्प समाधि है लक्षण ऐसे भाव नमस्कार को निश्चय वन्दना कहते हैं। व्यवहार नय से वचनात्मक द्रव्य नमस्कार के द्वारा जो वन्दना किया जाता है उसे व्यवहार वन्दना कहते हैं।

प्र018 सिद्ध किसे कहते हैं वे कैसे है ?

उ0 स्वात्मोपलब्धी अर्थात् स्व आत्म तत्व की पूर्ण रूप से जिसे प्राप्ति हुई है। अर्थात् उपलब्धि है उसे सिद्ध कहते हैं। सिद्धगति टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाव से अडिग है अथवा अविनश्वर है इसलिये ध्रुव कहते है।

भाव कर्म, द्रव्यकर्म, नौकर्म से रहित होने से शुद्ध स्वभाव सहित निर्मल होने से उन्हें अमल भी कहते हैं।

द्रव्य क्षेत्रादि पंचपरावर्तन रूप संसार परिभ्रमण से रहित अपने स्वरूप में निश्चल होने से उन्हें अचल भी कहते हैं।

संसार मे कोई भी उपमा नहीं होने से उन्हें अनुपम भी कहते हैं इस तरह विशेषतायुक्त सिद्ध भगवान की वन्दना की है।

प्र019 सिद्ध भगवान की वन्दना क्यों की है ?

उ0 समयपाहुड ग्रंथ को कहने के लिए सिद्ध की वन्दना की है।

प्र020 समयपाहुड आप अपने मन से कहेंगे या किसी अन्य के द्वारा कहा हुआ कहेंगे ?

उ0 श्रुतकेवली ने जो कहा है वही कहूँगा अपने मन से नहीं कहूँगा।

प्र021 प्रभु मन से क्यों नहीं कहते ?

उ0 आज वर्तमान युग में पूर्ण रूप से वस्तु स्वरूप को समझने की शक्ति किसी भी जीव मे नहीं पायी जाती है, और पूर्ण स्वरूप न समझे ही कहना एक प्रकार की मनमानी होती है और मनमानी में आत्म शांति एवजी अशांती की प्राप्ति

होती है। जाने अनजाने में युग प्रचार प्रसार से महा संसार वृद्धि रूप मिथ्यात्व कर्म का अज्ञानता के कारण बंध होता है, एवं व्यक्ति के आचरण से पवित्रता से श्रद्धा निर्मल होती है। सर्वश्रेष्ठ आचरण केवली एवं श्रुतकेवली का होता' इसलिये मैं अपनी बात न कहकर जीवों की परोपकारी केवली वाणी को कहता हूँ क्योंकि जिस वाणी को सुनकर कल्याण हुआ है उसी का उपकार है, आत्म कल्याण हुआ है उसी का उपकार है, आत्मकल्याण में जनवाणी, मनवाणी का कोई काम नहीं।

प्र022 समयापाहुड कैसे बना है ?

उ0 समय और पाहुड इन दो शब्दों का मिलान होकर समयपाहुड बना है।

प्र023 समय किसे कहते हैं ?

उ0 सम्यक् समीचन योग्य सही रीति से अय अर्थात् बोध, ज्ञान है उसे समय कहते हैं वह सिर्फ आत्मा ही होता है अन्य नहीं क्योंकि आत्मा को छोड़कर अन्य अय अर्थात् बोध की प्राप्ति होती नहीं है।

समं एकीभावेनायनम् गमने "समय" अर्थात् एकमेक रूप से जो गमन उसका नाम समय है। अर्थात् उसे समय कहते हैं।

प्र024 प्राभृत किसे कहते हैं ?

उ0 जो पदों से स्फुट अर्थात् व्यक्त है, इसलिये वह पाहुड हैं। जो प्रकृष्ठ अर्थात् तीर्थंकर अथवा केवली श्रुतकेवली द्वारा आभृत अर्थात प्रस्थापित अर्थात् निकपित है वह प्राभृत है। अथवा जिनके विद्या ही धन है ऐसे प्रकृष्ट आचार्यों

द्वारा जो धारण किया जाता हैं, अथवा व्याख्यान किया जाता है अथवा परंपरा सें लाया जाता है वह प्राभृत है। उसे प्राभृत कहते हैं। सार को भी प्राभृत कहते हैं।

प्र025 समय प्राभृत का अर्थ क्या है ?

उ0 आत्म के सार अर्थात् सदा शाश्वत विद्यमान रहने वाले अविनाशी अवस्था विशेष को समय प्राभृत कहते हैं।

प्र026 समय कितने प्रकार का है ?

उ0 समय के दो भेद हैं।

1. स्वसमय 2. परसमय

प्र027 जीव किसे कहते हैं ?

उ0 जो शुद्ध निश्चनय की अपेक्षा से शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव रूप निश्चय प्राणों के द्वारा तथा अशुद्ध निश्चनय से क्षयोपशामिकरूप अशुद्ध भाव प्राणों द्वारा असद्भूत व्यवहारनय से यथासंभव द्रव्य प्राणों द्वारा जो जी रहा है, आगे जीता रहेगा और पूर्व में जीता था उसे जीव कहते हैं।

प्र028 स्वसमय किसे कहते हैं ?

उ0 जब जीव चरित्र, दर्शन, ज्ञान में स्थित रहता हैं वह स्वसमय है अथवा विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभसाव वाले निज परमात्मा में रूची सम्यग्दर्शन और उसी में रागादि रहित स्वसंवेदन का होना सम्यग्ज्ञान तथा निश्चल स्वानुभूतिरूप वीतराग चारित्र है, इस प्रकार कहे गये लक्षण वाले निश्चय रत्नत्रय के द्वारा परिणत जीव पदार्थ को स्वसमय कहते हैं।

प्र029 परमसमय किसे कहते हैं ?

उ0 पुद्गल कर्मोपदेश में स्थित जीव को अर्थात कर्माश्रीत अवस्था को परमसमय कहते हैं।

पुद्गल कर्मों के द्वारा उत्पन्न हुये जो नारकादि नामावली संज्ञाये हैं, उनमें पूर्वोक्त निश्चय रत्नत्रय न होने से जो स्थित है उस वक्त उस जीव को परसमय कहते हैं।

प्र030 संवेदन किसे कहते हैं ?

उ0 वेदन अर्थात्, अनुभव करने को संवदेन कहते हैं।

प्र031 संवेदन कितने प्रकार का होता है ?

उ0 संवेदन दो प्रकार का होता है।

1. रागरहित अशुद्ध गुणों का जो वेदन करता है।

2. रागरहित शुद्ध गुणों का जो वेदन करता है।

इसी को वीतराग स्वसंवेदन और इन्द्रिय स्वसंवेदन भी कहते हैं।

प्र032 जगत में सुन्दर अर्थात् करने योग्य क्या हैं उसे क्या कहते हैं ?

उ0 जगत् में सुहावना, सुन्दर, शांत ऐसा आत्मा ही है, लेकिन सभी आत्मा सुन्दर नहीं क्योंकि सदा शाश्वत विद्यमान रहने वाले अविनश्वर रूप में सभी आत्माओं का अवस्थान नहीं पाया जाता है इसलिए सभी आत्मा सुन्दर सुहावना नहीं है लेकिन जो आत्मा भले प्रकार अपने निज गुण और पर्याय में परिणमन करता है वह आत्मा सबसे सुहावना और सुन्दर हैं।

प्र033 सभी जीवों को निश्चयनय उपादेय क्यों है ?

उ0 सभी जीवों को निश्चय का ही सहारा लेना चाहिए क्यों

अनादिकाल से व्यवहार में वर्तमान तो कर ही रहे हैं किसान के अभाव में धरती धान्य अथवा फसल उगाने में समर्थ नहीं इसी तरह व्यवहार में भी निश्चय के अभाव में स्वयं को स्थिर शाश्वत स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो सकता इसलिये निश्चय से अनादि काल से अनभिज्ञ है, एक लोकयुक्ति है, "भूले वस्तु वताएँ जाता है" इसी तरह समयसार में भूला निश्चय को वताने के उद्देश्य से यहॉ निश्चय नय उपादेय हैं।

प्र034 निश्चय नय किसे कहते है ? स्वरूप बताए ?

उ0 जो नय द्रव्य के उपादान शक्ति का अर्थात् द्रव्य के सदा शाश्वत विद्यमान रहने वाली शक्ति का जो प्रार्दूभाव विद्यमान रहने वाली शक्ति का प्रार्दूभाव का कथन करें उसे निश्चय नय कहते हैं।

अथवा किसी भी वस्तु की योग्यता, पात्रता, क्षमता का जो व्याख्यान अथवा कथन करता है उसे निश्चय नय कहते हैं।

अशुद्ध में भी शुद्ध का ज्ञान कराकर आत्म शक्ति का भान करने वाले नय को निश्चिय नय कहते हैं।

अथवा भूत भविष्यत, वर्तमान काल में आदि तीनों कालों में विद्यमान शक्ति का प्रतिपादन करने वाले नय को निश्चय नय कहते हैं।

प्र035 व्यवहार नय किसे कहते है ?

उ0 जो नय द्रव्य के वर्तमान शक्ति का अर्थात् प्रगट शक्ति का कथन, व्याख्यान करे उसे व्यवहार नय कहते हैं।

भेद में अर्थात् भिन्नता में एकता का ज्ञान कराये अथवा

संयोगी दशा को ग्रहणकर भेद विभाजन करता जाय उसे व्यवहार नय कहते हैं।

प्र036 नय किसे कहते हैं ?

उ0 संपूर्ण वस्तु स्वरूप में एक देश वस्तु स्वरूप का कथन करना नय हैं। अथवा वस्तु स्वरूप विचार में जो हमारा दृष्टिकोण होता है, उद्देश्य होता है, आशय होता है, अभिप्राय होता हैं, उसे नय कहते हैं।

प्र037 समयसार में मुख्यता से किसका प्रतिपादन है ?

उ0 समयसारमें मुख्यता से परमात्म तत्व अथवा द्रव्य की शक्ति रूप शुद्ध दशा का निरूपण व्याख्यान करके स्वयं की दुर्दशा का अथवा परतंत्रता का भान कराया है।

प्र038 सभी जीवों को हेय और उपादेय क्यों हैं ?

उ0 सभी जीवों को करने योग्य आचरने योग्य अपने गुणों के साथ एकत्व के निश्चय को प्राप्त हुआ, स्वसमय में स्थित शुद्धात्मा ही उपादेय है, और कर्म बन्ध में लिप्त एकमेल हुआ आत्मा हेय है क्योंकि बंध से आत्मा शुद्धता परमात्मा अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता है।

प्र039 विसंवाद अर्थात् गड़बड़ क्यों निर्माण होता है ?

उ0 कर्म बन्ध से होने वाली गुणस्थान आदि पर्यायों में तन्मय उस रूप होकर अर्थात् कर्म के अनूरूप प्रकृति करने से संसार वृद्धि रूप कर्म ही बन्ध होता है जहां अपना एकत्व नष्ट होकर परतंत्र रूप बंधन का निर्माण होता है इसलिए प्रसंशनीय, आदरणीय आचरणीय नहीं होता है।

प्र040 "समयसार प्रश्नोत्तरी" में हेय, उपादेय मे गृहस्थ एवं

मुनि के अट्ठाईस मूलगुण एवं छह आवश्यक क्रिया को उपादेय क्यों नहीं बताया है ?

उ0 "समयसार प्रश्नोत्तरी" में द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म, पाप, पुण्य; कर्म सहित किसी भी जीव का स्वरूप, सदा शाश्वत विद्यमान नहीं रहता, चाहें वह तीर्थंकर भी क्यों न हों; क्योंकि तीर्थंकर भी ज्यादा से ज्यादा कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक ही विद्यमान रहते हैं, तो अन्य प्राणियों की वात ही क्या है इसलिये पाप, पुण्य से परे परमात्मा बनने की शक्ति आप में भी विद्यमान है, ब्राह्य क्रिया चाहें श्रावक (गृहस्थ) के हो चाहे मुनि के हो वह परमात्म मार्ग के साधन रूप साधक है नाही आपका सही परमात्मा का स्वरूप है, क्रियाकांड से पुण्यार्जन होता है जिससे परमात्मा बनने का मार्ग निर्माण होता है, ना की वह परमात्मा का स्वरूप और यहाँ स्वयं परमात्मा बन सकते हैं, उनका स्वरूप समस्त क्रियाओं से सहित अपने मे अवस्थित होना है इसलिये मार्ग की चर्चा और चर्या हमने मंजिल रहित बहुत बार किया है, जिसे आगम में द्रव्यसंयम कहते हैं, उस द्रव्य संयमी जीवों को परमात्मा बनाने के लिये परमात्मा और आप मे की दूरी का कथन इस समयसार प्रश्नोत्तरी में किया जा रहा है, इसलिये पुण्याभाव रूप परमात्म मार्ग को भी हेयं कहा है, क्योंकि जब तक राहगीर राह हीं छोड़ेगा तो मंजिल से भी नहीं मिलेगा, इसलिए मंजिल स्वरूप परमात्मा ही उपादेय हैं, अन्य सभी अकरणीय रूप हेय बताया है।

प्र041 संसार में दुर्लभ क्या है ?

उ0 एकत्व अर्थात् सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र के साथ एकता

को लिये हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व प्राप्ति नहीं हुई है क्योंकि न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया है ऐसा एकत्व स्वरूप की प्राप्ति ही इस संसार में दुर्लभ अर्थात् कठिन हैं। क्योंकि संस्कार का अभाव है।

प्र042 सुलभ क्या है ?

उ0 संसारी जीवों को काम अर्थात् पंचेन्द्रिय जन्य विषय उसे होने वाली बंध या संबध की कथा अथवा प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग एवं उनके फल स्वरूप नरनारकादि पर्याय इत्यादि संसार में कर्माधीन वस्तु सुलभ हैं।

प्र043 यह सुलभ क्यों हैं ?

उ0 अनादि कालीन संसार होने से यह वस्तु सुलभ है।

प्र044 संस्कार कितने प्रकार के हैं ? वे कौन सी हैं ?

उ0 संस्कार तीन प्रकार (तरह) का होता है।

1. सुनने से उत्पन्न संस्कार
2. परिचय से उत्पन्न संस्कार
3. अनुभव से उत्पन्न संस्कार

प्र045 अच्छे बुरे संस्कार कालांतर में ज्ञान का कारण कैसे है उदाहरण से समझाइए ?

उ0 अच्छे बुरे संस्कार कालान्तर में ज्ञान का कारण वनते है।- जैसे

1. भगवान पार्श्वनाथ और कमठ के संस्कार
2. वज्रजंघ श्रीमती अहारदानरूप अच्छे संस्कार 10वें भव में

राजा श्रेयांस के रूप में उत्पन्न हुई।

3. सिंह के पर्याय में, संस्कार से, पूर्व भव का जाति स्मरण होकर अपने भव-भव के पाप का पश्चाताप करना।

4. अभिमन्यु का चक्रव्यूह भेदने का ज्ञान

5. गर्भस्थ प्रद्युम्नपर रुक्मीनीका संस्कार वर्तमान पर्याय में साथ न होने पर भी स्नेह का निर्माण होना इत्यादि आगम में अनेक उदाहरण है सो समझना चाहिए।

प्र046 समयसार में कुन्दकुदाचार्य किस का वर्णन अर्थात् निरुपन करने की प्रतिज्ञा की है ?

उ0 समयसार में आचार्य कुन्दकुन्द देव ने एकत्व विभक्त आत्मा का वर्णन निरूपण किया है। एकत्व-विभक्त अर्थात एकत्व शब्द से जाना जाता है, जो दो है वही एक होता है और जो एक है उसका विभक्त अर्थात् विभाजन नहीं होता लेकिन कुन्दकुन्द की प्रतिज्ञा बताती है कि एकत्व से मिले हुये अर्थात् कर्म सहित अशुद्ध आत्मा में विभक्त अर्थात्-विभाजन अलग अर्थात अशुद्ध में शुद्ध परमात्मा शक्ति रूप में विद्यमान है, उनका स्वरूप का वर्णन अथवा कथन करेंगे। इसकी प्रतिज्ञा गाथा पाँचवी में की है।

प्र047 एकत्व-विभक्त का वर्णन कैसे करेंगे ?

उ0 एकत्व-विभक्त आत्मतत्व का वर्णन, व्याख्यान आत्मा के स्वयं के विकसित बुद्धि के द्वारा अर्थात् आगम, तर्क, परमगुरु के उपदेश से, और अपने स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा प्रतिपादन करेंगे।

प्र048 आचार्य देव ने भव्यात्मा जीवकों क्या संबोधन दिया है। अथवा किया है ?

उ0 आचार्य देवजी ने भव्य जीवों को कहा है। मैं जो एकत्व-विभक्त उपदेश दे रहा हूँ उसको आप स्वयं अपने स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा तोलकर अर्थात् परखकर परीक्षाकर, आप स्वीकार करो यदि अज्ञानवशात भूल हो जाये तो कपट का ग्रहण न करके सही अभिप्राय को ग्रहण करें।

प्र049 शुद्धात्मा कौन हैं ? उसका स्वरूप क्या है ?

उ0 जो प्रमत और अप्रमत इन दोनों अवस्थाओं में ऊपर उठकर केवल ज्ञायक अर्थात् ज्ञानस्वरूप देखना और जानना रूप क्रिया को छोड़कर अन्य से रहित है वह शुद्धात्मा का स्वरूप है।

प्र050 प्रमाद किसे कहते हैं ? वे कौन से जीव को होता है?

उ0 कषाय सहित अवस्थाओं को अच्छे कार्यों के करने में आदर भाव का न होना, सकल संयम रूपी आचरण संशय उत्पन्न करने वाले मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति को, अतरंग में शुद्धात्मानुभव से डिगाने रूप बाह्य विषय मूलगुण एवं उत्तरगुण में मैल उत्पन्न करता है उसे प्रमाद कहते हैं।

प्रमाद रहित जीव सुक्ष्म रूप से विचार करने पर सत्ता रूप कषाय की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थान तक प्रमाद पाया जाता है। लेकिन सातवें गुणस्थान से ऊपर अकिंचित्कर रूप अर्थात् निष्क्रिय रूप विद्यमान होता है इसलिए पहिले गुणस्थान से छट्टे गुणस्थान तक प्रबलताको लेकर तारतम्य रूप से क्रिया रूप प्रमादि जीव होते हैं। व्यवहार मे प्रमादी जीव छट्टे गुणस्थान तक ग्रहण किया है।

प्र051 जीव के ज्ञायक स्वभाव कौन से नय से दर्शन, ज्ञान,

चारित्र रूप भेद को प्राप्त होता है ?

उ0 जीव के ज्ञायक स्वभाव सद्भूत व्यवहार नय से अर्थात् विचार के दृष्टिकोण से दर्शन, ज्ञान चारित्र रूप विभाजन अर्थात् भेद पाया जाता है।

प्र052 सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उ0 जब हमारा दृष्टिकोण, लक्ष्य विचारधारा एक वस्तु का विषय करने लगता है अथवा गुण और गुणी अथवा पर्याय व द्रव्य में कर्त्ता, कर्म, करण सम्बन्ध, अपादान, सप्रदान, रूप षट् कारकों से कदाचित उसे जानकर द्रव्य मे भेद करने का जो दृष्टिकोण है उसे सद्भूत व्यवहार नय (दृष्टिकोण) कहते हैं।

प्र053 निश्चयनय उपादेय, ग्रहणीय है, ज्ञायक स्वभाव ही मुख्य हैं तो व्यवहार की जरूरत क्यों है ?

उ0 संसार में जीव दो तरह के पाये जाते है, एक तीक्ष्ण बुद्धि वाले और मन्दबुद्धि वाले जीव आचार्य देव दोनों ही जीवों का हितेषी है, अगर निश्चय का उपदेश अर्थात् संक्षिप्त वस्तु स्वरूप के कथन से तीक्ष्ण बुद्धिवाले जीव तो कल्याण कर लेगा लेकिन मन्दबुद्धि वाले आत्मा कल्याण नहीं कर पाते तब पक्षपात का दोष आने से समता भाव समदृष्टि नहीं रहता है, उस दोष का परिहार एवं मन्दबुद्धि शिष्यानुग्रह के लिये व्यवहार का उपदेश देना बहुत जरूरी है। इसलिये भगवान की वाणी नाना भाषा रूप से परिवर्तित होता है, अलग अलग भाषा वाले जीवों का अलग अलग भाषा से ही कल्याण संभव है, अन्य नहीं, और तीसरी बात वस्तु स्वरूप नयाधिन (विचाराधीन) नही है, प्रमाण के

आधीन है, निश्चय के साधक व्यवहार मोक्ष मार्ग को हेय जानकर लक्ष्य से पहिले व्यवहार को छोड़कर असंयम रूप आचरण न हो और जिनागम में एकान्त का कोई स्थान नहीं इसलिये व्यवहार की भी जरूरत होती है आवश्यकता होती है अन्यथा मोक्षमार्ग रूपी धर्म तीर्थ का अभाव होकर निश्चय मार्ग अवरुद्ध हो जायेगी सो जानना।

प्र054 निश्चय श्रुत केवली किसे कहते हैं ?

उ0 जो जीव कर्त्ता करणता को प्राप्त हुये निर्विकल्पसमाधी रूप स्वसंवदेन ज्ञानात्मक भावश्रुत के द्वारा पूर्णरूप से अपने अनुभव मे लाता है इस प्रत्यक्षीभूत अपने आत्मा की सहायता से रहित, रागादी से रहित अनुभव में लाता है वह पुरूष निश्चय श्रुतकेवली है अर्थात् उन्हें निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं।

प्र055 व्यवहार श्रुतकेवली किसे कहते हैं ?

उ0 जो पुरूष द्वादशंग द्रव्य-श्रुत ज्ञान को परिपूर्ण रूप से जानता है, उसे जिन भगवान द्रव्य श्रुतकेवली कहते हैं, क्योंकि द्रव्यश्रुत आधार से उत्पन्न हुआ जो भाव श्रुतज्ञान है वह आत्मा ही है जो कि आत्मा की संविति को विषय करने वाला और पर की परिछिति को विषय करने वाला होता है, इसलिये द्रव्य श्रुतकेवली होता है।

जो अपनी शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं कर रहा हैं, नही उसकी भावना कर रहा हैं, केवल बर्हि विषयक द्रव्य-श्रुत के विषयभूत पदार्थ को जानता है वह व्यवहार श्रुतकेवली होता है।

प्र056 स्वसंवेदन ज्ञान के बल से इस काल में भी श्रुतकेवली

हो सकते हैं क्या ?

उ0 नहीं हो सकते क्यों यहां स्वसंवेदन के बल से जिन्हें श्रुतकेवली कहाँ है, वह शुक्लज्ञान पूर्वक स्वसंवेदन को ग्रहण किया है ना कि अन्य स्वसंवेदन इसलिये वर्तमान में पूर्व पुरूषों जैसा स्वसंवेदन था वैसा नहीं हैं इसलिये वर्तमान में धर्मध्यान है वह यथा योग्य होता है अतः श्रुतकेवली नहीं होते हैं।

प्र057 व्यवहार रत्नत्रय भावना किसे कहते हैं ?

उ0 सम्यदर्शन, ज्ञान, चरित्र इन तीनों का पुनः चिंतवन करना व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं।

प्र058 निश्चय रत्नत्रय भावना किसे कहते हैं ?

उ0 निश्चय नय से तीनों ही आत्म स्वरूप ही है इसलिये पुनः पुनः शुद्धात्मक चिंतन करना निश्चय रत्नत्रय भावना कहते हैं।

प्र059 भावना किसे कहते हैं ?

उ0 जाने हुये अर्थ का पुनः पुनः चिंतना अथवा अनुशीलन करने को भावना कहते हैं।

प्र060 निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय भावना का फल क्या है ?

उ0 जो मुनि या तपोधन तत्परता के साथ इस आत्म भावना स्वीकार करता है, वह थोड़ ही काल में संपूर्ण कर्मो का नाश कर मुक्त होता है।

प्र061 समयसार में मुख्य रूप से कौन से जीव को सम्बोधन किया है।

उ0 समयासार में जिसने कर्म निर्जरा अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर समस्त अशुभ क्रियाओं को छोड़कर अर्थात् अशुभ वंचनार्थ सकल संयम को धारण कर लिया हैं, जिनके जीवन में व्यवहार गौण होकर निश्चय आत्मध्यान मुख्य है, अथवा शरीर कृष के साथ कषाय कृष करने का जिनका लक्ष्य है, क्रियाकाण्ड में ही धर्म बुद्धि रखने वाले जीवों का उपकार करने उद्देश्य, जिसने बाह्य आचरणों से योग सिद्ध मानने वाले जीवों को समयसार में मुख्य रूप से संबोधन किया है।

प्र062 साधु (संयमी) व्यवहार का आश्रय कब लेता है ?

उ0 जिस प्रकार कोई ब्राह्मण आदि विशिष्ट पुरूष म्लेच्छों को समझाने के समय में ही म्लेच्छ भाषा बोला करता है, अन्यकाल में नहीं उसी प्रकार ज्ञान संयमी पुरुष भी अज्ञान पुरूषों को प्रतिबोध देने के समय में ही व्यवहार का आश्रय लेता है अथवा जब शुद्धात्मा में स्थिर नहीं रह पाता तब अशुभ से बचने के लिये व्यवहार का आश्रय लेता है अन्यथा नहीं !

प्र063 असत्य किसे कहते हैं ?

उ0 सत्य और असत्य इनका विचार बहुत सोच समझकर निर्णय करना चाहिए पहले असत्य शब्द का विचार करने का पता चलता है कि सत्य के सामने 'अ' वर्ण आने से सत्य ही असत्य होता प्रतीत (मालूम) होता है एक बात विचारणीय यह है कि जिस तरह असत्य में 'अ' वर्ण निहित है वैसे ही सत्य में भी 'अ' वर्ण-अप्रत्यक्ष रूप में निहित हैं, जैसे-गणित के नियमानुसार संख्या के आगे ऋण (-) चिन्ह

नियम से लिखने का विधान है, लेकिन धन (+) चिन्ह संख्या के आगे लिखने का नियम न होतें हुये जिस संख्या के आगे चिन्ह नहीं हे वहां अपने आप स्वयं धन (+) चिन्ह की सिद्धि होती है इसी तरह सत्य के आगे 'अ' वर्ण की सिद्ध होती है। 'अ' वस्तु स्वरूप प्रतिपादन में किंचित अर्थात् कंथचित् (स्यात्) शब्द के रूप से निहित है। इसलिये असत्य और सत्य वस्तु स्वरूप नहीं कथन प्रणाली है, इसलिये सत्य दूसरे समय में असत्य हो सकता है और असत्य सत्य हो जाता है। जैसे किसी ने कहा जहर इन्सान को मारता है नहीं एक ने कहा मारता है यही सत्य है दूसरे ने कहा सर्प जहर गलित कुष्ट रोगी को अमृत है अर्थात् मरण के बदले जीवनदान देता है इसी तरह सत्य कोई वस्तु नहीं असत्य भी कोई वस्तु नहीं है। जिसे हम वस्तु समझकर विवाद निर्माण करते हैं इसलिये सत्य और असत्य परिस्थिति पर निर्भर करता है कथंचित सत्य को ही असत्य कहते हैं। अथवा प्रयोजनीय को लोकव्यवहार में सत्य कहते हैं। अप्रयोजनीय को असत्य कहते हैं, प्रयोजन अप्रयोजन समय पर निर्भर करता है।

प्र064 भूतार्थ और अभूतार्थ का क्या अर्थ है ?

उ0 भूतार्थ का अर्थ सत्यार्थ और अभूतार्थ का अर्थ असत्य हैं इसका खुलासा प्र स0 62 में खुलासा करने से पुनः नहीं किया जा रहा है लेकिन इसका अर्थ अन्य रूप से जो आचार्यो ने बताया है वह यह है।

भूतार्थ से प्रयोजनवान और अभूतार्थ का अर्थ अप्रयोजनवान है।

भूत शब्द का अर्थ संस्कृतभाषा के विश्व लोचन कोश में जिस प्रकार सत्य बतलाया है उसी प्रकार उसका अर्थ सम भी है, अतः भूतार्थ का अर्थ जबकि सम होता है अर्थात् सामान्य धर्म और अभूतार्थ का अर्थ विषय अर्थात् विशेषत इस तरह भूतार्थ और अभूतार्थ का अर्थ है।

प्र065 कौन सा नय भूतार्थ और अभूतार्थ है ?

उ0 व्यवहार नय अभूतार्थ और निश्चय नय भूतार्थ है।

प्र066 समयसार में सम्यग्दृष्टि कब होता है ?

उ0 जब जीव व्यवहार और निश्चय रूप दोनों नयों में से व्यवहार नय का क्रिया रूप में पूर्ण करके जब निश्चय नय का आश्रय लेकर उसमें स्थिर पूर्ण रूप से होने पर सम्यग्दृष्टि होता है।

प्र067 यहां सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ0 यहाँ आध्यात्म का उपदेश है और सम्यग्दृष्टि अर्थात् जिसकी दृष्टि समीचीन मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करना है, गलत मोक्षमार्ग का शोधन करता है आज तक हमने दर्शन की शद्धि को हीं सर्वोच्च माना है और मानते आ रहें है, लेकिन इसके दो मोक्षमार्ग के साधन रूप ज्ञान और चारित्र विद्यमान है इसमें के मिथ्यापन का निराकरण नहीं करता तब तक ज्ञान, दर्शन, चारित्र की एकतारूप निश्चय नय नहीं होता हमारे चारित्र में जो मिथ्यापन भरा है तब तक सम्यग्दृष्टि नहीं मिथ्यादृष्टि हैं।

प्र068 समाधिकाल में क्या प्रयोजन है ?

उ0 शुद्ध निश्चय नय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है, वह शुद्धता को प्राप्त हुये आत्मदर्शियों के द्वारा जानने भावने

अर्थात् अनुभव करने योग्य हैं। क्योंकि वह सोलहवानी स्वर्ण के समान अभेद रत्नत्रय स्वरूप समाधि काल में प्रयोजनवान है।

प्र069 निश्चय सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ0 आर्त और रौद्र ध्यान का त्यागकर निर्विकल्प समाधि में स्थित रहने वाले जो जीव है उनको, जो शुद्धात्मा के स्वरूप का दर्शन है, अनुभवन है, अवलोकन है, उपलब्धि हैं, संवति हैं, प्रतीति है, ख्याति है, अनुभूति है, वही निश्चयनय से निश्चय सम्यक्त्व या वीतराग सम्यक्त्व कहा जाता है, जो कि निश्चयचारित्र के साथ अविनाभाव रखता है उसे निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं।

प्र070 यहाँ व्यवहार समयक्त्व का स्वरूप क्यों नहीं कहते?

उ0 यहाँ व्यवहार से ऊपर उठकर आत्मध्यान में लीन होने वाले से प्रयोजन है जैसे हाईस्कूल में विद्या अध्यन में रत विद्यार्थी महाविद्यालयो में जा सकता हैं लेकिन महाविद्यालय विद्यार्थी हाईस्कूल में जा नहीं सकता इससे ऊपर मार्ग पर प्रशस्त है लेकिन नीचे का नहीं इसी तरह व्यवहार से उठाकर निश्चय मे आये जीवों को व्यवहार का स्वरूप नहीं बताया जाता आगम में योग्यतानुसार श्रेष्ठ मार्ग का कथन करने का उपदेश है इसलिये यहाँ सर्वत्र निश्चय मार्ग मुख्य होने से व्यवहार सम्यक्त्व का कथन नहीं करेंगे।

प्र071 नव पदार्थ को सम्यक्त्व क्यों कहा ?

उ0 जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा बधं और मोक्ष स्वरूप जो नव पदार्थ हैं। वे ही अभेद उपचार के द्वारा सम्यक्त्व के विषय होने से सम्यक्त्व है।

प्र072 नव पदार्थ कौन से वक्त (समय) भूतार्थ और अभूतार्थ है ?

उ0 तीर्थं की प्रवृत्ति के लिये, प्रारम्भिक शिष्य की अपेक्षा से नवपदार्थ भूतार्थ कहे जाते हैं। फिर अभेद रत्नत्रय लक्षण निर्विकल्प समाधि के काल में वे अभूतार्थ असत्यार्थ ठहरते हैं।

प्र073 जीवाधिकार में कितनी गाथाएँ हैं ?

उ0 जीवाधिकार में 28 अट्ठाईस गाथाएँ हैं

प्र074 समयसार मन्द बुद्धिवाले के लिये या तीक्ष्ण संक्षेप रूची शिष्य के लिये संबोधन है ?

उ0 विस्तार रूची शिष्य के संबोधन किया है।

प्र075 शुद्धनय से जीवद्रव्य (आत्मा) कैसे हैं ?

उ0 जों आत्मा को (जीव को) बधं रहित, परके स्पर्श रहित, अन्यत्व रहित, चलाचल रहित, विशेष, रहित और अन्य के संयोग रहित अवलोकन करता है वह शुद्ध नय है अथवा शुद्धनय से जीवद्रव्य है।

प्र076 संसार में मेरा स्वभाव कैसा है ?

उ0 संसार अवस्था में हमारा स्वभाव कमलपत्र, मृत्तिका, समुद्र, स्वर्ण और उष्णता रहित जल के समान हैं।

कमलपत्र :- जैसे जल में रहकर भी कमल जैसे जल से भिन्न ऊपर उठकर रहता है इसी तरह द्रव्य कर्म, भावकर्म, नोकर्म मे रहते हुये भी अपने अस्तित्व को कमल की तरह भिन्न रखा है।

मृत्तिका :- माटि जैसे स्थान, कोष, कुशूल और घटादि

पर्याय में परिवर्तन होने पर भी मिट्टी की अस्तित्व नाश नहीं होता सदा विद्यमान रहा इसी तरह आत्मा नाना गतियों में परिवर्तन के बाद भी नाश नहीं होता अपना अस्तित्व कायम रहता है।

समुद्र :- निस्तरंग और उतरंग (ज्वारभाटा) के समय समुद्र ज्वारभाटा रूप परिणत होने पर भी अपनी अवस्था को त्यागकर समुद्र नदी नहीं होता समुद्र ही रहता है इसी प्रकार आत्मा कर्म के उदय से कषाय से भेद और तीव्रता को प्राप्त होता है लेकिन अपने गुण स्वभाव और द्रव्य की मर्यादा उलंघन नहीं करता, सभी अवस्था मे स्थिर रहता है।

स्वर्ण :- जैसे सोना हलका, भारी, चिकना पितादि रंग रूपी धर्मों से युक्त होने पर सभी अवस्था में होकर भी सोना (स्वर्ण) सबसे अलग नहीं है इसी तरह कर्म के कारण आत्मा हलका भारी, चिकना काला, गोरा, आदि रूप परिवर्तन होने पर भी आत्मा इन सबसे अलग नहीं होते हुए अपने अनंत ज्ञानादि गुणों से सोने की तरह भिन्न है।

जल :- जल जैसे स्वभाव से उष्ण नहीं है शीतल ही है, इसी तरह स्वभाव से जीव राग, द्वेष से रहित है इसी तरह संसार अवस्था में जीव अर्थात् स्वयं विद्यमान हैं।

प्र077 सम्पूर्ण जिन शासन को कौन सा जीव जानता है ?

उ0 जो जीव अपनी आत्मा को निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान के बल से ऐसा अनुभव करता है अर्थात् आत्मा को बंध संश्लेष रूप और स्पष्ट शब्द से संयोग मात्र का ग्रहण है, जो आत्मा जल के समान, मिट्टी के समान, स्वर्ण के समान, समुद्र के

समान, शीतल जल के समान स्वर्ण (इनका वर्णन प्र न0 76 से जान लेना चाहिए) जो साक्षात अनुभव करता है, वह जीव संपूर्ण जिन शासन को जानता है।

प्र078 अपदेश सूत्र मध्य किसे कहते हैं ?

उ0 "उपदिश्यते अर्थो येन" - जिसके द्वारा पदार्थ कहा जाये वह अपदेश है इस प्रकार अपदेश का अर्थ शब्द होता है जिससे की यहाँ पर द्रव्यश्रुत को ग्रहण करना और सूत्र शब्द से परिच्छिति रूप भावश्रुत जो कि ज्ञानात्मक है उसे ग्रहण करना इस प्रकार जो द्रव्यश्रुत के द्वारा वाच्य और भावश्रुत के द्वारा परिच्छेद हो वह उपदेश-सूत्र-मध्य कहा जाता है।

प्र079 शुद्धात्मानुभूति और निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानाभूति में क्या भिन्नता है ?

उ0 कोई भी भिन्नता नहीं है, एक है।

प्र080 सम्यग्ज्ञान पूर्ण कब प्राप्त होता है ?

उ0 शुद्धात्म भावना में परिणत अर्थात् समाधि में समविष्ट होने पर ही सम्यज्ञान की प्राप्ति होती है।

प्र081 शुद्धात्म भावना वह कैसे भाता है ?

उ0 सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर और योग इन सब ही भावनाओं में एक आत्मा ही है, योग का अर्थ यहाँ निर्विकल्प समाधि जिसको परम सामायिक या परमध्यान भी कहते हैं उस परमध्यान में भोगाकांक्षा, निदान, बधं और शल्य आदि भाव से रहित शुद्धात्मा का ध्यान करने पर समस्त सम्यज्ञान की प्राप्ति होती है।

प्र082 रत्नत्रय अभिन्न (एक) कौन से जीव को होता है ?

उ0 पंचेन्द्रिय के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित, जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्र अभिन्न है अन्य में नहीं।

प्र083 अज्ञानी कौन है ?

उ0 जिस जीव का आपा-परका भेद नहीं है वह जीव अज्ञानी है।

प्र084 जीव अज्ञानी कब तक रहता है ? अथवा उस जीव की एकान्त से धारणा कैसी होती है ?

उ0 जब तक इस आत्मा के ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म और राग द्वेषादि भाव कर्म में नोकर्म हूँ और कर्म नोकर्म मेरे है ऐसी प्रतीत होती रहती है तब तक यह आत्मा अप्रति बुद्ध अर्थात् यह जीव अज्ञानी है।

प्र085 बहिरात्मा जीव किसे कहते हैं ?

उ0 ज्ञानावरादि द्रव्यकर्म और रागादि भावकर्म रागादि नोकर्म में, मैं हूँ ऐसा प्रतीत है अथवा ये कर्म नोकर्म मेरे हैं इस प्रकार प्रतीत होती है। जैसे-की घड़े में वर्णादि गुण और घटाकर परिणत पुद्गल स्कन्ध होते है। अतः वर्णादि में जब तक घट इस प्रकार की अभेद प्रतीत होता है अर्थात् एक मानता है उसी प्रकार कर्म-नोकर्म के शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव निज परमात्मा की एकता रूप स्पष्ट बुद्धि बनी रहती है तब तक यह जीव अप्रतिबुद्ध स्वसंवेदन से रहित बहिरात्मा कहते हैं।

प्र086 भेद विज्ञान कितने तरह का होता है ?

उ0 भेद विज्ञान मूलक, शुद्धात्मानुभूति दो प्रकार का है। (1) स्वयंबुद्ध (2) बोधित बुद्ध भेद विज्ञान इस तरह दो भेद हैं।

प्र087 स्वयं बुद्ध और बोधित बुद्ध में क्या भिन्नता है ?

उ0 स्वयं बुद्ध अर्थात् जिस ज्ञान में पर उपदेश से रहित अपने आप जो भेद विज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्वयंबुद्ध कहते हैं,

जो दूसरे के उपदेश से जो भेद विज्ञान उत्पन्न होता है उसे बोधित बुद्ध कहते हैं।

प्र088 "दर्पण" के समान निर्विकार समता कब आती है ?

उ0 शुद्धात्मानुभूति जिनको प्राप्त होती है वे जीव संसार में विद्यमान शुभाशुभ बाहरी पदार्थों में अर्थात् आत्मा से भिन्न सभी पदार्थों में दर्पण के समान निर्विकार होकर रहते हैं।

प्र089 जीव के कौन सी परिणति से बंध और मोक्ष होता है ?

उ0 जब जीव अपनी शुद्ध आत्मा में अथवा देहादिक इतर पदार्थों में वर्तमान समय में जहां पर उपयुक्त रहता है उपादेय अर्थात् उपादेय बुद्धि से तन्मय होकर रहता है, वहीं पर अजीव में या जीवों में अजीवरूप देहादिक में परिणत होने पर बुद्ध और शुद्ध जीवों में परिणत होने पर मोक्ष होता है।

प्र090 बंध और मोक्ष का स्वरूप समझकर क्या करना चाहिए?

उ0 बंध और मोक्ष का स्वरूप जानकर सहजानंद एक स्वभाव

वाले जिन आत्मा में रमण करना चाहिए और उससे विलक्षण विपरीत; जो परद्रव्य है उनसे विरक्त होकर रहना चाहिए ऐसा आचार्य देव ने समयसार में समझाया है।

प्र091 शुद्ध और अशुद्ध भावों का कर्त्ता कौन से नय से है?

उ0 अशुद्ध निश्चय नय से अशुद्ध भावों का और शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

प्र092 पुद्गल कर्मों का कर्त्ता कौन से नय से है ?

उ0 अनुपचरित - असद्भूत व्यवहार नय से पुद्गल मय द्रव्य कर्मादि का कर्त्ता होता है ?

प्र093 शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं ?

उ0 वस्तु के शुद्ध और अशुद्ध आदि भेद कल्पना से रहित शुद्धता में भी एकत्व को ग्रहण करता है उसे शुद्ध निश्चयनय कहते हैं।

प्र094 अशुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं ?

उ0 सोपाधिक गुण और गुणी मे भेद भिन्नता से रहित जो ग्रहण करता है उसे अशुद्ध निश्चय नय कहते हैं। मतिज्ञानादि जीव के गुण हैं।

प्र095 अनुपचारित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उ0 निरुपाधि गुण में भेद को जो विषय करता हे उसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय कहते हैं। (जैसे-केवल ज्ञानादि जीव के गुण हैं।)

प्र096 सोपाधिक गुण किसे कहते हैं ?

उ0 उपाधि से सहित अर्थात् दूसरे के संयोग से जो गुण उत्पन्न होते हैं उसे सोपाधिक गुण कहते हैं, जो द्रव्य के परतंत्र

अवस्था में पाये जाते हैं।

प्र097 निरुपाधि गुण किसे कहते हैं ?

उ0 जो गुण उपाधि से रहित अर्थात् संयोग रहित है उन्हें निरुपाधि गुण कहते हैं। जो द्रव्य की स्वतंत्र अवस्था में पाये जाते हैं।

प्र098 गुण किसे कहते हैं ?

उ0 जो सम्पूर्ण द्रव्य में व्याप्त कर रहते हैं और समस्त पर्याय के साथ रहता है। अथवा जो द्रव्य को द्रव्यान्तर से पृथक करता है। जो धर्मादिक द्रव्य में भेद करता है उसे गुण कहते हैं।

प्र099 परद्रव्य कितने प्रकार का है ?

उ0 सचित, अचित और मिश्र के रूप पर द्रव्य तीन प्रकार का है।

प्र0100 गृहस्थ की अपेक्षा तीन प्रकार के परद्रव्य कौन से हैं?

उ0 गृहस्थ की अपेक्षा स्त्री आदि संचित परद्रव्य है। स्वर्णादि आभूषण अचित परद्रव्य है और श्रृंगार सहित स्त्रिादि मिश्र परद्रव्य है।

प्र0101 साधू की अपेक्षा तीन प्रकार के परद्रव्य कौन से हैं?

उ0 तपोधन अर्थात् साधू की अपेक्षा छात्रादि (शिष्यादि) सचित परद्रव्य है, कमण्डलु, पिछी आदि अचित परद्रव्य है, उपकरण सहित शिष्यादि मिश्र परद्रव्य है।

अथवा रागादि भावकर्म सचित परद्रव्य है, ज्ञानावरणादि अचित परद्रव्य है और द्रव एवं भाव कर्म मिश्र परद्रव्य है।

प्र0102 निर्विकल्प-समाधि में परद्रव्य तीन प्रकार से कौन सी

है ?

उ0 सिद्ध परमेष्टि का स्वरूप सचित परद्रव्य है, पुद्गल आदि पाँच द्रव्य अचित परद्रव्य है। और गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणादिरूप परिणत जो संसारी जीव का स्वरूप वह मिश्र परद्रव्य है।

प्र0103 अन्तरात्मा कौन होता है ?

उ0 जो भूतार्थ निश्चयनय को जानता हुआ तीन काल में होने वाले उपर्युक्त परद्रव्य संबधी मिथ्या विकल्प को नहीं करता है वह मोहभाव रहित सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा ज्ञानी होता है और भेदाभेद रत्नत्रय की भावना में निरत होता है।

प्र0104 परमात्मा आराधक कौन नहीं होता अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति किसे नहीं होती है ?

उ0 जैसे-कोई राज पुरूष भी राजा और उसके शत्रुओं के साथ संसर्ग रखता है तो वह राजा का आराधक नहीं कहला सकता है। उसी प्रकार परमात्मा की आराधना करने वाले पुरूष आत्मा को प्रतिपक्षभूत जो मिथ्यात्व व रागादिक भाव उन रूप परिणमन करने वाला होता है तब वह परमात्मा का आराधक नहीं हो सकता है, अन्य समय में अर्थात् जब मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है।

प्र0105 हमारी भूल क्या है ?

उ0 अज्ञान से ठगी हुई बुद्धिवाला संसारी प्राणी अपने साथ मिलकर रहने वाले शरीर और अपने पृथक गहने इत्यादि पुद्गल द्रव्य को अपना कहता है, नाना प्रकार की रागद्वेषादि रूप कल्पना करता है। इस पर आचार्य कहते हैं हे भाई ! जब सर्वज्ञ भगवान ने नित्य सदैव जीव को

उपयोग लक्षण वाला देखा है तो फिर पुद्‌गल द्रव्य रूप कैसे हो सकता है ? तू पुद्‌गलात्मक पदार्थ को मेरा-मेरा कहता है। हां यदि जीव द्रव्य पुद्‌गल रूप हो जाये तो पुद्‌गल द्रव्य भी जीवरूप हो जावे, तब तू कह सकता है कि वह पुद्‌गल द्रव्य मेरा है, पर ऐसा तीन काल में नही हो सकता अतः मेरा यह कहना ही भूल भरा है।

प्र0106 यदि जीव शरीर रूप नहीं है तो द्वौ कुन्देन्दुतुषारहार धवलौ इत्यादि शरीर आधार लेकर की गई तीर्थंकर की स्तुति और "देसकुलजाईसुद्धा" इत्यादि आचार्यों की स्तुति सब ही मिथ्या ठहरती है इसलिये आत्मा ही शरीर हैं शरीर ही आत्मा है- ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है आप के कथन में और हमारा कथन में विपरीत्ता क्या है ?

उ0 आपने जो कहा है सो ठीक नहीं है क्योंकि आपने निश्चय और व्यवहार में जो परस्पर साध्य साधक भाव है उसको नहीं जाना है।

व्यवहार नय कहता है कि जीव और देह अवश्य एक ही है, किन्त निश्चय नय के अभिप्राय से जीव और देह दोनों परस्पर कभी किसी काल में भी एक नहीं होते। जैसे-चाँदी और सोना मिली हुई दशा में व्यवहारनय से परस्पर एक है फिर भी निश्चयनय से वे अपने रूप रंग को लिये हुए भिन्न-भिन्न है, वैसे ही जीव और देह का व्यवहार है। इसलिये व्यवहार नय से देह के स्तवन से आत्मा का स्तवन मान लेने में कोई दोष नहीं हैं। जीव से अन्य इस पुद्‌गलमयी देह की स्तुति-गुणानुवाद करके मुनि भी ऐसा मानते है कि

मैने केवली भगवान की स्तुति वन्दना कर ली। इसका स्पष्टीकरण इस तरह है- जीव से भिन्न इस पुद्गलमय देह का स्तवन करके मुनि ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवान की स्तुति और वन्दना करली तात्पर्य यह है कि चाँदी के साथ मिले हुए स्वर्ण को व्यवहार से सफेद सोना कहते हैं, पर वास्तव में सफेद सोना नहीं होता। उसी प्रकार अमुक केवली भगवान श्वेत, लाल या कमल के रंग वाले है, इत्यादि रूप से उनके देह का स्तवन करने पर व्यवहार से उनकी आत्मा स्तवन हो जाता है, किन्तु निश्चय से नहीं है।

प्र0107 निश्चनय के अभाव में स्तुति (अधूरी) पूर्ण क्यों नहीं होती ?

उ0 देह का स्तवन करने पर जो केवली का स्तवन है वह निश्चय नय को मान्य नहीं है; क्योंकि शरीर के गुण जो शुक्ल, कृष्णादि है वे केवली के अपने गुण नहीं हो सकते है। तब केवली का स्तवन कैसे होता है ? जो केवली के अनंतज्ञानादिक गुणों का वर्णन करता है, वही वास्तव में केवली भगवान का स्तवन करने वाला होता है। भावार्थ जैसे शुक्ल वर्ण-वाली चाँदी के कथन से स्वर्ण का कथन नहीं बन सकता वैसे ही केवली के शरीर में होने वाले शुक्लादि वर्णों के स्तवन को चिंदानन्द एक स्वभाव वाले केवली भगवान का स्तवन निश्चय से मान्य न होने से अधूरी है।

जैसे- नगर का वर्णन करने पर भी राजा का वर्णन नहीं होता उसी तरह देह के गुणों की स्तुति करने पर केवली

भगवान के गुणों की स्तुति नहीं होती।

प्र0108 व्यवहार निश्चय को नहीं मानता और निश्चय नय व्यवहार को नहीं मानता है, तब दोनों को मानना चाहिए तो कैसे दोनों का संबध है ?

उ0 व्यवहार और निश्चय दोनों ही दृष्टिकोण है गुणों को देखने की व्यवहार (दृष्टिकोण) निश्चय (दृष्टिकोण) को साधन है और निश्चय उसका फल है जैसे किसी ने आम का वृक्ष लगाया वृक्ष फल रहित है तो वृक्ष अधूरा है, जैसे-गृहणी से रहित गृहस्थ जीवन पूर्ण नहीं होता, सन्तान रहित गृहणी भी अधूरी होती है इसी तरह व्यवहार और निश्चय का संबंध है।

प्र0109 व्यवहार और निश्चयस्तुति में क्या होता है ?

उ0 व्यवहार से भगवान के बाह्य विभूति जो भव्य जीवों के आत्मकल्याण का कारण होती है और निश्चय अंतरंग विभूति का गुणानुवाद से स्वयं का कल्याण होता है, और व्यवहार-निश्चय से स्व पर का कल्याण होता है/एंव साध्य साधक है।

प्र0110 निश्चय स्तुति कैसे की जाती है ?

उ0 जो द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय रूप पांचों इन्द्रियों के विषयों को स्वसंवेदन-भेदज्ञान के बल से जीतकर शुद्धात्मा का अनुभव करता है वह जिन है, वही जितेन्द्रिय है, वही निश्चय स्तुति है।

जिन-जो जीव द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय रूप पंचेन्द्रियों के विषयों को जीतकर शुद्ध ज्ञानचेतना गुण से परिपूर्ण अपने शुद्धात्मा का मानता है, जानता है, अनुभव करता है, संचेत्ता अर्थात्

शुद्धात्मा से तन्मय होकर रहते हैं उस पुरूष को ही निश्चंयनय जानने वाले साधू लोग जितेन्द्रिय अथवा जिन कहलाते हैं।

जो पुरूष उदय में आये हुए मोह को सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र इन तीनों की एकाग्रतारूप निर्विकल्प समाधि के बल से जीतकर अर्थात् दबाकर शुद्ध-ज्ञानगुण के द्वारा अधिक अर्थात् परिपूर्ण आत्मा को मानता है, जानता है, अनुभव करता है, उस साधु को परमार्थ के जानने वाले जितमोह अर्थात् मोह से रहित जिन अथवा आत्म जित मोह कहकर निश्चय स्तुति की है।

जब शुद्धात्मा की अनुभूति करने वाले साधु के निर्विकल्प समाधि में जब मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है, उस समय तीन गुप्ति रूप परिणत समाधिकाल में वह साधु क्षीण मोह जिन होता है ऐसा कहकर परमार्थ को जानने वाले साधुओं ने निश्चय स्तुति कहते हैं।

भाव्य तो रागादि परिणत आत्मा और भावक राग उत्पन्न करने वाले उदय में आया हुआ मोहकर्म हैं। इन दोनों भाव्य भावकों का जो सद्भाव अर्थात् स्वरूप उसका अभाव, विनाश या क्षय है वही निश्चय स्तुति है।

प्र0111 मोह पद परिवर्तन से क्या तात्पर्य है ?

उ0 मोह पद परिवर्तन से मोह का जैसा कथन किया ऐसा ही राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय ये ग्यारह सूत्र और श्रोत्र चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन ये पांच इन्द्रिय सूत्र के द्वारा पृथक् पृथक् लेकर व्याख्यान करना चाहिए इसी प्रकार और भी असंख्यात

लोक प्रमाण विभाव परिणाम है, यथा उनको भी समझकर ग्रहण करना चाहिए मोह पद परिवर्तन ने सर्व ऐसा ही समझना चाहिए।

प्र0112 रागादिकों का प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग किस प्रकार करना चाहिए ?

उ0 यह आत्मा जब अपने से भिन्न पदार्थों को पर जानकर उसको उसी समय छोड़ देता है। अतः ज्ञान पर पदार्थ का त्यागकराकर स्व में स्थित होता है इसलिये ज्ञान से ही प्रत्याख्यान है।

प्र0113 ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ0 "जानाति इति ज्ञानं" इस प्रकार ज्ञान की शब्द की व्युत्पति है अतः स्वसंवेदन ज्ञान ही आत्मा नाम से कहा जाता है और प्रत्याख्यान को ज्ञान कहते हैं, यहां आचरण सहित ज्ञान ही ग्राह्य है आचरण रहित ज्ञान ग्राह्य नहीं आचरण से भी देश संयम नहीं सकल संयम ग्राह्य है, सकल संयम में ही निर्विकल्प स्वसमाधी में स्थित स्वसंवेदन रूप आत्माश्रित आचरण ही परम ग्राह्य है अन्य नहीं यही सर्वत्र जानना है।

प्र0114 यहाँ पर जानना किसे कहते हैं ?

उ0 वचन के अनुसार सम्यग्आचरण करने वाले को ही जानना कहा, ज्ञान के निमितभूत भाषा वर्गणाओं को जानना कहा, ज्ञान के निमितभूत भाषा वर्गणाओं को जानना यहां नहीं कहा ज्ञान से द्रव्यश्रुत प्रयोजन नहीं भाव श्रुत प्रयोजन है।

प्र0115 इससे तो छट्ठे गुणस्थान तक जीव अज्ञानी हो जायेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा ?

उ0 यह बात तो तभी संभव है जब जीव सही रूप से आगम के कथन प्रणाली न समझने के कारण अभी तो छट्ठे गुणस्थान की बात है आगम में केवल ज्ञानके नीचे सभी जीव अज्ञानी है तो ज्ञानी अज्ञानी अपेक्षा से हैं। जैसे-किसी आदमी ने किसी से पूछा छोटा कब होता है, तो उ0 मिलता है जब हमारे सामने बड़े होते हैं, इसी तरह जीवन में जब तक दोष है तब तक तारतम्यता से अज्ञान है, लेकिन तारतम्यता युक्त अज्ञान आत्म कल्याण कारण है लेकिन तारतम्यता रहित अज्ञान संसार का कारण सो जानना है। क्योंकि वहां एकान्त से अज्ञान है।

प्र0116 निर्ममत्व अथवा निर्मोही किसे कहते हैं ? उसके आचार एवं विचार कैसे होते हैं ?

उ0 शुद्ध निश्चय नय से टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाव वाला जो मैं उसको रंजायमान करने के लिये रागादि परभाव कभी समर्थ नहीं हैं। इसलिये द्रव्य और भावरूप कोई भी मोह मेरा नहीं है, किन्तु ज्ञान दर्शन उपयोग रूप लक्षण वाला होने से मेरा आत्मा तो इस प्रकार जानता है कि मैं तो केवल उपयोग स्वरूप हूँ। अतः एवं मैं तो मोह से दूर हूँ निर्मम हूँ इस प्रकार जो अपने केवल विशुद्ध ज्ञान दर्शनमयी जानता हूँ तब उसे ही शुद्धात्मा के स्वरूप को जानने वाले लोग मोह से रहित निर्मोही निर्ममत्व कहते हैं।

प्र0117 निर्ममत्व अथवा निर्मोही जीव धर्मादिक द्रव्य के बारे में क्या सोचता है ?

उ0 धर्मास्तिकाय आदि जो समस्त ज्ञेय पदार्थ है, वे सब मेरे नहीं है, ऐसा ज्ञानी जीव जानता है। वह जानता है कि

मैं तो केवल विशुद्ध ज्ञान दर्शन उपयोगमयी होने से मैं तो उपयोग के साथ अभिन्न हूँ, उपयोगमयी हूँ, क्योंकि मैं एक टंकोत्कीर्ण-ज्ञायक-स्वभाव हूं इसलिये व्यवहार नय से परद्रव्य के दधि-खांड और शिखारिणी के समान भले ही मेरे साथ एकता हो, फिर भी शुद्धनिश्चयनय से सब मेरा स्वरूप नहीं है, इसलिये मैं तो इन सब परद्रव्यों से निर्मम हूँ। ऐसा शुद्धात्मा तत्व या शुद्धात्म स्वरूप के अनुभव करने वाले को सिद्धान्त के जानकार पुरूप परद्रव्य से निर्मम हुआ कहते हैं।

प्र0118 निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप क्या है ?

उ0 अनादिकाल से देह और आत्मा की एक मान्यता रूप भ्रमात्मक अज्ञान भाव से जो पहले अप्रतिबद्ध था अर्थात् सही बात को नहीं समझने वाला था। किन्तु जिस प्रकार हाथ में रखे सोने को भूल जाता है, या निन्द्रा में मग्न होकर सो जाता है फिर निन्द्रा के दूर हटने पर उस स्वर्ण का स्मरण आ जाने से प्रसन्न हो जाता है वैसे ही मैं भी परम गरू के प्रसाद से प्रतिबद्ध होकर अब शुद्धात्मा में तल्लीन हो रहा हूँ एवं वीतराग चेतनमात्र-ज्योति स्वरूप हूँ इस तरह चितंवन करते हुये पुद्‌गल का एक परमाणु भी मेरा नहीं सोचकर निर्विकल्प समाधि में स्थिर होना निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप है।

प्र0119 अजीव अधिकार में गाथाएँ कितनी हैं ?

उ0 अजीवाधिकार में तीस गाथाएँ हैं।

प्र0120 जीवाधिकार कथन किस रूप में था ?

उ0 जीवाधिकार में निश्चय नय कथन विधि रूप में था। अर्थात्

क्या करना चाहिए।

प्र0121 अजीवाधिकार में कथन कौन से रूप में हैं ?

उ0 अजीवाधिकार में निश्चय नय का कथन निषेध रूप में हैं अर्थात् क्या करना नहीं चाहिये।

प्र0122 जीव के स्वरूप के बारे में अज्ञानी लोगों की भिन्न भिन्न कल्पनाएँ अथवा मान्यताएँ कैसी कैसी है ?

उ0 जो आत्मा को जानते नहीं है किन्तु आत्मा से भिन्न शरिरादि पर द्रव्य को ही जीव नाम से कहते हैं, ऐसे कितने ही परात्मवादि मोही जीव है।

उनमें से कोई जीव जैसे अंगारे से कोयले का कालापन कोई अलग नहीं वैसे ही रागदि भावों से अलग जीव नहीं है, किन्तु रागादिरूप अध्यवसान भाव अर्थात् भाव या कर्म ही जीव है ऐसा कहते है।

कोई एकान्तवादि अध्यवसान अर्थात् रागादि भावों में जो तीव्रता-मन्दतारूप तारतम्य लिये हुये अनुभव होता है। तत्वस्वरूप शक्ति समूह को प्राप्त होने वाला ही जीव है।

चार्वाक आदि जो कर्म और नोकर्म से रहित शुद्ध परमात्मा के भेदविज्ञान से शून्य शारिरादि नोकर्म को जीव कहते है।

कुछ लोग लता, दारू, अस्थि और पाषाणादि रूप जो कर्मों का फल है उसे जीव कहते हैं।

कुछ लोग अनुभाग के तीव्रता-मन्दता रूप स्वभाव से अपना फल देता है वह जीव है।

जीव और कर्म इन दोनों को शिखरीणी के समान मिले

हुए को ही कुछ लोग जीव कहते हैं।

आठ काठो का परस्पर संयोग होकर खाट बन जाती है, वैसे ही आठ कर्मों के संयोग से जीव हो जाता क्योंकि आठ कर्मों के संयोग से भिन्न-शुद्ध-जीव की उपलब्धि नहीं है इस तरह एकान्त अज्ञानी जीव के 363 मत विशेष रूप में प्रचलित है।

प्र0123 प्रश्न क्रमांक 121 में कहीं मान्यता भी सर्वज्ञ वीतरागी के उपदेश में पायी जाती है, तो इनमें दोष क्या है अर्थात् यह एकान्त क्यों हैं ?

उ0 प्रश्न क्रमांक 122 की सभी मान्यता देह रागादि रूप कर्म-जनित अवस्थाएँ पौद्गालिक द्रव्य कर्म के उदयरूप परिणाम से उत्पन्न हुई है। इसलिये सर्वज्ञ भगवान ने उन्हें कर्मजनित बतलाया है अतः निश्चय से इन्हें जीव कैसे कहा जाता है अर्थात् कभी नहीं कहा जा सकता है।

जैसे- अंगारे से कालेपन के समान जीव भी रागादि से भिन्न नहीं है ऐसा जो कहा गया है यह ठीक नहीं है यह बात हम अनुमान से सिद्ध कर दिखाते हैं। देखो शुद्ध जीव रागादि से भिन्न हैं, क्योंकि परम समाधि में स्थित पुरूषों के द्वारा शरीर और रागादि से सर्वथा भिन्न है ऐसा चिदानन्द एक स्वभाव वाले शुद्ध जीव की उपलब्धी देखी जाती है। जैसे-कीट-कालिमादि से भिन्न स्वर्ण के सामान जो अंगार का दृष्टांत दिया है यहाँ वह घटित नहिं होता। क्योंकि जैसे स्वर्ण का पीलापन और अग्नि का उष्णता स्वभाव है वैसे अंगारे का भी कृष्णपना स्वभाव है, उसे पृथक् नहीं कर सकते किन्तु रागादिक तो डांक के समान

तप के द्वारा रागादि से रहित होता है उसी तरह कोयले का काले पन अग्नि के सम्पर्क से कालापन नहीं रहता अर्थात् समाप्त होकर कोमल सफेद हो जाता है इसलिए यह दोष युक्त है।

इसी प्रकार आठ कर्मों के संयोग से जीव उत्पन्न हो जाता है, सो भी ठीक नहीं हैं। जैसे-शुद्ध जीव आठ कर्मो के संयोग से भिन्न वस्तु है, क्योंकि समाधि पर स्थित रहने वाले महापुरूषों द्वारा आठ कर्मों के अभाव में सिद्ध परमेष्ठि अर्थात् शुद्ध जीव नहीं बनता अन्यथा परमात्मा तत्व का अभाव हो जायेगा। इसी तरह सभी जानना चाहिए। विशेष न्यायादि शास्त्र से जान लेना चाहिए।

प्र0124 राग-द्वेष पुद्गल कैसे है क्योंकि वे आंखों से देखने में नहीं आता है इसलिये पुद्गल नहीं है ?

उ0 राग द्वेषादि सभी पुद्गल और मूर्तिक ही है। क्योंकि मूर्तिक का मूर्तिक पर असर होता है, और अमूर्तिक पर किसी भी तरह का प्रभाव नहीं होता और रागद्वेष आदि पर दाल-रोटि मनुष्य-तिर्यंच-आदि का प्रभाव पाकर हीनाधिक असर पाया जाता है इससे सिद्ध होता है, राग-द्वेषादि पुद्गल एवं मूर्तिक हैं।

प्र0125 रागद्वेषादि अध्यसाय भाव पुद्गलमय है तो फिर जीव रागी द्वेषी, मोही होता है इस प्रकार अन्य ग्रंथों में इनको जीव स्वरूप क्यों कहाँ गया है।

उ0 ये सब रागादि अध्यवसानमयी भाव जीव है, ऐसा जिनवर भगवान ने जो उपदेश दिया है। वह व्यवहार नय का मत है इसलिये कोई दोष नहीं।

प्र0126 आगम में व्यवहार से इन्हें जीव कैसे कहा ?

उ0 राजा जब कहीं जाता हे तो अपने किकरों को साथ लेकर जाता है वहाँ उस सारे समुदाय को ही "यह राजा जा रहा है" इस प्रकार से कहा जाता है, वैसे ही राग द्वेषाधि अध्यवसान भाव जो अन्य पुद्गलादि द्वारा उत्पन्न हुए हैं, अतएव कदाचित जीव से भिन्न भावों सहित जीव को ही व्यवहार नय से आगम में जीव कहा है।

प्र0127 प्रयोजन भूत शुद्धात्मा का स्वरूप कैसा है ?

उ0 शुद्ध जीव तो ऐसा है अर्थात् प्रयोजन भूत शुद्धात्मा स्वरूप में न रस है, न रूप है, न गन्ध है, न इन्द्रिय गोचर ही है, केवल चेतना गुणवाला है। शब्द रूप भी नहीं है, जिसका किसी भी चिन्ह द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता है और जिसका कोई निश्चित आकार भी नहीं है और ज्ञान और दर्शन के उपयोग स्वरूप है इस तरह प्रयोजन भूत शुद्धात्मा स्वरूप है।

प्र0128 परद्रव्य के संयोग से होने वाले परिणाम कौन से हैं?

उ0 वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा संस्थान और संहनन, वे राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्वादि प्रत्यय (कारण) तथा कर्म, नोकर्म, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, अध्यात्म स्थान अनुभाग स्थान, योगस्थान, बंध स्थान, उदयस्थान मार्गणास्थान, स्थितिबंधस्थान, संक्लेशस्थान, विशुद्धि स्थान, संयमलब्धीस्थान, जीवस्थान, गुणस्थान ये सब ही पुद्गल द्रव्य के संयोग से होने वाले परिणाम हैं।

प्र0129 वर्ण किसे कहते हैं ?

उ0 वर्ण शब्द के अनेक अर्थ हैं- वर्ण-शुक्लादि वर्ण जैसे सफेद

रंग लाओ, वर्ण शव्द का अर्थ अक्षर भी होता है वर्ण शब्द का अर्थ ब्राह्मणादि भी है; वर्ण शब्द का अर्थ यश भी है जैसे-यश की कामनायें देता है, यह अनेक अर्थ है और जो देखा जाता है उसे वर्ण कहते हैं।

प्र0130 गन्ध किसे कहते हैं ?

उ0 जो सूंघा जाता है वह गन्ध है अथवा सूंघने मात्र को गन्ध कहते हैं।

प्र0131 रस किसे कहते है ?

उ0 जो स्वाद को प्राप्त होता है रसना अर्थात् स्वाद मात्र को रस कहते हैं।

प्र0132 स्पर्श किसे हैं ?

उ0 जो स्पर्शन लिया जाता है उसे या स्पर्शन मात्र को स्पर्श कहते हैं।

प्र0133 रूप किसे कहते हैं ?

उ0 अंतरंग शुद्धात्मानुभूति की द्योतक निर्ग्रन्थ एवं निर्विकार साधुओं की वीतराग मुद्रा को रूप कहते हैं, अथवा वर्ण को ही रूप कहते हैं।

प्र0134 संस्थान किसे कहते हैं ?

उ0 संस्थान का अर्थ आकृति है, जिसके उदय से औदारिकादि शरीर की आकृति बनती है उसे संस्थान कहते हैं।

प्र0135 संहनन किसे कहते हैं ?

उ0 अस्थियों के वंध विशेष को संहनन कहते हैं।

प्र0136 राग किसे कहते हैं ?

उ0 चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से जो इसके रस विपाक

कारण पाय इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में जो प्रीति-अप्रीति रूप परिणाम को राग कहते हैं।

प्र0137 द्वेष किसे कहते हैं ?

उ0 अनिष्ट विषयों में अप्रीति रखना भी मोह का ही एक भेद है उसे द्वेष कहते हैं,

असह्याजनों में तथा असह्य पदार्थों के समहों वैरके परिणाम रखने को द्वेष कहते हैं।

प्र0138 मोह किसे कहते हैं ?

उ0 पदार्थ का अन्यथा (विपरीत) ग्रहण अथवा तिर्यंच मनुष्यों के प्रति करुणाभाव तथा विषयों की संगति को मोह अथवा मोहके बाह्य चिन्ह कहते हैं।

दर्शन मोहनीय के विपाक से जो कलुषित परिणाम होता है। मिथ्यात्व, त्रिवेद (पुरूष, स्त्री, नपुंसक, वेद) प्रेम हास्य आदि को भी मोह कहते हैं।

प्र0139 प्रत्यय किसे कहते हैं ?

उ0 प्रत्यय शब्दों के अनेक अर्थ है, कहीं पर ज्ञान के अर्थ में वर्तता है जैसे - अर्थ शब्द प्रत्यय/कहीं पर कसम शब्द के अर्थ में वर्तता है जैसे-पर आदि के चुराये जाने प्रसंग में दूसरे के द्वारा उलाहना मिलने पर -"प्रत्ययोऽनेन कृत" अर्थात् द्वारा कसम खायी गयी। कही पर हेतु (निमित्त) के अर्थ में होता है,

दृष्टि, श्रद्धा रूची और प्रत्यय से सब पर्यायवाची नाम हैं।

प्र0140 कर्म किसे कहते हैं ?

उ0 कर्म शब्द के अनेक अर्थ है अर्थात् कर्म कारक क्रिया जीव

के साथ बंधने वाली विशेष जाति के पुद्‌गल स्कन्ध कर्म कारक अर्थ तो जगत प्रसिद्ध है क्रियाएँ संभवदान व अधकर्म आदि के भेद से अनेक प्रकार है कुशल और अकुशल कर्म में पाप पुण्य के अर्थ में है वास्तव में कर्म का मौलिक अर्थ तो क्रिया ही है। जीव मन; वचन; काय के द्वारा कुछ न कुछ करता है वह सब उसकी क्रिया को कर्म कहते हैं।

प्र0141 नोकर्म किसे कहते हैं ?

उ0 कार्माण वर्गणा को छोड़कर शेष उन्नीस प्रकार की वर्गणाए नोकर्म वर्गणाएँ हैं। अर्थात् कार्माण, भाषा, मनो व तैजस इन चार को छोडकर शेष 19 वर्गाणाएँ नोकर्म वर्गणाएँ हैं।

नो शब्द का अर्थ-एक तो निषेध (नकारात्मक) और दूसरा ईषत अर्थात किंचित् थोड़ा इसलिये तीन शरीर और छह पर्याप्ति के योग्य पुद्‌गल परमाणु को नोकर्म कहते हैं।

प्र0142 वर्ग किसे कहते हैं ?

उ0 परमाणु के अविभाग प्रतिच्छेद रूप शक्ति समूह को वर्ग कहते हैं।

प्र0143 वर्गणा किसे कहते हैं ?

उ0 वर्गों के समूह को वर्गाण कहते हैं।

प्र0144 स्पर्द्धक किसे कहते हैं ?

उ0 वर्गणाओं के समूह का स्पर्द्धक कहते हैं। अथवा कर्म की शक्ति क्रम से विशेष वृद्धि को प्राप्त हो उसे स्पर्द्धक कहते हैं।

प्र0145 अध्यवसान किसे कहते हैं ?

उ0 शुभ तथा अशुभ रागादिक के विकल्प जहाँ हो वे अध्यवसान कहते हैं।

प्र0146 अध्यात्म स्थान किसे कहते हैं ?

उ0 स्वपर एकत्व का अभ्यास होने पर विशुद्ध चैतन्य परिणाम को अध्यात्म स्थान कहते हैं।

प्र0147 अनुभाग स्थान किसे हैं ?

उ0 जो बन्ध से उत्पन्न होता है उसे बन्ध स्थान कहा जाता है, पूर्व बद्ध अनुभाग घात किये जाने पर जो बन्ध अनुभाग के सदृश होकर पड़ता है वह भी बंध स्थान ही है, क्योंकि उसके सदृश अनुभाग बंध पाया जाता है। एक जीव में समय में जो कर्मानुभाग दिखता है उसे स्थान कहते हैं।

प्र0148 घातिया कर्मों के अनुभाग कौन से हैं ?

उ0 लता, दारू, हड्डी और पाषाण जैसे शक्ति को लिये हुये चार घातिया कर्मों के अनुभाग स्थान होते हैं।

प्र0149 अघातिया कर्मो के अनुभाग स्थान कौन से हैं ?

उ0 गुड़, खाँड, शर्करा और अमृत समान शुभ रूप अघातिया कर्म के अनुभाग स्थान होते हैं।

प्र0150 अशुभ अघातिया कर्मो के अनुभाग स्थान कौन से हैं ?

उ0 नीम, कांजी, विष और हलाहल सरीखे अनुभाग स्थान अशुभ अघातिया कर्म स्थान होते हैं।

प्र0151 योगस्थान किसे कहते है ?

उ0 काय, वचन, और मनवर्गणा कम्पन जिनका लक्षण है उसे योगस्थान कहते हैं।

प्र0152 स्थिति बंध स्थान किसे कहते हैं ?

उ0 जीव प्रदेशों की उथल पुथल को अस्थिति अथवा इनसे रहित को स्थिति कहते, इनके योग्य जो परिणाम होते हैं उसे-स्थिति बंध स्थान कहते है।

प्र0153 संक्लेश स्थान किसे कहते हैं ?

उ0 कषायों की उत्कृष्टता को संक्लेश स्थान कहते है।

प्र0154 विशुद्धि स्थान किसे कहते हैं ?

उ0 कषायों के मन्द उदयरूप से विशुद्धि स्थान होते हैं।

प्र0155 संयमलब्धिस्थान किसे कहते है ?

उ0 कषायों को क्रम से हीन करने रुप परिणाम को संयमलब्धि स्थान कहते हैं।

प्र0156 जीव समास किसे कहते हैं ?

उ0 अनन्तानन्त जीव और उनके भेद प्रभेदों का जिनका संग्रह किया उन्हें जीव समास कहते हैं अथवा जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं। अर्थात् पाया जाता है। उसे जीव समास कहते हैं। जिन धर्म विशेषों के द्वारा नाना जीव और उनकी नाना प्रकार की जातियाँ, जानी जाती हैं पदार्थों का संग्रह करने वाले उन धर्म विशेषों को जीव समास कहते हैं।

प्र0157 निश्चय से वर्णादिक जीव के क्यों नहीं ?

उ0 इन वर्णादिक भावों के साथ संसारी जीव का एक क्षेत्रावगाही (एकमेक) संयोग संश्लेष संबंध होता है, जैसे कि दूध का जल के साथ होता है। ऐसा होने पर भी वास्तविकता में ये जीव के नहीं हो जाते क्यों कि जीव तो इनके साथ रहकर भी अपने उपयोग गुण के कारण इससे भिन्न ही झलकता है।

प्र0158 निश्चय के जीव, व्यवहार से क्या जानते हैं अथवा मानते हैं ?

उ0 जैसे मार्ग मे चलते हुए को लुटते देखकर व्यवहारी जन कहते हैं कि यह मार्ग लुटता है। पर वास्तव में देखा जाये तो कोई मार्ग नहीं लुटता, किन्तु उस मार्ग में पथिक ही लुटते हैं। उसी प्रकार जीव में रहने वाले कर्मों के और नोकर्म के वर्णों को देखकर यह वर्ण जीव का है ऐसा व्यवहार से जिनेन्द्र देव ने कहा है। इसी प्रकार गंध, रस, स्पर्श, रूप शरीर आकार इत्यादि सभी व्यवहार से ऐसा है निश्चय को जांनने वाले लोग कहते हैं।

प्र0159 तादात्म्य संबंध किसे कहते हैं ?

उ0 अग्नि और उष्णता जैसे हमेशा अभिन्न अर्थात अलग अलग नहीं है उसे तादात्म्य संबंध कहते हैं।

प्र0160 संश्लेष संबंध किसे कहते हैं ?

उ0 रस्सी, वस्त्र और काष्ठ आदिक के बिना तथा अल्लीवण के बिना जो चिक्कण और अचिक्कण द्रव्यों अथवा चिक्कण द्रव्यों का परस्पर बंध होता है वह संश्लेष बंध कहलाता है।

प्र0161 संयोग संबंध किसे कहते हैं ?

उ0 संयोग का अर्थ मिश्रित करना अर्थात् मिलाना अथवा पृथक सिद्ध पदार्थों के मेल को संयोग कहते हैं। बंध का अर्थ एकता संयोग से जो अभिन्नता आती है उसे संयोग संबंध कहते हैं।

प्र0162 कौन सा नय कौन सा संबंध ग्रहण करता है ?

उ0 निश्चय नय सिर्फ तादात्म्य संबंध ग्रहण करता है और व्यवहार नय से संश्लेष और संयोग संबंध को ग्रहण करता है।

प्र0163 वर्णादिक तादात्म्य संबंध क्यों नही हैं ?

उ0 विवक्षित् अर्थात् वर्तमान और अविवक्षित भूत या भावि भव में जो संसार में स्थित है उन्हीं जीवों के अशुद्ध भय में जो संसार में स्थित है उन्हीं जीवों के अशुद्ध भय से वर्णादिक का संबधं है, किन्तु संसार से रहित मुक्त जीवों के वर्णादिक जो पुद्गल के गुण हैं, उनका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं हैं क्योंकि जैसा तादात्मय संबंध जीव के साथ केवल ज्ञानादि गुणों का और सिद्धत्वादिपर्यायों का है वैसा तादात्म्य संबंध वर्णादिक के साथ अशुद्धनय से भी जीव का नहीं है। इसलिये जीव के साथ तादात्म्य संबंध नहीं है।

प्र0164 एकान्त से जीव को वर्णादिक मानने पर दोष क्या आता है ?

उ0 जैसे अनंतज्ञान और अव्याबाध सुख आदि जीव में होते हैं वैसे ही वर्णादिक गुण पुद्गल में हैं ऐसा स्पष्ट है, फिर भी यदि तू अपने मन मे दुराग्रहता पूर्वक समझता है कि वर्णादिक भी जीव के गुण हैं तो बड़ा भारी दोष आता है वह यह है कि विशुद्ध-ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला जीव और पुद्गल वर्णादिक स्वभाव वाला जीव इस प्रकार जीव और अजीव रहित परमात्मा स्वरूप जीव में रागादि नहि होते ऐसा आगम का कथन है, आगम का विरोध होने से महान मिथ्यात्व कर्म का बन्ध होता है आदि अनके दोष निर्माण

होकर कालान्तर में द्रव्य और संसार का अभाव होगा। अर्थात निगोद में जाता है इससे त्रस पर्ययरूप संसार का अभाव होता है।

प्र0165 संसार अवस्था में वर्णादिक का जीव के साथ एकान्त से तादात्म्य संबंध मानने पर क्या दोष है ?

उ0 यदि संसार में स्थित जीवों के तेरे कहने पर अथवा आपके अनुसार पुद्गल के समान वर्णादिक गुण एकान्त से मान लिया जाये तो संसार में स्थित जो जीव हैं वे अमृत स्वरूप जो अनंत चतुष्टमय लक्षण को छोड़कर शुक्ल-कृष्णादि लक्षण वाले रूपीपन को प्राप्त हो जायेगा क्यों कि लक्षण भेद से ही द्रव्य में अथवा वस्तु में भिन्नता होती है और इनका अभाव होने से भेदरूप भिन्नता का अभाव हो जायेगा और दोनों एक हो जायेंगे। इस प्रकार जीव को रूपीपना आ जाने पर जीव भी पुद्गल ही ठहरा उससे भिन्न विशुद्ध-चैतन्य-चमत्मकार वाला जीव तेरे अभिप्राय में कोई नहीं इतना ही नहीं संसार अवस्था में ही जीव पुद्गल ठहरा परन्तु जब निर्वाण अवस्था को प्राप्त होगा न कि इससे भिन्न चैतन्य स्वरूप जीव कारण की वहां पर भी पुद्गल द्रव्य के वर्णादिक का गुणों का निषेध नहीं किया जा सकेगा क्योंकि जीव का अभाव जायेगा और संसार अवस्था में एकान्त से वर्णादिक का तादात्म्य मान लेने पर मोक्ष कोई वस्तु ही नहीं रहेगी आदि के अनेक दोष निर्माण होते हैं।

प्र0166 मोक्ष किसे कहते हैं ?

उ0 केवल ज्ञानादि चतुष्टय की अभिव्यक्ति रूप अर्थात् व्यक्त प्रगट रूप कार्य समयसार अर्थात् निष्पन्न आत्मा के विशुद्ध और सार का ही नाम मोक्ष हैं।

प्र0167 पर्याप्त, अपर्याप्त आदि की अपेक्षा यह जीव होते हैं ऐसा सिद्धान्त ग्रंथों में क्यों बताया है ?

उ0 पर्याप्त अपर्याप्त, एवं सूक्ष्म और बादर, ये सब कार्माण वर्गणाओं से निर्मित देह की संज्ञाएँ हैं। उन्हीं को व्यवहार नय से परमागम में अभेद अपेक्षा से जीव कहा है, क्यों कि जीव ना ही निश्चय स्वरूप है ना ही व्यवहार स्वरूप है जीव का स्वरूप तो व्यवहार निश्चय स्वरूप ही है अन्यथा नहीं।

प्र0168 कर्त्ता-कर्म महाधिकार मे कितनी गाथाएँ हैं ?

उ0 कर्त्ता-कर्म महाधिकार में 78 अठ्त्तर गाथाएँ हैं।

प्र0169 कर्त्ता-कर्म अधिकार में कथन मुख्यता से किस रूप में हैं ?

उ0 कर्त्ता-कर्म अर्थात निर्माण करने की बुद्धि को कर्त्ता कर्म कहते हैं इससे आचार्य देव ने उन मढ अज्ञानी, हठग्राही, एकान्त का निराकरण किया है कि दो योग्यता वाले द्रव्य से अथवा दो उपादान से एक कार्य की उत्पत्ति मानते हैं जैसे कोई कहे ज्वार और गेहूँ के उपादान रूप योग्यता रूप दो वस्तु मिलाकर धरती में अनाज के लिये बोया है तो गेहूँ आयेगा या ज्वार तब एकान्त से कोई गेहूँ कहता है अथवा ज्वार कहता है तो यह मान्यता गलत है, क्योंकि जितने बीज गेहूँ के हैं उससे गेहूँ ही उगेगा ज्वार नहीं, और जिनते ज्वार के है उन से ज्वार ही उगेगा गेहूँ नहीं इसी तरह पुद्गल की उपादान से पुद्गल निर्माण होता है, जीव से जीव का निर्माण होता इसी भ्रम का निवारण किया गया है।

प्र0170 आत्मभाव और आश्रवभाव न जानने के कारण जीव क्या होता है ?

उ0 शुद्धात्मारूप (आत्मभाव) और क्रोधादिक आश्रवों के स्वरूप में जो विशेषता है उसको यह जीव जब तक नहीं जान लेता समझ लेता तब तक यह अज्ञानी और बहिरात्मा बना रहता है।

प्र0171 यह जीव क्रोध क्यो करने लगता है ?

उ0 जब यह जीव मैं ज्ञान हूँ अर्थात् ज्ञान मेरा स्वभाव है इस प्रकार ज्ञान के साथ एकता को लिये हुए वैसे ही क्रोधादिक आश्रव भावों से रहित ऐसी निर्मल आत्मानुभूति है लक्षण जिसका ऐसे शुद्धात्म स्वभाव से पृथक्भूत क्रोधादिभाव है उनमें भी मैं क्रोध करना मेरा स्वभाव है, इस प्रकार एकता के लिये हुए रहता है परिणमन करता है तब उत्तम क्षमादि स्वरूप जो परमात्मा उससे विपरीत क्रोध करने लगता है।

प्र0172 अज्ञानता से हानि क्या है ?

उ0 अज्ञानता के कारण परमात्म स्वरूप से तिरोहित अर्थात् अलग कहने वाले कर्म का संचय, आश्रव आगमन होता है जैसे तेल लगाये हुए जीव के शरीर में धूलि समागम हो जाता है वैसे ही नूतन कर्मों का आश्रव होने पर फिर तेल के सम्बन्ध से मैल के चिपक जाने के समान प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश लक्षण वाला जो कि अपने शुद्धात्मा की प्राप्ति स्वरूप मोक्ष से विपरीत रूप बंध अवश्य होता है।

प्र0173 अज्ञान दशा कब तक रहती है ?

उ0 जब तक अपने शुद्धात्मस्वरूप को स्वसंवेदन ज्ञान के बल से क्रोधादिक से पृथक करके नहीं जानता है, अपने अनुभव

से नहीं लाता है तब तक अज्ञानी दशा रहती है।

प्र0174 कर्त्ता कर्म का अभाव एंव निर्विकल्प समाधि कब होती है ?

उ0 जब यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति के काल में प्रत्यक्षीभूत जीव के द्वारा शुद्धात्मा और कामक्रोधादि आश्रव भाव का जो भेद है परस्पर में विपरीत है वैसे जान लेता है, अर्थात् अपने उपयोग रूप में अर्थात् आचरण में उतार लेता है और पर स्वरूप नहीं करता है, उस समय वह सम्यग्ज्ञानी होता है, सम्यज्ञज्ञानी होकर क्या करता है ? मैं तो करने वाला हूँ और भावक्रोधिक जो अंतरंग में होते है वे मेरे कर्म इस प्रकार अज्ञान जन्य कर्म और कर्त्ता की प्रवृत्ति है उसे छोड़ देता है, और जब कर्त्ता कर्म का अभाव होने पर निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति होती है।

प्र0175 कौन से ज्ञानी जीव निर्बन्ध है अर्थात् बन्ध का निरोध करने वाला है ? और कैसे करता है ?

उ0 क्रोधादिक-आश्रवों के कलुषतारूप अशुचिपने को जड़तारूप-विपरितपने को, और व्याकुलता लक्षणरूप दुख के कारणपने को जानकर एवं अपनी आत्मा की निर्मल आत्मनुभूति रूप शुचिपने को, सहज-शुद्ध अखण्ड अनंत-सुखरूप स्वभाव को जानकर उसके द्वारा स्वसंवेदनज्ञान को प्राप्त होने के अनन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र में एकाग्रता रूप परमसामायिक में स्थित होकर यह जीव क्रोधादिक आश्रवों की निवृत्ति करता है, अर्थात् अपने आप दूर हो जाता है, इसलिये रत्नत्रय की

एकतारूप परमसामायिक अथवा स्वसंवेदन ज्ञानी बंध निरोध करता यह सिद्ध होता है।

प्र0176 ज्ञान मात्र से ही बंध का निरोध नहीं होता है ऐसा देखने में आता है तो उसे स्पष्ट करिये ?

उ0 यहाँ बंध निरोध प्रकरण में वैराग्यरहित ज्ञान से कोई प्रयोजन नहीं, आत्मा और आश्रव सम्बन्धि जो भेदज्ञान है वह रागादि आश्रवों से निवृत्ति रूप में है न कि अनिवृत्ति रूप और निवृत्तिरूप होने से भेदज्ञान में पानक पीने की वस्तु ठंडाई इत्यादि के समान अभेदरूप से वीतराग चारित्र और वीतराग सम्यक्त्व भी है उसी सम्यग्ज्ञान से बन्ध का निरोध होता है, अर्थात् सकल संयम के साथ ही आश्रव का निरोध होता है।

प्र0177 क्रोधादिक आश्रव भावों का निरोध कौन सी भावना से होता है ?

उ0 क्रोधादिक आश्रव को रोकने वाला जीव विचारता है कि मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध ममता रहित हूँ और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण है, अतः उसी स्वभाव में स्थित होता है, एवं चैतन्य के अनुभव में लीन होता है इन भावनाओं से क्रोधादिक आश्रव का निरोध करता है।

प्र0178 शुद्ध किसे कहते हैं ?

उ0 कर्त्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण रूप षट्करण के विकल्प समूह से रहित हूँ इसलिये शुद्ध कहते हैं।

प्र0179 कर्त्ता किसे कहते हैं ?

उ0 जो परिणमन आदि क्रिया का जो स्वामी अधिष्ठाता जो

है उसे कर्त्ता कहते हैं।

प्र0180 कर्म किसे कहते हैं ?

उ0 क्रिया अथवा कर्म यह एकार्थ वाची है अर्थात् जो किया जाता है उसे कर्म कहते हैं।

प्र0181 करण किसे कहते हैं ?

उ0 करण परिणाम को भी कहते हैं निमित्त साधन को भी करण कहते हैं, लेकिन षट्कारक में करण का अर्थ साधन अथवा निमित को कहते है।

प्र0182 संप्रदान किसे कहते हैं ?

उ0 कर्म जिसको देने में आवें अर्थात् जिसके लिये करने आया अथवा किया जावे उसे संप्रदान कहते हैं।

प्र0183 अपादान किसे कहते हैं ?

उ0 पर्यायों में परिवर्तन होने पर भी जिन कारण से शक्ति का राहस्थ में होते हुये भी ध्रुव रूप को धारण करता है उसे अपादान कहते हैं।

प्र0184 अधिकरण किसे कहते हैं ?

उ0 वस्तु जिसमें हमेशा वास अर्थात् रहता है अथवा जिस पर जिसका अधिकार स्वामीपन होता है, जिस धर्मों में जो धर्म विद्यमान रहता है, उस धर्मों को उसे कर्म का अधिकरण कहते हैं जैसे-घटत्व का धर्म का अधिकरण घट ही है।

प्र0185 आश्रव कैसा है ?

उ0 जीव के साथ लगे हुए क्रोधादिक आश्रव अध्रुव अनित्य है, अशरण है, दुखरूप है और इनका फल भी दुख स्वरूप ही है।

प्र0186 आश्रव भाव अध्रुव कैसे हैं ?

उ0 बिजली के चमत्कार के समान चंचल है, अत्यन्त क्षणिक है प्रतिक्षण पर्याय के अनुसार नाश वान किन्तु इसलिये अध्रुव है।

प्र0187 आश्रव अनित्य कैसे हैं ?

उ0 शीतोष्ण ज्वर के समान एक से रहने वाले नहीं है, कभी कम या कभी अधिक होते हैं स्थिरता को प्राप्त नहीं होते हैं विनश्वर है इसलिये अनित्य है।

प्र0188 आश्रव अशरण क्यों (कैसे) हैं ?

उ0 आश्रव अशरण है क्यों कि तीव्र कामवेग के समान इनको नियन्त्रित करके रखा नहीं जा सकता है इसलिये अशरण है।

प्र0189 आश्रव कैसा है ?

उ0 आकुलता के उत्पादन होने से काम-क्रोधादिक आश्रव भाव स्वयं दुख स्वरूप है और भविष्यकाल में होने वाले नारकादि दुखों के कारणभूत होने से क्रोधादिक आश्रव भाव दुख स्वरूप ही इनका फल है।

प्र0190 ज्ञानी जब जानता है तब आश्रव भावों से निवृत्ति होता है, तब हमें जानना चाहिए ? आचरण से क्या प्रयोजन अर्थात् मुनि बनकर तपस्या अथवा संयम की कोई आवश्यकता ही नहीं ?

उ0 अरे भाई आपने अभी जानने का अर्थ सिर्फ शब्दों से शास्त्रों से, विद्धानों से, प्रवचन से इसी को जो जानना कहा है, उसका यहाँ कोई प्रयोजन भी नहीं और उनके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं इसके अतिरिक्त अनुभव से जो जानना

है अर्थात् स्वयं के आचरण उसी को आचार्य देव ने कहा स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जो जाना जाता है, उसे जानने से यहाँ प्रयोजन है अन्य से नहीं।

प्र0191 संवेदनरूप ज्ञान और आश्रव भावों की निवृति अर्थात् परिहार एक साथ होता है या समय भिन्नता होती है?

उ0 जिस तरह उत्पाद-व्यय-ध्रोव्य का कथन करते समय भेद है लेकिन कार्य की निष्पत्ती एक ही समय में होती है समय भिन्नता नही। इसलिए यहाँ पर समय भिन्नता कथन में हैं, कार्य निष्पती में नहीं हैं।

प्र0192 शुभ किसे कहते हैं ?

उ0 मन्द कषाय रूप परिणाम को शुभ कहते हैं। अथवा जिसके कारण रमणीय पुण्य का प्राप्त होता है उसे शुभ कहते है।

प्र0193 शुभ कितने प्रकार का होता है ?

उ0 शुभ तीन प्रकार का होता है।

1. आत्मकल्याण लक्ष्य से विमुख केवल भोगाकांक्षा के निदान बंध स्वरूप शुभ परिणाम।

2. आत्मकल्याण के साधन भूत द्रव्य प्राप्ति भूत शुभ निदान स्वरूप शुभ परिणाम।

3. मुनि को जब निर्विकल्प समाधिरूप परिणामों का अभाव होने पर विषय-कषाय रूप अशुभ परिणामों से बचने के लिये शुभ और अशुभ रूप दोनों निदानों से रहित शुभ परिणाम।

प्र0194 इन तीनों परिणामों का फल क्या है ?

उ0 पहिले परिणाम के कारण स्वर्गादिक की प्राप्ति एवं परंपरा अधोगति का कारण अथवा निगोद/शुभ निदान स्वरूप

शुभ परिणामों से साक्षात् स्वर्गादिक की प्राप्ति और कालान्तर अथवा परंपरा से मोक्ष सुख निदान रहित शुभ परिणाम से साक्षात अथवा अति निकट भव से मोक्ष रूप फल की प्राप्ति होती है।

प्र0195 आचार्य, उपाध्याय और साधु उनका गुणस्मरण दानादिक सम्मान क्यों करता है ?

उ0 जैसे कोई पुरूष जिसकी स्त्री देशान्तर में है उस स्त्री का समाचार जानने के लिये उसके पास से आये हुए लोगों का सन्मान करता है उसकी बात पूछता है, और उनको अपनाकर व उनसे प्रेम दिखलाकर उनको दानादिक भी देता है यह उसका सारा वर्ताव/व्यवहार केवल स्त्री का परिचय प्राप्त करने का निमित होता है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव भी जिस काल में स्वयं शुद्धात्मा की आराधना से रहित होता उस समय शुद्धात्मा के स्वरूप की उपलब्धि के लिये शुद्धात्मा के आराधक व प्रतिपादक ऐसे आचार्य, उपाध्याय व साधु है उनका गुणस्मरण-दानादिक सन्मान करता है।

प्र0196 आत्मा ज्ञानी है यह कैसे जाना जाता है ?

उ0 जैसे वृक्ष के जाति से जैसा बीज का ज्ञान कराया जाता है उदा आम के वृक्ष से आम के ही बीज का ज्ञान होता, बबूल का नहीं क्योंकि बबूल से कोई वास्ता सम्बंध ही नहीं इसी तरह बीज के रूप अथवा उपादान रूप जीव मे केवल ज्ञान की सिद्धि होती है इसलिये आत्मा ज्ञानी है यह सिद्ध हुआ।

प्र0197 कर्त्ता, कर्म किस रूप से मानने पर ज्ञानी होता है ?

उ0 व्यवहारनय से आत्मा पुण्य-पापादि परिणामों का कर्त्ता है और किसी एक नय से निश्चय नय से आत्मा इन परिणामों का कर्त्ता नहीं है, इस प्रकार जो जानता है वह ज्ञानी होता है।

प्र0198 कर्त्ता कितने प्रकार का होता है ?

उ0 कर्त्ता दो प्रकार का होता है।

1. उपदान कर्त्ता 2. निमित्त कर्त्ता

प्र0199 उपादान कर्त्ता किसे कहते हैं ?

उ0 जो कारण स्वय कर्त्तारूप होकर स्वयं ही कार्य रूप परिणत हो जाता है, जैसे बीज वृक्ष का उपादान निमित्त है इसलिये स्वयं की क्रियारूप से अथवा स्वयं की योग्यता से ही वृक्ष रूप बन जाता है।

प्र0200 निमित्त कर्त्ता किसे कहते हैं ?

उ0 उपादान शक्ति को जो कारण व्यक्त होने में अथवा प्रगट होने में जो अविनाभाव रूप से विद्यमान रहने की आवश्यकता होती है, और जिनके अभाव में उपादान शक्ति प्रगट नहीं होती उसे निमित्त कर्त्ता कहा जाता है।

प्र0201 कारण किसे कहते हैं ?

उ0 जो पदार्थ कार्य में सहायक होते हैं उन्हें कारण कहते हैं, इसी को निमित्त, हेतू भी कहते हैं।

प्र0202 कार्य कैसे होता है ?

उ0 उपादान जैसा होगा वैसे ही कार्य होता है।

प्र0203 आत्मा का उपादान कारण क्या है ?

उ0 ज्ञान और दर्शन ही आत्मा का उपादान कारण अथवा

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रत्नत्रय ही उपादान कारण हैं।

प्र0204 द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का उपादान कर्त्ता क्या है?

उ0 द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का उपादान कारण कर्म परमाणु अथवा कार्मण वर्गणाएँ एवं अष्ट कर्मरूप कार्माण शरीर यह अपेक्षा से उपादान कर्त्ता है।

प्र0205 कौन सा नय कौन से कर्त्ता को ग्रहण करता है ?

उ0 निश्चय नय उपादान कारण का प्रतिपादक है। व्यवहार नय निमित कारण का प्रतिपादक है।

प्र0206 ज्ञानी जीव को कर्त्ताकर्म भाव क्यों नहीं होते ?

उ0 क्षयोपशमभाव के कारण होने वाले संकल्प विकल्प रूप अपने परिणाम, जिसको आत्मा ने स्वयं उपादान रूप होकर किया है और जो अनेक प्रकार है, उसको अपने परमात्मस्वरूप विशेष-भेदज्ञान के बल से स्पष्ट जानता हुआ भी वह निर्विकार-स्वसंवेदन ज्ञानी जीव उन पूर्वोक्त अपने परिणामों के निमित्त से उदय में आये हुए पुद्‌गल कर्म की पर्याय में जैसे मिट्टी कलश रूप मे परिणमन करती हैं, वैसे ही शुद्ध निश्चयनय से न तो परिणमन ही करता है और न तन्मयता के साथ उसे ग्रहण ही करता है और न उस रूप से उत्पन्न ही होता है क्योंकि उपादान का कार्य के साथ तन्मयता अथवा तादात्म्य संबंध होता है, निमित्त का तादात्म्य नहीं है, जैसे पड़ोसी की मृत्यु को जानते हुये भी दुखी नहीं होती क्योंकि वहां उनका उपादान कर्त्ता स्वयं नहीं है जानकर माध्यस्थ स्वरूप अकर्त्ता भावा को प्राप्त होता है। इसी तरह आत्मा और कर्म का उपादान कारण

अलग-अलग है हम दोनों के उपादान कर्त्ता न होने से ज्ञानी जीव अकर्त्ता स्वरूप माध्यस्थ भाव को प्राप्त होता है।

प्र0207 द्रव्य की परिणती कैसे होती है ?

उ0 पुद्गल द्रव्य भी परद्रव्य की पर्यायरूप में न तो परिणमन ही करता है न कभी उसको ग्रहण ही करता है और न उस रूप में कभी उत्पन्न ही होता है किन्तु अपने आपके परिणामों से परिणमन करता है इसी तरह सभी द्रव्य परिणमन करते हैं, क्यों कि स्वभाव कभी छोड़ा नहीं जाता अन्यथा वस्तु स्वरूप का ही अभाव होगा।

प्र0208 जीव और पुद्गल में परस्पर क्या संबंध है ?

उ0 जीव के रागद्वेषी परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों को उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीव कर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, किन्तु मात्र इन दोंनो का परस्पर एक दूसरे के निमित्तसे उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है, इसी कारण से वास्तव मे आत्मा अपने भावों से ही अपने भावों का कर्त्ता होता है किन्तु पुद्गल कर्मों के द्वारा किये गये सर्व भावों का कर्त्ता नहीं है।

प्र0209 शुद्धभाव और अशुद्ध भाव का निमित्त क्या है ?

उ0 जैसे समुद्र की तरंगों के उत्पन्न होने में पवन निमित्त कारण है फिर भी निश्चय नय से समुद्र ही तरंगों को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार द्रव्य कर्म के उदय का सद्भाव आत्मा के अशुद्ध भावों में निमित्त होता है और द्रव्यकर्म के उदय का न होना आत्मा के शुद्ध भावों में निमित्त होता है।

निश्चयनय की अपेक्षा उपादान रूप से तो स्वयं आत्मा ही जब निर्विकार परम स्वसंवेदन ज्ञान रूप परिणत होता है तब केवलज्ञानादि शुद्ध भावों को उत्पन्न करता है और अशुद्ध रूप में परिणत हुआ आत्मा ही उपादान रूप से संसारिक सुख-दुखादि रूप अशुद्ध भावों को उत्पन्न करता है।

प्र0210 निश्चय कर्तृ और भोक्तृ भाव किसे कहते हैं ?

उ0 आत्मा केवल अपने भावों कर्त्ता ही हो इतना ही नहीं किन्तु अपने शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न सुखरूप शुद्ध-उपादान के द्वारा अनुभव भी अपने शुद्धात्मा का ही करता है, उसी को भोगता है, उसी का संवेदन करता है और उसी रूप मे परिणमन करता है किन्तु अशुद्ध आत्मा का ही अनुभव या संवेदन करता हुआ उसी रूप, परिणमन करता है। इस प्रकार निश्चय कर्तृव्य भोक्तृव्य कहते हैं।

प्र0211 व्यवहार कर्तृत्व और भोक्तृत्व कैसा है

उ0 जैसे देखने में आता है कि घड़ का उपादन कारण मिट्टी का पिण्ड है उसी का घड़ा बनता है तथापि घड़े को वनाने वाला कुम्हार है और जलधारण करना उसका मूल्य लेना आदि फल का भोक्ता भी वही कुम्हार है, ऐसा अनादिकाल से लोगों का व्यवहार चला आ रहा है। वैसा ही उपादान रूप से कर्मों का पैदा करने वाला भी कर्माण वर्गणा योग्य पुद्‌गल द्रव्य है जो अनेक प्रकार के मूल-उत्तर प्रकृति भेद लिये हुए नाना प्रकार ज्ञानावरणादि पुद्‌गल कर्म है उसका करने वाला व्यवहार नय से आत्मा ही कर्त्ता भोक्ता है।

प्र0212 द्विक्रियावादि किसे कहते हैं ?

उ0 दो अलग-अलग योग्यता वाले, पात्रता वाले अथवा उपादान से एक कार्य की उत्पत्ति मानना जैसे आम और नीम के बीज से एक आम का ही वृक्ष की उत्पत्ति मानना इसी तरह सर्वत्र जानना उसी को द्विक्रियावादी कहते हैं।

प्र0213 द्विक्रियावादि मान्यता जिन मत में क्या है ?

उ0 पुद्गल कर्मो का कर्त्ता भी उपादान रूप से आत्मा ही है और भोक्ता भी आत्मा ही है इस प्रकार की मान्यता द्विक्रियावादि होती है, जो किसी भी प्रकार से जिन भगवान के मत से सहमत नहीं है।

प्र0214 द्विक्रियावादि जीव सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि है ?

उ0 द्विक्रियावादि जीव आत्मा के परिणाम और पुद्गल के परिणाम इन दोनों को आत्मा करता है ऐसा कहते इसलिए द्विक्रिवादि मिथ्यादृष्टि होते हैं।

प्र0215 जीव का द्रव्य कर्म के साथ क्या सम्बंध है ?

उ0 उदय में आये हुए द्रव्य का निमित्त पाकर निर्विकार स्वसंवदेन परिणाम से रहित होता हुआ यह आत्मा सुख-दुखादि रूप अपने भावों को करता है उसी प्रकार उदय में आये हुए द्रव्य कर्म का निमित्त पाकर अपने स्वशुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वास्तविक सुख उसका आस्वाद नहीं लेता हुआ जो वास्तविक सुख उसका आस्वाद नहीं लेता हुआ उसी कर्मोदयजनित अपने रागादि भावों को संवेदन करने वाला या अनुभव करने वाला भी होता है किन्तु द्रव्य कर्मरूप जो परभाव है उसका कर्त्ता आत्मा नहीं होता है।

प्र0216 मिथ्यात्व भाव कितने प्रकार का है ?

उ0 मिथ्यात्व भाव दो प्रकार का है।

1. जीव मिथ्यात्व 2. अजीव मिथ्यात्व

प्र0217 जीव मिथ्यातव कितने प्रकार का है ?

उ0 अज्ञानभाव, अविरतिभाव, भाव मिथ्यात्व उपयोग आदि जीव मिथ्यात्व हैं।

प्र0218 अजीव मिथ्यात्व कितने प्रकार का है ?

उ0 मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान आदि अजीव मिथ्यात्व है।

प्र0219 अजीव मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ0 पुद्गल कर्म रूप जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान है वह अजीव मिथ्यात्व है।

प्र0220 जीव मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ0 उपयोग रूप भाव जो कि शुद्धात्मादि तत्वों के विषय में विपरीत जानकारीमय रूप विकार भाव है वह जीव का अज्ञान भाव है और निर्विकार-स्वसंवेदन विरितात्मक अविरक्तिरूप विकारी परिणााम है वह जीव का अविरति भाव है शुद्ध-जीवादि पदार्थ के विषय में विपरीत अभिप्राय लिये हुए उपयोगात्मक विकारमय विपरीत श्रद्धान रूप भाव है वह जीव मिथ्यात्व भाव कहते हैं।

प्र0221 अनादिकाल से चले आ रहे भाव कौन से हैं ?

उ0 अनादि काल से ही मोह सहित उपयोगवान आत्मा से मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति ये तीनों भाव भी अनादि काल से चले आ रहें हैं।

प्र0222 अनादि काल से चले आ रहे तीनों विकारी परिणामों

का वर्तमान कैसा है अर्थात् तीनों का एक साथ कर्त्ता है या अलग-अलग है।

उ0 आत्मपदार्थ-एक अखंड प्रतिभास रूप होने वाला ज्ञान स्वभावमय होने के कारण एक प्रकार का होने पर भी पूर्व कथित् मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र परिणाम विकार से तीन प्रकार होकर उनमें से जिस किसी परिणाम को करता है वह चैत्य परिणामन रूप उपयोग का धारक निर्विकार-स्वसंवेदन-ज्ञानरूप परिणाम से च्युत होता हुआ उसी विकार परिणाम का कर्त्ता होता है।

प्र.223 आत्मा द्रव्य कर्म का कर्त्ता क्यों नहीं ?

उ0 जैसे जो वस्तु भोगने में आ जाये वही उसका कर्त्ता होता है। और जैसे जैसे दूरस्थ होता है वैसे वैसे कर्त्ता और भोक्तापण नहीं रहता है इसलिये द्रव्यकर्म आत्मा से दूरस्थ संबंध है। जैसे आम का बीज़ और आम, आम के बीज़ से ज्यादा आम को नहीं जानते हैं, लेकिन आम से लोगों का ज्यादा नजदीकपन है, क्योंकि आम के बीज का कर्त्ता और भोक्ता नहीं है लेकिन फल का कर्त्ता भोक्ता है। इस तरह द्रव्य कर्म बीज स्वरूप होने से आत्मा से दूरस्थ संबध है जैसे द्रव्य कर्म उदय से राग द्वेष की उत्पत्ति राग द्वेष से विकारी परिणाम जो फलस्वरूप है जिसका आत्मा कर्त्ता और भोक्ता है इसलिये आत्मा से दूरस्थ संबंध होने से उसका कर्त्ता भोक्ता नहीं है।

प्र0224 द्रव्यकर्म का अभाव अपने आप कैसे आता है ?

उ0 जब यह आत्मा उपर्युक्त तीन प्रकार के परिणाम का कर्त्ता होता है तब कर्मवर्गणा योग्य जो पुद्गल द्रव्य वह अपने

आप उपादान रूप से द्रव्यकर्म रूप में परिणमन कर जाता है-जैसे हमने किसी कार्यक्रम में प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति को बुलाया तो लेकिन अपने आप पुलिस, सुरक्षा सैनिक, जिल्हाधिकारी एवं अन्य गणमान्य व्यक्ति जैसे अपने आप आते हैं इसी तरह आत्मा विकारी परिणमन हुआ अर्थात् आमंत्रण देना तब द्रव्य कर्म आदि अपने आप कर्मरूप परिणमन करता है।

प्र0225 जीव कर्मो का कर्त्ता कब बनता है ?

उ0 अज्ञानमय संसारी जीव पर को अपनाता है और अपने आपको पर का बनाता है अत; वह तब से कर्मों का कर्त्ता होता है।

प्र0226 वीतराग-स्वसंवेदन ज्ञान का प्रभाव क्या है ?

उ0 जो जीव वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान से किसी भी प्रकार की पर को अपने रूप और अपने आप को पररूप नहीं करता वह नूतन (नवीन) कर्मों का करने वाला नहीं होता है। और आत्मानुभव में लीन होकर कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष जाता है।

प्र0227 अज्ञान से नीवन कर्म का बधं क्यों होता है ?

उ0 मिथ्यादर्शन अज्ञान, अविरतिरूप विकार भाव को धारण करने वाला आत्मा ऐसा असत्य विकल्प करता है कि मैं क्रोध स्वरूप हूँ इत्यादि, उस समय वह अपने उस भाव रूप उपयोग का करने वाला होने से अज्ञानी जीव नवीन कर्म का बन्ध करता है।

प्र0228 अज्ञानी जीव की मान्यता धर्मादिक द्रव्यों में कैसी होती है ?

उ0 मिथ्यात्वादि रूप तीन प्रकार के विकारी परिणाम वाला अज्ञानी आत्मा, जिनके साथ में मात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबधं हैं ऐसे धर्मादिक द्रव्यों के विषयों में भी, अपनेपन का मिथ्याविकल्प करता है और उस समय वह उस विकल्प रूप आत्मभाव का कर्त्ता होकर नूतन कर्म का बंध करने वाला होता है।

प्र0229 ज्ञेय किसे कहते हैं ?

उ0 ज्ञान के विषयभूत सभी पदार्थ को ज्ञेय कहते हैं।

प्र0230 ज्ञायक किसे कहते हैं ?

उ0 सभी पदार्थ जिसके विषय होते हैं उसे ज्ञायक कहते हैं वह ज्ञान हैं।

प्र0231 यह धर्मास्तिकाय है, यह जीव है इत्यादि ज्ञेय तत्व का विचार रूप विकल्प करने पर यदि कर्मों का बंध होता है तो फिर ज्ञेय तत्वों का विचार करना व्यर्थ है इसलिये नहीं करना चाहिए ?

उ0 ऐसा नहीं समझना चाहिए परन्तु बात ऐसी है कि त्रिगुप्ति रूप निर्विकल्प समाधिकाल में तो ऐसा विकल्प नहीं करना चाहिए किन्तु उस त्रिगुप्ति रूप ध्यान के अभाव में अध्यात्म भाषा में शुद्धात्मा को उपादेय मानकर व आगम भाषा में मोक्ष को उपादेय मानकर सरागसम्यकत्व काल में विषय कषायों से दूर होने के लिए ऐसा विकल्प करना चाहिए। क्योंकि उस उपर्युक्त तत्व विचार के द्वारा मुख्यता से पुण्य बंध होता है, और परम्परा से निर्वाण लाभ होता है, इसलिये वैसा विचार करने में कोई दोष नहीं है।

प्र0232 वीतराग स्वसंवेदन के विचार काल में आपने जो बार-बार वीतराग विशेषण दिया है वह क्यों देते आ रहें हैं ?

उ0 विषय-सुखानुभव के आनन्द रूप स्वसंवेदन ज्ञान होता है वह सर्वजन प्रसिद्ध है अर्थात् वह सब लोगों के अनुभव में आया करता है वह सरागस्वसंवदेन होता है किन्तु जो शुद्धात्मा के सुखानुभव रूप स्वसंवेदन ज्ञान होता है वह वीतराग होता है इसलिये कोई जीव यह न समझे कि गृहस्थ में रहकर शुद्धात्मा का अनुभव कर सकते हैं इनका निराकरण करने के लिये वीतराग विशेष दिया है सो निरर्थक नहीं है।

प्र0233 सरागसम्यग्दृष्टि कौन से कर्त्तापन को छोड़ता है ?

उ0 मन जो वस्तु स्वरूप जानता है वह सरागसम्यग्दृष्टि होता हुआ अशुभ कर्म के कर्त्तापन•को छोड़ता है उससे दूर हो जाता है। लेकिन शुभ कर्म में कर्त्तापन में वर्तते हुए वीतराग सम्यक्त्व कठिन होता है।

प्र0234 कौन से गुण स्थान तक ऐसी दशा होती है ?

उ0 चौथे से छठे गुणस्थान तक नियम से ऐसी ही दशा होती है, लेकिन तीसरे गुणस्थान में जात्यांतर रूप परिणाम पाये जाते हैं, सो जानना।

प्र0235 वीतराग सम्यग्दृष्टी कौन सा कर्त्तापन को त्यागता है?

उ0 निश्चय चारित्र के साथ में अविनाभाव रखने वाले वीतराग सम्यग्दर्शन का धारक होता है तब शुभ-अशुभ सभी प्रकार के कर्म के कर्त्तापन को छोड़ देता है। वह नियम से मुनि ही होता है गृहस्थ नहीं।

प्र0236 वीतराग सम्यग्दर्शन कहाँ से प्रारंभ होता है ?

उ0 वीतराग सम्यग्दर्शन सातवें से प्रारम्भ होकर ग्यारहवें अथवा बारहवें गुणस्थान में पूर्ण वीतराग सम्यग्दर्शन होता है। क्योंकि तारतम्यता से दसवें गुणस्थान तक अप्रत्यक्ष शुभ राग विद्यमान रहता है, इसलिये पूर्ण वीतरागता उपश्रेणी की अपेक्षा गयारहवाँ गुणस्थान है और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा बारहवाँ गुणस्थान समझना चाहिए।

प्र0237 कर्त्तापन कितने प्रकार का है ?

उ0 कर्त्तापन तीन प्रकार का है।

1. शरीरात्मक 2. अविरतात्मक 3. विरतात्मक है।

प्र0238 शरीरात्मक कर्त्तापन किसे कहते हैं ?

उ0 जीव यह सोचता है कि मैं मनुष्य हूँ अत; अपने जीवन के लिए उपयोगी वस्तुओं को अपने परिश्रम से संपादन करके सुखी बनूँ ऐसा विचार कर मनमानी करते हुए पाप पाखण्ड में लगा रहता है यह शरीरात्मक कर्त्तापन है अर्थात् कहते हैं।

प्र0239 अविरतात्मक कर्त्तापन किसे कहते हैं ?

उ0 जब यह जान लेता है कि मुझे नाना प्रकार की कु योनियों में जन्म-मरण करते हुए अनन्त काल बीत गया जिसमें यह मनुष्य-भव कठिनता से प्राप्त हुआ है; अब ऐसा करूं कि कम से कम कुयोनियों में तो जन्म धारण करना न पड़े ऐसा सोचकर अन्याय-अभक्ष्य से बचकर न्यायोपार्जित कर्त्तव्य करने में लगा रहता है, दान पूजादिक षट्कर्म करने लग जाता है यह अविरतात्मक कर्त्तापन है।

प्र0240 विरतात्मक कर्त्तापन किसे कहते हैं ?

उ0 जब यह जान लेता है कि यह संसार का दृश्यमान ठाठ-क्षणभंगुर है और जो मानव पर्याय मिली है उसका भी कोई भरोसा नहीं है; शेष जीव को भगवान भजन (भक्ति) में बिताऊं। सोचकर गृहस्थाश्रम से विरक्त होकर साधुसेवा में लगा रहता है तब वहाँ पर शुद्धोपयोग के साधन स्वरूप आवश्यक कर्म करने लगता है वह विरतात्मक कर्त्तापन है।

प्र0241 व्यवहारियों का व्यामोह अर्थात् मूढपन क्या है ?

उ0 यह आत्मा आपस के व्यवहार से घट-पट रथादि बाह्यवस्तुओं को नाना प्रकार की इच्छा पूर्वक जैसे करता है, उसी प्रकार भीतर में नाना प्रकार का स्पर्शनादि इन्द्रियों को और बाह्य में नोकर्म शरीरादिक को तथा क्रोधादिक भावकर्मों को और नाना प्रकार के ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों को निरन्तर इच्छा पूर्वक करता रहता है। ऐसा जो व्यवहारी लोग मानते हैं वह उन व्यवहारियों का व्यामोह अर्थात् मूढता ही है।

प्र0242 व्यवहारी जीव की व्यामोह अर्थात् मूढता क्यों है ?

उ0 यदि आत्मा घट-पट आदि पर द्रव्यों को भी नियम पूर्वक अवश्य ही करने वाला हो तो वह उनसे तन्मय हो जाये, क्योंकि वह आत्मा शुद्ध स्वाभाविक ऐसे अपने अनंत सुख और ध्यानादि को छोड़कर पर द्रव्य के साथ तन्मय तो होता नहीं है। लेकिन जीव उपादान कर्त्ता को भूलकर निमित कर्त्ता को ही उपादान कर्त्ता मानकर कार्य करता है इसलिए मूढ है।

प्र0243 आत्मा उपादान और निमित रूप दोनों से कर्त्ता नहीं है ?

उ0 जीव कभी भी घट को नहीं करता पट को ही करता है और न शेष द्रव्यों को ही करता है। जीव के योग और उपयोग दोनों घटपटादि की उत्पत्ति में निमित होते हैं। और दोनों योग और उपयोग का यह आत्मा करने वाला होता है, क्योंकि आत्मा स्वयं अजीवादि द्रव्य रूप नहीं है आत्मा का स्वभाव ज्ञान और उपयोग रूप है इनमें कर्त्ता से कोई प्रयोजन नहीं और निमित भी विद्यमान है लेकिन अपने आप करने में समर्थ नहीं है लेकिन जैसे राजा अपना संदेश खुद नहीं भेजता दूसरे के द्वारा भेजता है, उस संदेश का कर्त्ता राजा का मानना यही गलत है सही रूप से संदेश कर्त्ता कोई और है राजा सिर्फ आदेश कर्त्ता है इसी तरह जीव भी निमित है साधक योग और उपयोग का कर्त्ता है ना ही निमित का है इसलिये आत्मा निमित और उपादान दोनों रूप से कर्त्ता नहीं है।

प्र0244 योग किसे कहते हैं ?

उ0 योग शब्द से बाह्य-अवयव हस्तादिक का हिलना डुलना विवक्षित है इसमें सिर्फ मन का परिस्पन्दन ग्राह्य नहीं है।

प्र0245 उपयोग से यहाँ किसे ग्रहण किया है ?

उ0 उपयोग शब्द से अंतरंग के विकल्प को ग्रहण किया सो जानना ।

प्र0246 आत्मा के कौन से कर्त्ता का निषेध किया है ?

उ0 आत्मा के साक्षात कर्त्ता कर्म का निषेध किया है ना कि परोक्ष कर्त्ता कर्म का परोक्ष रूप से तो कर्त्ता स्वीकार ही

है लेकिन साक्षात नहीं।

प्र0247 ज्ञानी जीव कि कर्त्ता बुद्धि कैसे होती है ?

उ0 मिथ्यात्व और विषय कषायों का त्याग करके निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर जो जानता है वह ज्ञानी होता है, जानने मात्र से ही ज्ञानी नहीं हो जाता तात्पर्य यह की वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी जीव शद्ध उपादान रूप शुद्धनय से शुद्धज्ञान का ही कर्त्ता होता है जैसे स्वर्ण अपने पीतत्वादि गुणों का, अग्नि अपने उष्णत्वादि गुणों का और सिद्धपरमेष्ठि अनन्तज्ञानादि गुणों का कर्त्ता होता है, किन्तु मिथ्यात्व रागादिरूप अज्ञान भाव का कर्त्ता ज्ञानी नहीं होता।

प्र0248 यहाँ कर्त्तापन और भोक्तापन किसे कहा है ?

उ0 यहाँ पर कर्त्तापन और भोक्तापन जो बताया है वह शुद्ध उपादान रूप से शुद्ध ज्ञानादिभावों का और अशुद्ध उपादान रूप से मिथ्यात्व तथा रागादि विकारी भावों उन रूप से परिणमन करना ही कर्त्तापन व भोक्तापन बताया है।

प्र0249 कौन से कर्त्तापन व भोक्तापन नहीं हैं ?

उ0 घट और कुंभकार के सामन इच्छापूर्वक हस्तादिक का व्यापार करने रूप कर्त्तापन का भोक्तापन को यहाँ नहीं लिया गया है ऐसे समझना चाहिए।

प्र0250 अशुद्ध उपादान किसे कहते हैं ?

उ0 जैसे अग्नि के द्वारा गर्म किये हुए लोहे के पिण्ड के समान आत्मा औषाधिक भावों को स्वीकार किये हुए है वह अशुद्ध उपादान होता है।

प्र0251 शुद्ध उपादान किसे कहते हैं ?

उ0 जो निरूपाधिक (सहज) भाव को स्वीकार किये हुए है वह शुद्ध उपादान कहलाता है।

प्र0252 एक द्रव्य अन्य द्रव्य रूप क्यों नहीं होते हैं ?

उ0 जो गुण जिस द्रव्य में होता है वह उसको छोड़कर अन्य द्रव्य में कभी नहीं जाता और जब वह अन्य द्रव्य में नहीं जाता तब वह अन्य को कैसे परिणमा सकता है, अर्थात् कभी नहीं परिणमा होता है।

प्र0253 आत्मा दूसरे द्रव्य का क्या नहीं कर्त्ता है ?

उ0 आत्मा पुद्गल मय कर्म में द्रव्य को अथवा गुण को नहीं करता है। जब वह उसमें उन दोनों को नहीं करता तब वह उसका कर्त्ता कैसे कहा जाता है अर्थात् वह उसका कर्त्ता नहीं होता है।

प्र0254 आत्मा द्रव्य कर्म का कर्त्ता कैसे है ?

उ0 जीव के निमित भूत होने पर कर्मबन्ध की पर्याय होती है, ऐसा देखकर उपचार मात्र से यह कहा जाता है कि कर्म जीव के द्वारा किये हुए है।

प्र0255 उपचार से कर्त्ता कैसे ?

उ0 जैसे निमित रूप से बादलों का विस्तार अथवा चाँद सूर्य का परिवेष आदि के योग्य काल होने पर पानी का बरस और इन्द्रधनुष्य आदि में परिणत पुद्गलों का परिणाम होता देखा जाता है वैसा ही परम उपेक्षा संयम भाव से परिणत अभेदरत्नात्रय है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान के न होने पर मिथ्यात्व तथा रागादि परिणत जीव के होने पर कर्म

वर्गणा योग्य पुद्‌गलों का ज्ञानवारणादि रूप से द्रव्य कर्म बंधमय परिणाम पर्याय को देखकर कर्म जीव को द्वारा किये गये हैं, ऐसा उपचार होता है।

प्र0256 उपचार किसे कहते हैं ?

उ0 उप समीपेपृष्टपोषकत्वेन प्रोत्साहत्वेन वा चरणं प्रवर्तनं उपचार; इस निरुक्ति के अनुसार उपचार का अर्थ प्रेरण होती है अर्थात् प्रेरणा को उपचार कहते हैं।

प्र0257 सामान्य किसे कहते हैं ?

उ0 विवक्षा का न होना अर्थात् भेद न होकर अभेद को ही सामान्य कहते हैं।

प्र0258 सामान्य प्रत्यय कौन से हैं ?

उ0 मिथ्यात्व अविरत, कषाय और योग सामान्य प्रत्यय है।

प्र0259 सामान्य प्रत्यय के उत्तर भेद कौन से हैं ?

उ0 तेरह प्रकार के गुणस्थान अर्थात् मिथ्यादृष्टि से लेकर अन्तिम सयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्यय के उत्तर भेद हैं।

प्र0260 सभी प्रत्यय चेतनकृत या अचेतन कृत हैं ?

उ0 सभी प्रत्यय अर्थात् मिथ्यात्वादि द्रव्य रूप प्रत्यय तो अचेतनकृत हैं।

प्र0261 भाव प्रत्यय भी अचेतन कैसे हैं ?

उ0 मिथ्यात्वादि भाव प्रत्यय भी शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा अचेतन ही है। क्योंकि ये सभी पुद्‌गलिक कर्म के उदय से होने वाले हैं।

प्र0262 भाव प्रत्यय चेतन कैसे हैं ?

उ0 जीव और पुद्गल इन दोनों के संयोग से उत्पन्न होने वाले मिथ्यात्व रागादिरूप जो भाव प्रत्यय है वह अशुद्ध उपादान रूप अशुद्ध निश्चय से चेतन है क्योंकि जीव से सम्बध है।

प्र0263 प्रत्यय की उत्पत्ती कैसे होती है ?

उ0 प्रत्यय वस्तु स्थिति में ये सभी एकान्त से न जीव रूप ही है, और न पुद्गल रूप ही हैं किन्तु चूना और हल्दी के संयोग से उत्पन्न हुई कुंकुम के समान ये प्रत्यय भी जीव और पुद्गल के संयोग से उत्पन्न होने वाले संयोगी भाव हैं।

प्र0264 प्रत्य कल्पित अर्थात् अस्तिव शून्य कैसे हैं ?

उ0 प्रत्यय को जब गहराई से सोचों तो सूक्ष्मरूप शुद्ध निश्चनय की दृष्टि में इनका अस्तिव ही नहीं है क्योंकि ये अज्ञान द्वारा उत्पन्न है अतएव कल्पित हैं।

प्र0265 किनकी मान्यता ठीक नहीं है ?

उ0 जो एकान्त से रागादिकों को जीव सम्बधी है कहते है, अथवा जो इनको पुद्गल सम्बधी कहते हैं उन दोनों का कहना ठीक नहीं है क्योंकि उनकी मान्यता एकांत पक्ष से दूषित है।

प्र0266 आत्मा को स्र्वथा अकर्त्ता मानने में दोष क्या है ?

उ0 जो लोग आत्मा को सर्वथा अकर्त्ता कहते हैं अथवा मानते हैं उनके प्रति यह दोष अवश्य है कि यदि आत्मा सर्वथा अकर्त्ता ही है तब तो शुद्धनिश्चय से अकर्त्ता हुआ और

इस प्रकार सर्वथा अकर्तापन होने से कर्त्ता रूप संसार का ही अभाव हुआ, और आत्मा कर्त्ता का नहीं है तो कर्मों का वेदक भी नहीं हो सकता इत्यादि दोष उत्पन्न होते है।

प्र0267 जीव और प्रत्यय को सर्वथा एक मानने से क्या दोष होता है ?

उ0 जिस प्रकार जीव के साथ ज्ञानदर्शनोपयोग की एकता है उसी प्रकार क्रोधादिक भी जीव के साथ एक मेल हों तो जीव और अजीव नियम से एकपना हो जायेगा, कोई भेद नहीं रहेगा। क्योंकि जैसा जीव वैसा ही अजीव दोनों सर्वथा एक ही रहेंगें तब यह दोष आयेगा कि देहादि नोकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा मिथ्यात्वादि भावकर्म के साथ इस जीव की एकता हो जायेगी, जीव और अजीव एक होने से द्रव्य व्यवस्था का अभाव होकर अनवस्था रूप महान दोष जायेगा आदि अनेक दोष आते हैं।

प्र0268 पुद्गल द्रव्य अपरिणामी क्यों नहीं हैं ?

उ0 पुद्गल द्रव्य को अपरिणामी सदा नित्य मानने पर कार्माण वर्णणाओं के ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म रूप नहीं परिणमन करने पर इस संसार का सांख्यमत के समान अभाव प्राप्त होगा। यदि ऐसा कहा जाये कि जीव हठात् कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल द्रव्यों को ज्ञानवरणादि कर्मरूप से परिणमा लेता है; संसार अभाव नहीं होगा, तो वहाँ यह प्रश्न होता है कि ज्ञानी जीव जो स्वयं अपरिणमनशील है वह उस पुद्गल द्रव्य को जो परिणमाता है वह नहीं परिणमन करते हुए को परिणमाता है यह परिणमन करते हुए कोई यदि कहा जाये कि नहीं परिणमते हुए को परिणमाता है सो यह तो

बन नहीं सकती क्योकि जहाँ जो शक्ति स्वयं में नहीं है वहाँ वह शक्ति दूसरे द्वारा भी नहीं की जा सकती है, यह अटल नियम है। जैसे-जपा-पुष्पादिक स्फाटिकमणि में उपाधि को पैदा कर सकते हैं, वैसे काष्ट के खंभे आदि में नही कर सकते है, क्योंकि उसमें वैसी शक्ति का अभाव है। यदि कहा जाय कि एकान्त से परिणामन करते हुए की परिणमाता है तो कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि वस्तु में जो शक्तियाँ होती है वे अपने परिणमन में दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती ऐसा नियम है। अतः जब कि पुद्‌गल को सवयं परिणमन करते रहना चाहिए, ऐसी दशा में फिर कार्मण वर्गणाएं जिस प्रकार ज्ञानावरणादि-कर्म के रूप में परिणामन करती है, वैसे ही घट, पटादि-रूप पुद्‌गल भी कर्मरूप में परिणमन करें, यह प्रत्यक्ष विरोध है। अतः यह वात सिद्ध स्वयं होती है कि पुद्‌गलों में कथांचित परिणमन की शक्ति सहज स्वभाव से ही है।

प्र0269 जीवद्रव्य अपरिणमी क्यों नहीं है ?

उ0 जीव कर्मों से स्वयं बद्ध नहीं है और क्रोधादि भावों से ही आप परिणमन नहीं करता है तो वह अपरिणामी हुआ। इस प्रकार जीव के अपरिणामी होने पर क्रोधादिक रूप से जीव के स्वयं परिणमन न करने पर संसार के अभाव का प्रसंग आयेगा। यदि ऐसा कहा जाये कि क्रोधरूप जो पुद्‌गलकर्म है वह जीव को क्रोधरूप में परिणाम देता है तह यहाँ ऐसा विचार आता है कि वह पुद्‌गल कर्म स्वयं न परिणमन सकता है ? अर्थात् कभी नहीं परिणाम सकता। यदि ऐसा कहो कि आत्मा स्वंय ही क्रोधरूप में

परिणमन करता है तब पहिले वाला कहा कि क्रोधकर्म जीव को क्रोधरूप में परिणमाता है, यह सत्य ठहरेगा। इसलिये ऐसा मानना चाहिए कि जब आत्मा क्रोध से उपयुक्त होता है। अर्थात् इस आत्मा का उपयोग क्रोधरूप में परिणमन करता है, इसलिये जीव द्रव्य कदाचित स्वयं परिणामी है।

प्र0270 जीव और पुद्गल को अपरिणामी कहकर क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

उ0 आचार्य देव जीव और पुद्गल दोनों स्वयं परिणामी पन से उन मूढ अज्ञानी जीव की कर्त्ता बुद्धि को छुड़ाने का प्रयास किया है जो जीव यह कहते हैं कि निमित सब कुछ करता है, तब जैसे-पुरूष के निमित से स्त्री सन्तान उत्पत्ति करती है, तब पुरूष उसका कर्त्ता होकर यह कहता है कि मैंने किया क्या सच है सोचों जरा अगर उसी पुरूष को एक बाँझ स्त्री के साथ संबंध कराकर कह दिया कि आप सन्तान उत्पत्ति कर दीजिए तो कभी संभव नहीं क्योंकि योग्यता के अभाव में निमित कुछ नहीं कर सकता है, इसलिये आचार्य कहते हैं जीव और अजीव दोनों ही परिणमन करने की योग्यता (उपादान) रूप शक्ति से विद्यमान है इसलिये आप जो कि कर्त्तव्य मूढ की तरह निमित कर्त्ता बनकर जो अज्ञानता है उसे दूर करो यही इसका प्रयोजन हैं।

प्र0271 निर्ग्रन्थ साधू किसे कहते हैं ?

उ0 जो साधू बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर अपने आप की आत्मा को दर्शन-ज्ञान उपयोग स्वरूप शुद्ध अनुभव करता है। उसको परमार्थ स्वरूप

जानने वाले गणधरादिक देव निर्ग्रन्थ साधू कहते हैं।

प्र0272 मोह रहित साधू किसे कहते हैं ?

उ0 जो परम ऋषि समस्त प्रकार के चेतन और अचेतन शुभ व अशुभ परद्रव्यों में मोह को छोड़कर शुभ व अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार रूप, तीनों योगों के परिहार करने रूप अभेदरत्नत्रय लक्षण धरने वाले भेदज्ञान के द्वारा आत्मा का अनुभव करता है। जिस प्रकार आत्मा विकार रहित शुद्ध स्वसंवेदन ज्ञान से सहित है, परिपूर्ण है तद्रुप परिणति है इस प्रकार का अनुभव है, उसे परमार्थ को जानने वाले तीर्थंकर परमदेवादिक 'मोहरहित साधू कहते हैं।

प्र0273 साधू कौन से व्यवहार धर्म को परिग्रह मानता है ?

उ0 भोग अकांक्षास्वरूप निदानबंध आदि पुण्यमय परिग्रह वाले व्यवहार धर्म को परिग्रह मानते हैं।

प्र0274 व्यवहार धर्म किस *अवस्था* में परिग्रह होता है।

उ0 जो साधु शुभोपयोग रूप धर्म परिणाम को भी जीतकर अपने शुद्धात्मा के रूप परिणत अभेदरत्नत्रय-लक्षण वाले भेदज्ञान के द्वारा अपने आपको अनुभव करता है कि मैं विशुद्ध-ज्ञान-दर्शनापयोगमय हूँ, तथा शुभ-अशुभ रूप जो संकल्प-विकल्प है उनसे रहित हूँ। उसे परम साधू को परमार्थ के जानने वाले प्रत्यक्ष ज्ञानी लोग विकार रहित अपनी शुद्धात्मा के उपलंभ रूप निश्चय धर्मध्यानि मुनि को व्यवहार धर्म परिग्रह होता है।

प्र0275 निदान रहित व्यवहार धर्म परिग्रह क्यों नहीं ?

उ0 जिस तरह निदान सहित व्यवहार धर्म नियम से निर्विकल्प दशा रूप परिणम का विरोधी है लेकिन निदान रहित

व्यवहार धर्म निर्विकल्प दशा का विरोधी न होकर साधक होने से उसे परिग्रह नहीं कहा गया है।

प्र0276 पाप, आश्रव और बंध पदार्थ का कर्त्ता कौन था ?

उ0 जो जीव विषय कषायमय अशुभोपयोग में परिणत होता है तब पाप, आश्रव और बधं का कर्त्ता होता है।

प्र0277 पुण्य पदार्थ का कर्त्ता कौन सा जीव है ?

उ0 जब जीव अज्ञानी-जीव मिथ्यात्व और कषायों का मन्द उदय होने पर भोगों की इच्छा रूप-निदान बंधादि रूप से दान-पूजादिमय परिणत करता है उस समय पुण्य पदार्थ कर्त्ता है।

प्र0278 संवर, निर्जरा, मोक्ष का (पदार्थ) कर्त्ता कौन है ?

उ0 जब जीव शुद्धोपयोग रूप से परिणत होने वाला अभेदरत्नत्रय है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान रूप में जब परिणत होता है तब निश्चय चारित्र के साथ अविनाभाव रखने वाला जो वीतराग-सम्यग्दर्शन है उस रूप होकर संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तीन पदार्थ का कर्त्ता होता है।

प्र0279 मोक्ष के कारण भूत पुण्य का कर्त्ता कौन सा जीव है?

उ0 निश्चय-सम्यक्त्व के अभाव में जब वह सराग सम्यक्त्व के रूप में परिणत रहता है, उस समय शुद्धात्मा को उपादेय मानकर परंपरा से निर्वाण के लिये कारण ऐसे तीर्थं प्रकृति आदि पुण्य पदार्थ का कर्त्ता होता है।

प्र0280 आत्मा कब किसका कर्त्ता होता है ?

उ0 यह आत्मा जिस समय जैसा भाव करता है उस समय उसी भाव का कर्त्ता होता हैं।

प्र0281 कार्य समयसार की उत्पत्ति कब होती है ?

उ0 जो जीव निर्विकल्प समाधि रूप परिणाम से परिणत रहने वाला जो करण समयसार है लक्षण ऐसा जिसका उस भेदज्ञान के द्वारा सभी प्रकार के आरंभ से रहित होने के ज्ञानी जीव का वह भाव शुद्धात्मा की ख्याति, प्रतीती, संविति, उपलब्धि या अनुभूति रूप से ज्ञानमय ही होता है।

प्र0282 ज्ञानी जीव की परिणति कैसे होती है ?

उ0 वीतराग स्वसंवेदन रूप से भेदज्ञानी जीव जिस शुद्धात्मा के भावनारूप परिणाम को करता है वह परिणाम सर्व ही ज्ञानमय होता है जिससे कि वह संसार की स्थिति को कम करके देवेन्द्र या लौकांतिक आदि सरीखा महर्द्धिक देव उत्पन्न होता है, वहां दो घड़ी में ही सुमति, सुश्रुत और अविधज्ञान रूप ज्ञानमय अवस्था का प्राप्त होता है। तब वह उस प्राप्त हुए विमान परिवारादि की विभूति की जीर्ण-तृण के समान मानता हुआ पंचमहाविदेह क्षेत्रों में जाता है वहाँ देखता है कि यह समवशरण है, ये वीतराग सर्वज्ञ-देव है, तथा ये सब भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना करने वाले गणधरादिक देव है, जिसका वर्णन पहले परमागम में सुना था, वे मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। ऐसा जानकर वह धर्म में धर्ममयदृढ़ विचार वाला हो जाता है इस प्रकार चौथे गुण स्थान के योग्य शुद्ध भावना को नहीं छोड़ता हुआ वह उस देवलोक में धर्मध्यान से समय व्यतीत करता है। उसके बाद मनुष्य होता है तब राजाधिराज, महाराज, अर्द्धमंडलीक, महामंडलीक बलदेव, कामदेव, चक्रवर्ती, और तीर्थंकर परमदेव आदि पद के प्राप्त होने पर भी पूर्व

भव की वासना को लिये हुए शुद्धात्मरूप-भेदभावना के बल से मोह को प्राप्त नहीं होता निर्वाण को प्राप्त होता है।

प्र0283 मिथ्यात्व के उदय से क्या होता है ?

उ0 अनन्तज्ञानादिचतुष्टय रूप शुद्धात्मतत्व उपादेय है उसे छोड़कर जीवों की जो और ओर रूचि हो जाती है उपादेय बुद्धि बन जाती है वह मिथ्यात्व का उदय है।

प्र0284 असंयम के उदय से क्या होता है ?

उ0 आत्मोत्थ सुख के सम्वेदन का अभाव होने पर जो विषय-कषायों से दूर नहीं होना है वह संसारी जीव के असंयम का उदय है।

प्र0285 अज्ञान के उदय से क्या होता है ?

उ0 भेदज्ञान को छोड़कर जीवों के विपरीत रूप से जो परद्रव्यों के साथ एकत्व की उपलब्धि है प्रतिति हो रही है वह अज्ञान का उदय है।

प्र0286 कषाय के उदय से क्या होता है ?

उ0 आत्मा की शांत अवस्था रूप शुद्धोपयोग को छोड़कर जो जीवों की क्रोधादि-कषाय रूप मलिन परिणाम होता है वह कषाय का उदय है।

प्र0287 योग के उदय से क्या होता है ?

उ0 जीवों के मन, वचन, काय की वर्गणा के आधार से वीर्यान्तराय के क्षयोपशम को लिये हुये प्रयत्न रूप आत्मा को प्रदेशों का परिस्पंद जो कि कर्मग्रहण करने के हेतू होता है, उस व्यापार रूप-उत्साह

को योग का उदय समझना चाहिए।

प्र0288 शुभ योग किसे कहते हैं ?

उ0 जो व्रतादिक को कर्त्तव्य मानकर उनके करने में उत्साह होता है। शुभ योग कहते हैं।

प्र0289 अशुभ योग किसे कहते हैं ?

उ0 अव्रतादिक रूप से उत्साह करना उसे अशुभ योग कहते हैं।

प्र0290 द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि आठ रूप कब (परिवर्तन) परिणमन करता है ?

उ0 मिथ्यात्वादि पांच प्रत्ययों के होने पर कर्मवर्गणा रूप नूतन-पुद्गल द्रव्य जीव के सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की एकता रूप परिणति को लिये हुए जो परमसामयिक-भाव हैं उसके न होने पर ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म के रूप में आठ प्रकार का परिणमन करता है।

प्र0291 कौन सी मान्यता से पुद्गल द्रव्य में भी रागादि की उत्पत्ति हो जायेगी ?

उ0 उपादानभूत कर्मवर्गणायोग्य अकेले पुद्गल द्रव्य का ही परिणमन कर्मरूप में होता है तब जीव में होने वाले मिथ्यात्व और रागादि रूप-परिणामों के उपादान-हेतुभूत जीव के विकारी भाव उनके बिना भी पुद्गलों का द्रव्य कर्म रूप परिणाम को जाना चाहिए किन्तु ऐसा होता नहीं हैं।

प्र0292 निश्चयनय से जीव का जो परिणाम है वह पुद्गल से भिन्न है अर्थात् अलग है ?

उ0 जीव के जो रागादि विकार भाव होते हैं वे वैसे ही यदि

वास्तव में कर्म के भी होते हों वे जीव और कर्म ये दोनों ही रागादिमान होने चाहिए, किन्तु ऐसा होता नहीं। यदि अकेले जीव के ही रागादि परिणाम मान लिये जावें तो कर्मोदय के बिना हो जाना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं होता क्योंकि उपादान रूप से दोनों ही अलग अलग है।

प्र0293 समयसार स्वरूप जो आत्मा है वह कौन से नय का स्वरूप है ?

उ0 जीव में कर्म बद्ध है लगे हुये हैं, यह भी और जीव के कर्म चिपके हुये नहीं है, ऐसा भी एक नय का पक्ष है, किन्तु समयसार रूप जो आत्मा है वह इन दोनों पक्षों से दूरवर्ती है अर्थात् पक्षपात रहित है।

प्र0294 नय पक्षपात रहित जीव का स्वरूप क्या है ?

उ0 नय के पक्षपात से रहित जो स्वसंवेदन-ज्ञानी जीव है उसके अनुसार जीव का स्वरूप बद्धाबद्ध या मूढ़ामूढ़ आदि नय के विकल्पों से रहित चिदानंदस्वरूप होता है। जैसा आत्मख्याति कार ने कहा है- जो लोग नय के पक्षपात को छोड़कर सदा अपने आप एक स्वरूप में तल्लीन रहते हैं एवं सभी प्रकार के विकल्प जाल से रहित शांत चितवाले होते हैं, वे लोग ही साक्षात अमृत का समयसार का व्यवाहर नय उन दोनों नयों के पक्षपात से रहित होने के कारण पान करते हैं।

प्र0295 समयसार का अनुभवी कैसा होता है ?

उ0 जो पुरूष सहज-परमानंद-स्वरूप समयसार का अनुभव करने वाला है, वह दोनों नयों के कथन को जानता अवश्य है किन्तु वह किसी भी एक नय के पक्ष को स्वीकार नहीं

करता, दोनों नयों के पक्षपात से दूर होकर रहता है।

प्र0296 यहां साधु सन्तों को अभिष्ट क्या है ?

उ0 आगम के व्याख्यान के समय मनुष्य की बुद्धि निश्चय और व्यवहार दोनों नय को लेकर चलती है किन्तु तत्व को जान लेने के बाद स्वस्थ हो जाने पर ऊहापोहात्मक बुद्धि दूर हो जाती है। निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों के द्वारा हेय और उपादेय तत्व का निर्णय का लेने पर हेय का त्याग करके उपादेय तत्व में लगे रहना साधु-सन्तों को अभिष्ट है।

प्र0297 ऊहापोह बुद्धि किसे कहते हैं ?

उ0 जिस विचार में अनेक प्रकार के तर्क होते हैं उसे ऊहापोह बुद्धि कहते हैं।

प्र0298 ऊहा के एकार्थवाची नाम कौन से हैं ?

उ0 ईहा, ऊहा, तर्क, परिक्षा, विचारणा जिज्ञासा ये सब एकार्थवाची है।

प्र0299 दोनों नय कौन से कर्म का क्षयोपशमिक विकल्प है?

उ0 दोनों नय श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न विकल्पों का जाल रूप है।

प्र0300 समयसार को शब्दों में क्या कहा जाता है ?

उ0 जो समयसार है वह तो सभी प्रकार के नयों के पक्षपात से रहित होता है, उस समयसार को यदि किसी दूसरे शब्द से कहा जा सकता है तो वास्तव में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान शब्द कहा जा सकता है।

प्र0301 यहाँ कौन से सम्यग्दर्शन और ज्ञान को ग्रहण किया है ?

उ0 यहाँ पर समीचीन श्रद्धान मात्र को ही सम्यग्दर्शन न बताकर सत्य श्रद्धानी जीव की आत्मानुभव अवस्था विशेष जो परमसमाधि काल में होती है उसे ही यहाँ सम्यग्दर्शन से स्वीकार किया है, और उसी को सम्यग्ज्ञान नाम से स्वीकार किया है।

प्र0302 पुण्य-पापाधिकार में कितनी गाथाएँ हैं ?

उ0 पुण्य-पापाधिकार में उन्नीस (19) गाथाएँ हैं।

प्र0303 पाप किसे कहते हैं ?

उ0 जो आत्मा को शुभ से बचाता है अथवा अनष्टि पदार्थों की प्राप्ति जिससे होती है उसे पाप कहते हैं।

प्र0304 पुण्य किसे कहते हैं ?

उ0 जो आत्मा को पवित्र करता है, या जिससे आत्मा पवित्र होता है उसे पुण्य कहते हैं

प्र0305 पुण्य कितने प्रकार का होता है ?

उ0 पुण्य दो प्रकार का है।

1. पापानुबन्धी पुण्य 2. पुण्यांनुबधीपुण्य

प्र0306 पापानुबन्धी पुण्य कितने प्रकार का होता है ?

उ0 पापानुबन्धी पुण्य दो प्रकार का होता है।

1. मिथ्यात्वयुक्त 2. निदान सहित पापानुबन्धी पुण्य

प्र0307 पापानुबंधी पुण्य किसे कहते हैं ?

उ0 पुण्य के उदय में शुभ क्रिया न करते हुए पाप का जो संचय होता है उसे पापानुबंधी अर्थात् सहचारी साथ साथ जिस पुण्य के उदय के बाद नियम से पाप का उदय आयेगा उसे पापानुबन्धी पुण्य कहते हैं।

प्र0308 मिथ्यात्व युक्त पापानुबन्धी पुण्य किसे कहते हैं ?

उ0 पाप का बंध भी दो तरह का होता है जो पाप बंध होने के बाद भी फल न दे जैसे अंजन चोर पुण्य के उदय में पाप का बधं किया लेकिन तपश्चरण करके नाश कर मोक्ष गया जो सप्त व्यसन से अर्जित पाप से नरक जाना चाहिए था लेकिन ऐसा नहीं हुआ जैसे-चारूदत्त आदि जानना उसे मिथ्यात्व युक्त पापानुबधीं पुण्य कहते हैं।

प्र0309 निदान रहित पापानुबंधी पुण्य किसे कहते हैं ?

उ0 जो पाप बंध पुण्य के उदय में होते हुए भी तपश्चरण आदि रूप परिणाम न होते हुए अपना फल नियम से जीव को मिलेगा जैसे रावण आदि जीव उसे निदान सहित पापानुबंधी पुण्य कहते हैं।

प्र0310 पुण्यानुबंधी पुण्य कितने प्रकार का है ?

उ0 पुण्यानुबंधी दो प्रकार का है।

1. प्रशस्त निदान सहित पुण्य
2. निदान रहित पुण्य

प्र0311 प्रशस्त निदान युक्त पुण्यानुबंधी पुण्य किसे कहते हैं?

उ0 जो जीव पुण्य के उदय से मजबूर होकर अनिच्छा पूर्वक फल प्रवृत्ति करता है क्योंकि वह जीव उस पुण्य के फल भोगे बिना कर्म निर्जरा नहीं कर सकता जैसे- शांति, कुंथु अरहनाथ चक्रवर्ती पद रूप पुण्य अथवा तीर्थंकर प्रकृति रूप पुण्य उसे निदान युक्त परंपरा मोक्ष कारण रूप पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं।

प्र0312 पुण्यानुबंधी किसे कहते हैं ?

उ0 जिस पुण्य का फल भोगने को कोई नियम नहीं और परंपरा अथवा साक्षात् मोक्ष का कारण है उसे निदान रहित पुण्यानुबंधी पुण्य कहते हैं।

प्र0313 कौन से व्रतादिक पुण्य बन्ध के कारण हैं ?

उ0 वीतराग सम्यक्त्व के बिना जो किये जाते हैं वे सब मुक्ति के कारण न होकर मात्र पुण्य बंध के कारण हैं।

प्र0314 व्रतादिक मुक्ति का कारण कब होते हैं ?

उ0 जो व्रतादिक अथवा दानादिक यदि सम्यक्त्व सहित हों तो परम्परा से मुक्ति के कारण है।

प्र0315 शुभ कर्म को भी अशुभ कर्म समान करने योग्य नहीं ऐसा क्यों कहा ?

उ0 इस जीव को जब तक बाह्य क्रिया काण्ड में रहकर आत्म कल्याण करना चाहिए तो संभव नहीं है क्योंकि बाह्य क्रिया एक साधन है और साधन से पुण्यरूप शुभ परिणाम है जो स्वयं माध्यस्थ वृत्ति अपनाता है। और जीव उसी में कर्त्ता बुद्धि लगाकर पुण्योपार्जन ही जीवन का ध्येय बनाता है। तब आत्म कल्याण रूपी लक्ष्य से विमुख होता है आत्म कल्याण कर्म बन्ध में नही कर्म निर्जरा में है। चाहे वह शुभ से चाहे अशुभ हमारा लक्ष्य क्रिया नहीं ध्यान और तपश्चरण है जिनकी बुद्धि तपस्या उद्देश्य से संसार त्यागकर पूजा व कार्य न करके अपने लक्ष्य की ओर आचार्य देव ने आकृष्ट करने के लिये पूण्योपार्जन रूप शुभ परिणाम भी अशुभ के समान है क्योंकि परंपरा से अशुभ में प्रवृत्ति नियम से होगी।

प्र0316 पाप और पुण्य एक कैसे हैं ?

उ0 जो जीव को संसार में ही बनाये रखता है वह पुण्य कभी सुहावना और सुख देने वाला कैसे हो सकता है, क्यों कि संसार तो सारा ही दुख रूप है कर्म के हेतु, स्वभाव, अनुभव और बधंरूप आश्रय का जब विचार किया है तो उसमें कोई भेद प्रतीत नहीं होता इसलिए वास्तव मे कर्म में कोई पाप पुण्यरूप भेद नहीं हैं क्यों कि कर्म का हेतु जीव का शुभाशुभ रूप परिणाम है, जो कि शुद्ध निश्चय से देखने पर एक अशुभ रूप ही प्रतीत होता हैं। द्रव्य भी पुण्य-पाप रूप पुद्गल द्रव्य है, जो कि निश्चय नय के द्वारा देखने पर जड़ स्वभाव रूप एक ही है और उसका फल जो सुख दुखरूप में अनुभव में आता है वह भी आत्मा से उत्पन्न हुये निर्विकार सुख की अपेक्षा से दुख रूप ही प्रतीत होता है और शुभाशुभ बधं रूप जो आश्रय है। वह भी बंधपने की अपेक्षा से एक रूप ही है। इस प्रकार पुण्यकर्म और पाप कर्म के हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय में कहीं कोई भेद नहीं हैं, किन्तु अभेद एक ही है।

प्र0317 आकांक्षा रूप व्रताचरण कैसे होते हैं ?

उ0 जो कोई जीव भोगों की आकांक्षा रूप निदान करते हुए सौंदर्य, सौभाग्य, कामदेव पद, देवेन्द्र पद अहमिन्द्र पद, ख्याति पूजा लाभ आदि मुझे प्राप्त हों, इस निमित्त से व्रत, तपश्चरण या दान पूजादि करता है वह पुरूष अपने इस व्रत तपश्चरण आदि रूप आचरण को व्यर्थ ही खोता है। जैसे कि कोई सूत के धागे के लिये मोतियों के हार को तोड़ता है अथवा कोंदों धान्य के खेत की बाड़ी के लिये चन्दन के वन को काटता है। छाछ के लिये रत्न बेचता

है या भस्म के लिये रत्न राशि जलाता है ऐसी ही उस जीव की दशा होती है।

प्र0318 शुभ और अशुभ के संसर्ग से हानि क्या है ?

उ0 खोटे स्वभाव वाले शुभ या अशुभ किसी भी प्रकार के साथ मानसिक-प्रेम मत करो, बाह्य-वचन एवं काय गत संसर्ग भी मत करो। क्यों कि कुशीलों के साथ प्रेम करने से स्वाधीनता का अवश्य ही नाश होता है, निर्विकल्प-समाधि का विघात होता है। अत; अपना अहित होता है अर्थात् स्वीधीनता जो आत्मसुख है उसका नाश होता है।

प्र0319 शुभ परिणाम भी कुशील है ऐसे कौन से साधू मानते हैं ?

उ0 समस्त प्रकार के द्रव्य और भावगत पुण्य-पाप के परिणाम का परिहार करने में परिणत ऐसे अभेद रत्नत्रय लक्षण वाले निर्विकल्प समाधि में जो लोग तत्पर रहते हैं वे साधु पुण्य क्रियाओं को छोड़ देते हैं।

प्र0320 बंध और मोक्ष किसको होता है ?

उ0 जो जीव रागी होता है वह निरन्तर कर्म बंध करता है और कर्मजनित भावों में जो विरागसंपन्न होता हैं वह मुक्त अर्थात् मोक्ष जाता है।

प्र0321 पाप और पुण्य रूप भेद कौन से नय से है ?

उ0 अनुपचारित-असदभूत व्यवहार नय से पाप और पुण्य रूप भेद हैं।

प्र0322 अनुपचरित-असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उ0 प्र क्रंमाक 95 पर परिभाषा देखें।

प्र0323 निश्चय परमार्थ का स्वरूप क्या है ?

उ0 शुद्धात्मा ही परमार्थ है, सर्वोत्कृष्ट अर्थ है क्योंकि धर्म, अर्थ और मोक्ष स्वरूप है वह परमात्मा ही है अथवा मति, श्रुत, अवधि मनपर्यय और केवलज्ञान इन भेदों से रहित होते हुये ज्ञान स्वरूप है वही निश्चय से परमार्थ हैं।

प्र0324 बालव्रत, बालतप अथवा अज्ञानव्रत किसे कहते हैं ?

उ0 परमार्थ लक्षण वाले परमात्म स्वरूप में जो स्थित नहीं है, अर्थात् उससे दूर हो रहा है फिर भी जो तपश्चरण करता है और व्रतादि को धारण करता है उस तप को बालतप, बालव्रत अथवा अज्ञानव्रत के नाम से कहते हैं।

प्र0325 परमात्म स्वरूप से रहित मुनि को क्या कहते हैं ?

उ0 जो जीव व्रत और नियमों को धारण करते हैं, शील पालते है, तथा तप भी करते हैं परन्तु परमात्मा स्वरूप के ज्ञान से रहित अर्थात् अचारण से रहित है इसलिये सब अज्ञानी हैं और कर्म बंध करते हैं।

प्र0326 मुनि किसे कहते हैं ?

उ0 संसार की वातों में मौन रखने वाले अर्थात् लौकिक बातों से दूर होने के कारण वह परमात्मा ही मुनि हैं।

प्र0327 कौन से मुनि निर्वाण को प्राप्त होते हैं ?

उ0 परमात्म स्वभाव में स्थित रहने वाले तन्मयता रखने वाले वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान में लीन मुनि एवं तपस्वी जन ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र0328 कौन-सा दान और पूजा परम्परा से मोक्ष का कारण हैं ?

उ0 जो दान एवं पूजा शुद्धात्मा की भावना को बनाये रखने के लिये बहिरंगव्रत तपश्चरण या अन्य क्रियाएँ करता जाता है वह परम्परा से मोक्ष का कारण होता है।

प्र0329 पुण्य को साक्षात् मोक्ष कारण अर्थात् एकान्त से मानने पर क्या दोष आता है ?

उ0 परमार्थ से वंचित संसार को ही बनाये रखने का हेतु ऐसे पुण्य को ही मुक्ति का कारण मानने पर व्यवहार भासी होकर निश्चय रूप अभेद रत्नत्रयात्म कर्म क्षय के साक्षात् कारण उसे न मिलने पर मुक्ति का अभाव होगा अथवा जो पुण्य, कर्मबंध का हेतु है। उसको मोक्ष का हेतु मानने पर हेतु विपर्ययस नामक दोष उत्पन्न होता है।

प्र0330 व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उ0 जीवादि-नवपदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित सही श्रद्धान है वही सम्यग्दर्शन हैं।

प्र0331 निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उ0 भूतार्थ नय के द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवादि पदार्थों की अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में ठीक ठीक अवलोकन करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है।

प्र0332 व्यवहार सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ0 जीवादि पदार्थों का संशय उभय कोटिज्ञान, विमोह-विपरीत अथवा एक कोटिज्ञान, विभ्रम-अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है निर्णय कर लिया जाता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्र0333 निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ0 जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक रूप में जानना सो निश्चय-सम्यग्ज्ञान हैं।

प्र0234 व्यवहार चरित्र किसे कहते है ?

उ0 जो रागादिक-विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्र0235 निश्चय चारित्र किसे कहते हैं ?

उ0 जीवादि पदार्थों को शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिकरूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना निश्चय सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्र0236 कौन से यति कर्मों का क्षय करते हैं ?

उ0 निश्चय के विषय को छोड़कर व्यवहार के विषय में विद्वान ज्ञानी-जीव प्रवृत्ति नहीं होते हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की एकाग्रता रूप परिणती है लक्षण जिसका ऐसा अपने शुद्धात्मा की भावना रूप परमार्थ को आश्रय करने वाले यतियों के ही कर्मो का क्षय होता है।

प्र0237 व्यवहार और निश्चय में ज्ञानी कैसे वर्तता अर्थात् आचरण करते हैं ?

उ0 "भुक्तत्वा निश्चयार्थ व्यवहारे न विद्वांस प्रवर्तन्ते" निश्चय को छोड़कर बुद्धिमान लोग व्यवहार में प्रवर्तन नहीं करते अपितु अपनी आत्मा में रमन करते रहते हैं क्योंकि कर्मो का क्षय इसी से होता है यह अध्यात्म शैली का कथन है, किन्तु आगमशैली कहती है कि व्यवहार में प्रवृत्ति किए बिना निश्चय को प्राप्त नहीं किया जा सकता, अत; विद्वांस व्यवहारेण प्रवर्तन्ते" विद्वान लोग व्यवहार मोक्षमार्ग परम समाधि को प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु मन की चंचलता से

यदि वह प्राप्त की हुई समाधि छूट भी जाये तो भी व्यवहार मोक्ष मार्ग जो त्याग भाव है उसे नहीं छोड़ते उसमें लगे रहते हैं ताकि उस त्याग भाव के बल से पुनः समाधि प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त कर सकें। हाँ "निश्चयार्थ मुक्त्वा व्यवहारे प्रवर्तन्ते ते न विद्वांस" जो लोग निश्चय-मोक्षमार्ग को न प्राप्त करके केवल व्यवहारमोक्षमार्ग, में ही मगन रहते हैं वे विद्वान कहलाने के योग्य नहीं हैं।

प्र0238 आत्मा के कौन से गुण कैसे नष्ट होते हैं ?

उ0 जैसे मैले के विशेष संबध से अवच्छिन्न होकर अर्थात् दबकर वस्त्र का श्वेतपन नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व मैल के विशेष सबंध से दबकर जीव के मोक्ष क़ा हेतु सम्यक्त्व गुण नष्ट हो जाता है। वैसे ही जीव का मोक्ष क़ा हेतुभूत ज्ञान गुण भी अज्ञान रूपी मैल से दबकर, मोक्ष के कारण भूत चरित्र गुण नष्ट हो जाता है।

प्र0339 ज्ञाता-दृष्टा आत्मा सम्पूर्ण वस्तुओं को क्यों नहीं जानता है ?

उ0 आत्मा स्वभाव से ही वस्तु मात्र का जानने वाला देखने वाला है, फिर भी वह अपने कर्म रूपी रज से अच्छादित है। अत; संसार को प्राप्त होता हुआ सर्व प्रकार से सम्पूर्ण वस्तुओं को जान नहीं रहा है।

प्र0340 व्यवहार मोक्षमार्ग पाप रूप क्यों है ?

उ0 यद्यपि व्यवहार मोक्षमार्ग, निश्चयरत्नत्रय जो उपादेय भूत है, उसका कारण होने से उपादेय है, ग्रहण करने योग्य है तथा परम्परा से जीव की पवित्रता का कारण है, इससे पवित्र भी है तथापि बाह्य द्रव्यों क अवलम्बन को लिये

होता है इसलिये पराधीन होने से वह नाश को प्राप्त होता है यह एक कारण है। दूसरा कारण यह है कि निर्विकल्प समाधि में त्तपर होने वाले योगियों का अपने शुद्धात्मस्वरूप से पतन व्यवहार विकल्पों के अवलंबन से हो जाता है इसलिये व्यवहार मोक्षमार्ग पाप रूप है।

प्र0341 समयसार के प्रश्नोत्तरी कर्त्ता की गुरू परंपरा क्या है?

उ0 समयसार प्रश्नोत्तरी के कर्त्ता की गुरूपंरपरा ऐसी है, दक्षिण प्रान्त महाराष्ट्र राज्य में सांगली जिला है उसमें कृष्णा नदी के तीर परबसा सुन्दर अंकली ग्राम में जन्में मुनि कुञ्जर समाधि सम्राट चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर जी महाराज जी और उनके द्वितीय पट्टाचार्य अठारह भाषा के ज्ञाता तीर्थभक्त शिरोमणी आचार्य परमेष्टि महावीर कीर्ति महाराज और उनके पट्टाचार्य परमतपस्वी सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य परमेष्ठि सन्मति सागरजी महाराज जी एवं उनके परम शिष्य क्रान्तिकारी प्रखर ओजस्वी धर्मोदेशक साधु परमेष्ठि मुनि श्री 108 सूर्य सागर जी महाराज जी (अरगकर)।

प्र0342 समयसार प्रश्नोत्तरी के कर्त्ता का कोई संदेश हैं ?

उ0 प्रश्नोत्तरी का सन्देश यह है कि सभी स्वाध्याय प्रेमी जिनवाणी उपासक विद्वान त्यागी व्रति एंव चर्तुविधि संघ के चरणों में मैं अल्प बुद्धि के कारण अगाध आगम के रहस्योंद्घाटन में कोई त्रुटि रही है। उसको सुधार कर पढ़े एवं छल को ग्रहण न करें एवं क्षमा करना जो ज्ञात अज्ञात श्रुत का अथवा परंपरा के विरुद्ध कोई बात हो तो उसे निकाल कर चतर्विधि संघनायक क्षमा करें।

समयसार प्रश्नोत्तरी भाग-2

(आश्रवाधिकार से सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार तक)

प्र01 आश्रव अधिकार में सम्मिलित गाथाएँ कितनी हैं।

उ0 आश्रव अधिकार में सम्मिलित 17 गाथाएँ हैं।

प्र02 आश्रव कहाँ होता है ?

उ0 जहां पर सम्यक्रूप से भेदभावना में परिणत जो कारण समयसार रूप संवर नहीं होता है वहां आश्रव होता है।

प्र03 आश्रव किसका प्रतिपक्षी है ?

उ0 आश्रव संवर का प्रतिपक्षी है।

प्र04 आश्रव के प्रत्यय (कारण) स्वरूप रागादिरूप भाव कब नहीं होते ?

उ0 केवल ज्ञानादि की अभिव्यक्ति रूप जो कार्य समयसार है उसका कारणभूत जो निश्चय रत्नत्रय उसमें परिणत होने वाला जो ज्ञानी जीव है उसके रागादिक रूप भाव प्रत्यय नहीं होते।

प्र05 द्रव्याश्रव का कारण क्या है ?

उ0 मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योगरूप आश्रव के कारण भाव और द्रव्य के भेद से दो प्रकार के होते हैं। उनमें से भावप्रत्यय चेतन स्वरूप और द्रव्य प्रत्यय जड़ स्वरूप हैं अथवा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चार संज्ञायें हैं। और इहलोक की आकांक्षा, परलोक की आकांक्षा कुधर्म की आकांक्षा रूप तीन असंज्ञायें हैं अर्थात् ईषत् संज्ञायें हैं, जो कि अशुद्ध निश्चय की उपेक्षा से उस जीव के परिणाम स्वरूप उससे अभिन्न होते हैं, उदय में आये हुए जो पूर्वोक्त मिथ्यात्वादि द्रव्य प्रत्यय हैं वे निश्चय चारित्र के साथ में अविनाभाव रखने वाले अर्थात् उसके बिना नहीं होने वाले वीतराग सम्यग्दर्शन के अभाव में शुद्धात्मीक स्वरूप से च्यूत होने वाले जीवों के ज्ञानावरणादि

आठ प्रकार द्रव्याश्रव का कारण हैं।

प्र06 केवल द्रव्य प्रत्यय से बन्ध मानने में दोष क्या हैं ?

उ0 केवल द्रव्य प्रत्ययों के उदयमात्र से बन्ध नहीं होता क्योंकि यदि उदयमात्र से ही बंध होने लगे तो हमेशा संसार बना ही रहेगा कभी उसका अन्त नहीं हो सकता, क्योंकि संसारी जीवों के कर्मों का उदय सदा ही बना रहता है। और किसी जीव को मोक्ष नहीं होगा, इसलिए इस तरह अनके दोष आते हैं।

प्र07 कर्मोदय बंध का कारण है या नहीं ?

उ0 निर्विकल्प समाधि से भ्रष्ट होने वाले जीवों को कर्म का उदय मोह सहित होता है जो कि व्यवहार से कर्मबंध का निमित्त होता है, किन्तु निश्चयनय से तो अशुद्ध उपादान है कारण जिसका ऐसा जीवका अपना रागादि अज्ञान भाव ही कर्म बन्ध का कारण हैं।

प्र08 कौन से जीवको बंध और आश्रव होता नहीं हैं ?

उ0 कर्मो का आश्रव और बंध समयग्दृष्टि जीव के नहीं होता उसके आश्रव का निरोध स्वरूप संवर ही होता है।

प्र09 वह सम्यग्दृष्टि जीव कैसा है ?

उ0 वह सम्यग्दृष्टि जीव सत्ता में विद्यमान पूर्व निबद्धज्ञानावरण कर्म उनको अथवा प्रत्ययों कि अपेक्षा से कहे तो पूर्व निबद्ध मिथ्यात्वादि प्रत्ययों को जैसा उनका स्वरूप है वैसा ही जानता रहता है, क्या करता हुआ जानता है, विशिष्ट भेदज्ञान के बल से वह नवीन कर्मों बांधता हुआ जानता है।

प्र010 कौन से सम्यग्दृष्टि को सर्वथा कर्मबंध नहीं करता ?

उ0 वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव नवीन कर्म बंध को सर्वथा नहीं करता है।

प्र011 सराग सम्यदृष्टि जीव की बंध व्यवस्था कैसे हैं ?

उ0 सराग सम्यग्दृष्टि जीव अपने अपने गुणस्थान के क्रम से बन्ध व्युच्छित्ती करने वाला होता है, जैसे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में विच्छिन्न हुई 43 प्रकृतियाकें का बन्ध करने वाला नहीं होता किन्तु 77 प्रकृतियों का अल्पस्थिति अनुभाग के रूप में बंधक भी होते हुए वह संसार की स्थिति का छेदक होता है परित संसारी बन कर रहता है। इस कारण से वह अबंधक ईषत् बंधकार होता है। इस प्रकार अविरत चतुर्थ गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानों में जहां तक सराग सम्यग्दर्शन रहता है वहाँ तक जहाँ जैसे संभव है वहां तारतम्यरूप से निचले गुणस्थानों की अपेक्षा से अबंध होता है। किन्तु उपरितन गुणस्थानों की अपेक्षा से देखने पर वह बंधक भी है।

प्र012 क्या सम्यग्दृष्टि को बन्ध होता है ?

उ0 जहां सराग सम्यक्त्व के आगे वीतराग सम्यक्त्व होता है वह साक्षात स्पष्ट रूप से अबंधक होता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि हम भी सम्यग्दृष्टि है और सम्यग्दृष्टि के बंध नहीं होता है ऐसा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यहां पर जितना भी कथन है वह वीतराग सम्यग्दृष्टि को लक्ष्य से लेकर लिया गया है।

प्र013 सराग सम्यग्दृष्टि कितने प्रकार है ?

उ0 सराग सम्यग्दृष्टि तीन प्रकार का है,

1. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती
2. पंचम गुणस्थानवर्ती
3. षष्ठं गुणस्थानवर्ती

प्र014 पंचम गुणस्थानवर्ती कितने प्रकृतिका बंध और अबंधक होता है ?

उ0 पंचम गुणस्थानवर्ती जीव 53 प्रकृति का तो अबंधक है और 67 प्रकृतिका बंधक होकर बंधकाबंधक स्थिति को प्राप्त होता है।

प्र015 षष्ठं गुणस्थानवर्ती जीव कितने प्रकृति का बंधक और अबंधक होता है ?

उ0 षष्ठं गुणस्थानवर्ती जीव 63 प्रकृतियों का बंधक और 58 प्रकृति का अबंधक होकर बंधाबंधक स्थिति को प्राप्त होता है।

प016 वीतराग सम्यग्दृष्टि सर्वथा अबंध क्यों माना है क्यों की तेरावे गुणस्थान तक बंध होता है इसका आशय स्पष्ट करिएँ ?

उ0 समयसार में वीतराग सम्यदृष्टि दो प्रकार के हैं, एक समस्त मोह कर्म का नाश कर 13वें गुणस्थान में पहुँचाने वाला साक्षात कषाय रहित स्थिति और अनुभाग का अबंधक होता है लेकिन प्रकृति और प्रदेश सभी माध्यम से इर्यापथाश्रव को प्राप्त होता है लेकिन प्रकृति और प्रदेश सिर्फ यह दो बंध कभी संसार का कारण न होते हुए अति शीघ्र केवलज्ञान को प्राप्त होता है इसलिए इस जीव को सर्वथा अबंध कहाँ दूसरा जीव जो सातवें गुणस्थान में त्रिगुप्तीयुक्त आत्मानुभव में तत्पर मोह कर्म के नाश में अतिशीघ्र गति से अग्रसर होने से और अर्न्तमूहूर्त में मोह को नाश करने वाले होकर सर्वथा अबंधक अवस्था को प्राप्त होगा। इसलिये कारण मे कार्य का उपचार करके सातवें गुणस्थान के दोनों स्थानों से लेकर दसवें गुणस्थान तक के वीतराग सम्यग्दृष्टि अबंध कहां है और अल्प बधं होने के कारण भी क्यों की बुद्धिपूर्वक बंध संसार वृद्धि अति शीघ्र करता है। इसलिए वीतराग सम्यग्दृष्टि को नवीन कर्म का सर्वथा अबंध कहा है।

प्र017 अज्ञान भाव कर्म का प्रेरक कैसा होता है ?

उ0 जैस चुम्बक पाषाण के संसर्ग से उत्पन्न हुआ परिणाम विशेष वह लोहे की सूची को हिलाने डुलाने वाला होता है, वैसे ही जीव के द्वारा किया हुआ रागदिरूप अज्ञान भाव ही जीव का वह परिणाम विशेष ही जो यह जीव अपने सहज शुद्ध भाव के द्वारा सदानन्दमय, कभी भी नष्ट नहीं होने वाला, सदा से बना रहने वाला अनन्त शक्ति का धारक सदा से बना रहने वाला एवं किसी भी प्रकार के दुःसंसर्ग से रहित स्वयं उद्योतमान होने वाला है उस जीव को उसके शुद्ध रूप से चिगाकर कर्म बंध करने के लिए प्रेरित करता है।

प्र018 राग द्वेष-मोह के कारण बंध में क्या विशेषता होती है ?

उ0 राग भाव से बंध होता है वह मन्द होता द्वेष भाव अदेखसकापान से तीव्र बंध होता है, किन्तु मोह भाव मिथ्यात्व से अत्यन्त तीव्र बधं होता है इस तरह बंध में तारतम्यता होती है।

प्र019 कौन सा कर्म उदय में नहीं आता है ?

उ0 जैसे वृक्ष या बेल का फल पककर गिर जाने पर वह फिर गुच्छा या बेल से संबध को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी जीव में होने वाला कर्म भाव पककर झड़ जाने पर फिर उदय को प्राप्त नहीं होता है।

प्र020 रागी जीव का कर्म फल कैसा है ?

उ0 रागी जीव के कर्म जो उदय में आते हैं वह भोगभूमियों के समान अर्थात् भोगभूमि में जब युगालियों का मृत्यु निकट आने पर युगल सन्तान को जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार रागी जीव का कर्म अपनी सन्तान रूप कर्मबन्ध कराकर ही निर्जरा को प्राप्त होता है।

प्र021 विरागी जीव का कर्म फल कैसा होता है ?

उ0 राग रहित विरागी जीव का कर्म नपुंसक के समान अपना खेल दिखाकर निसन्तान नष्ट होता है।

प्र022 वीतरागी जीव के सामने द्रव्य कर्म कैसा है ?

उ0 उस वीतरागी सम्यग्दृष्टि जीव के पूर्व काल मे निबद्ध मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय रागादिभावों के जनक न होने से पृथ्वी पिंड के समान अकार्यकारी है क्योंकि वे उसके नवीन द्रव्यकर्म का बंध नहीं करते।

प्र023 पृथ्वी पिण्ड के समान कैसे रहते हैं ?

उ0 निर्मल अनुभूति शुद्धात्मा के साथ तन्मयता ही है लक्षण ऐसा भेदज्ञान जिसके है उस ज्ञानी के सब ही कर्म शरीर रूप से रहते हैं। रागद्वेषादि भावों में जीव को परिणमन नहीं कराते हैं, उस ज्ञानी जीव के द्रव्य प्रत्यय मुट्ठी में रखे हुए विष के समान कार्मण शरीर सम्बन्ध रहते हैं तो भी उदय का अभाव होने से फलदान शक्ति के नहीं होने पर वे सब उसको सुख या दुख रूपी विकारमयी बाधा को नहीं कर पाते इसलिए पृथ्वी के समान हैं।

प्र024 आत्मा के कौन से गुण बंध के कारण है ?

उ0 मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग रूप चार कर्म बंध के कारण हैं वे आत्मा के ज्ञान और दर्शन गुण के द्वारा, समय समय पर अनेक प्रकार के नवीन कर्मों को बांधते हैं।

प्र025 आत्मा के गुण तो अमूर्तिक हैं, इन गुणों से बंध कैसे होता है ?

उ0 उदय में आये हुए मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय आत्मा के ज्ञान और दर्शन गुण को रागादिमय अज्ञानभाव के रूप में परिणमा देते हैं। उस समय वह अज्ञानभाव में परिणत हुआ ज्ञान और दर्शन बधं का कारण होता है।

प्र026 कौन सा ज्ञान गुण परिणमन करता है ?

उ0 जघन्य ज्ञानगुण परिणमन करता है।

प्र027 जघन्य ज्ञान गुण किसे कहते हैं ?

उ0 *यथाख्यात चारित्र से पूर्व अवस्था का ज्ञान जघन्य अर्थात् हीन* दशावाला ज्ञान कहाँ जाता है।

प्र028 जघन्य ज्ञान गुण किस कारण से परिणमन करता है ?

उ0 जघन्य ज्ञान गुण अर्थात् कषाय सहित वृत्तिवाला होता है इसलिए ज्ञानगुण की जघन्यता के कारण से यह जीव अन्तर्मुहूर्त के पीछे निर्विकल्प समाधि में ठहर नहीं सकता इसलिए वह जीव का ज्ञानगुण अन्यरूपता को सविकल्प रूप पर्यायान्तर को स्वीकार करता है।

प्र029 दर्शन, ज्ञान, चरित्र की जघन्य अवस्था कैसे होती है ?

उ0 ज्ञानी विरागी जीव इच्छा पूर्वक चलकर किसी भी वस्तु के प्रति रागादिरूप विकल्प को अमुक वस्तु मेरी है इत्यादि रूप विचार को कभी नहीं करता, इसलिये वृद्धि पूर्वक रागादि नहीं होने से वह निरास्रव ही होती है किन्तु जब तक उस ज्ञानी जीव को भी परम समाधि का अनुष्ठान नहीं हो पाता तब तक वह भी शुद्धात्मा को देखने में, जानने में और वहां स्थिर रहने में असमर्थ होता है, अत; तब तक उसका दर्शन, ज्ञान चरित्र भी जघन्य भाव को बुद्धि अबुद्धि पूर्वक कषायभाव को व्यक्त अव्यक्त रागभाव को लिये हुए होता है, परिणमन करता है।

प्र030 भेदविज्ञानी जीव कौन से कर्म का बंध करता है ?

उ0 भेदज्ञानी जीव परम्परा से मुक्ति में कारणरूप होने वाले ऐसे तीर्थंकर नाम कर्मादिरूप पुद्गल प्रकृतिमय नाना प्रकार के पुण्यकर्म से अपने अपने गुणस्थान के अनुसार बँधता ही रहता

है।

प्र031 **कौन से गुणस्थान तक तीर्थकर प्रकृति का वंध होता है ?**

उ0 चौथे गुणस्थान से आठवे गुण स्थान तक तीर्थकर प्रकृति का वंध होता है।

प्र032 **आत्म कल्याण के इच्छुक मुमुक्ष को क्या करना चाहिए ?**

उ0 किसी भी प्रकार की बड़ाई पूजा, प्रतिष्ठा का लाभ तथा भोगों की आकांक्षारूप निदान बंधादिविभाव परिणामों को त्याग कर साथ साथ निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर तब तक शुद्धात्मा के स्वरूप को देखता, मानता रहे, जानता रहे एवं उसमें लगा रहे जहाँ तक शुद्धात्मा के परिपूर्ण केवलज्ञानरूप भाव का दर्शन, ज्ञान और आचरण प्राप्त न कर ले अर्थात् स्वच्छ केवलज्ञान अवस्था को न पा लेवे तब तक।

प्र033 **ज्ञान शब्द के दो अर्थ कौन से हैं ?**

उ0 ज्ञान शब्द का अर्थ दो प्रकार का है, एक यथावस्थितं अर्थ जानातीति ज्ञानं 'दूसरा' आत्मनं जानाति अनुभव तीति ज्ञानं यथारूप से स्थित अर्थ को जानन सो ज्ञान है, दूसरा समाधि काल में ज्ञान जव तक आत्मा का अनुभव करता रहता है तव तक वह ज्ञान कहा जाता है।

प्र034 **कौन से अवस्था वाला कर्म वंध नहीं करता है ?**

उ0 उपशम श्रेणी में प्राप्त हुए वीतराग सम्यगदृष्टि जीव के पूर्व में वंधे हुए सब ही मिथ्यात्वादि कर्म सत्ता में विद्यमान होते है। वे सव उपयोग में आने पर तत्काल उदय को प्राप्त होने पर आत्मा में रागद्वेषादि पैदा करने से नूतन कर्मबन्ध के करने वाले होते है किन्तु पूर्व द्रव्यकर्म की सत्ता मात्र से बंध करने वाले नहीं होते। जैसे-मनुष्य के लिये बालस्त्री उपभोग योग्य नहीं होती है वैसे ही उदय से पहिले अनुदय दशा में रहने वाले पूर्ववद्धकर्म फलकारक नहीं होते किन्तु उदय काल में ही वे

सब कर्म उपभोग के योग्य होते हैं फलकारक होते है रागादिरूप विकारभाव उत्पन्न होते है। जैसे-स्त्री, तरूण होने पर मनुष्य को रागी बनाकर विवश करने वाली होती है।

प्र035 संसार की स्थिति किन किन कारणों से क्षय होती है ?

उ0 "द्वादशांगावगमस्ततीव्रभक्तिरनिवृतिपरिणामः केवलिमनुद्धातश्चोति संसारस्थितिघातकारणानि भवन्ति" परिपूर्ण द्वादशांग का ज्ञान प्राप्त होना, अरहन्त भगवान के प्रति भक्ति अर्थात् सम्यग्दर्शन का लाभ होना, शुद्धात्म स्वरूप से एकाग्रतारूप अविचलित परिणाम होना, और केवली समुद्धात का होना ये चार कारण संसार की स्थिति को छेदने के लिये होते है।

प्र036 द्वादशांगावमन किसे कहते है ?

उ0 द्वादशांग के विषय में जो ज्ञान है वह व्यवहार नय से इतर जीवादि बाह्य समस्त पदार्थों का श्रुत के द्वारा ज्ञान हो जाना है और निश्चयनय से वीतराग रूप स्वसंवेदनात्मक ज्ञान का हो जाना सो द्वादशांगावगम कहलाता है।

प्र037 भक्ति किसे कहते है ?

उ0 भक्ति नाम सम्यवत्व है जो व्यवहार से तो पंचपरमेष्ठि की समाराधनारूप होती है वह सरागसम्यग्दृष्टि जीवों के हुआ करती है, किन्तु निश्चय से वह भक्ति वीतराग-सम्यग्दृष्टि जीवों के शुद्धात्म तत्व की भावना के रूप में हुआ करती है।

प्र038 अनिवृत्ति किसे कहते है ?

उ0 निवृत्ति अर्थात वापिस लौटना और इसका न होना अनिवृत्ति कहलाता है अर्थात् शुद्धात्मा के स्वरूप से च्यूत न होना एकाग्रता रूप परिणाम हो सो अनिवृत्ति है। अथवा सराग चरित्र हो जाने पर वीतराग चरित्र का होना सो अनिवृत्ति

परिणाम है।

प्र039 समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ0 मूल शरीर को न छोड़कर तैजस कार्मण रूप उत्तर देह के साथ साथ जीव प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं।

प्र040 सम्यग्दृष्टि को कौन सा राग नहीं होता ?

उ0 सम्यग्दृष्टि जीव के राग, द्वेष और मोहभाव नहीं होते है, क्योंकि इन भावों के होने पर सम्यग्दृष्टि पना बन ही नहीं सकता। सम्यग्दृष्टि जीव के अनतानुबन्धी क्रोध, मान, माय, लोभ और मिथ्यात्व के उदय से होने वाले राग, द्वेष और मोह भाव नहीं होते है।

प्र041 चतुर्थगुणस्थानवर्ति जीव के बाह्य लक्षण क्या है ?

उ0 केवल ज्ञानादि अनंत गुणों वाले परमात्मा में उपादेयता स्वीकार होकर वीतराग और सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुए छहः द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्त तत्व और नव पदार्थों में रूची होने रूप व तीन मूढता, आदि पच्चीस दोष रहित, संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकम्पा इन आठ गुणों वाले बाह्य लक्षण कहे गये है अर्थात् इनके अभाव में सम्यक्त्व नहीं होता है।

प्र042 संवेग किसे कहते है ?

उ0 धर्म एवं धर्मात्मा के प्रति अनुराग जो है उसे संवेद कहते है।

प्र043 निर्वेद किसे कहते है ?

उ0 भोगों में जो अनासक्त रूप जो परिणाम है उसे निर्वेद कहते है।

प्र044 निन्दा किसे कहते है ?

उ0 अपने आप को भूल करने वाला मानना निन्दा है।

प्र045 गर्हा किसे कहते है ?

उ0 गुरुओं के आगे अपनी भूल स्वीकार करने को गर्हा कहते है।

प्र046 उपशम भाव किसे कहते है ?

उ0 हर्ष और विषाद में उद्विग्न न होना उपशम भाव है।

प्र047 भक्ति किसे कहते है ?

उ0 पंच परमेष्ठि में जो अनुराग है उसे भक्ति कहते है।

प्र048 वात्सल्य किसे कहते है ?

उ0 साधर्मियों के प्रति प्रीतिभाव को वात्सल्य कहते हैं।

प्र049 अनुकंपा किसे कहते है ?

उ0 किसी को दुखी देखकर द्रवित होना अर्थात् दयारूप परिणाम होना अनुकंपा कहते हैं।

प्र050 देशसंयम के साथ सराग सम्यक्त्व की क्या विशेपता है अर्थात् कौन सा राग नहीं होता है ?

उ0 अनंतानुवन्धी और अप्रत्याख्यानावरण नामवाले क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय से होने वाले राग द्वेप और मोह भाव सम्यग्दृष्टि जीव के नहीं होते हैं।

प्र051 देश संयम के साथ सराग सम्यत्व का लक्षण क्या हैं ?

उ0 निर्विकार परमानंदरूप सुख ही है लक्षण जिसका ऐसे परमात्मा में उपादेयपना होकर षट्द्रव्य पंचास्ति काय सप्ततत्व, नवपदार्थ में रूचिरूप तथा तीन मूढ़तादि पच्चीस सदोपरहित भाव तथा उसी के साथ होने वाले प्रशम, संवेग अनुकम्पा तथा देवधर्मादिक के विषय में आस्तिक्यभाव की अभिव्यक्ति (प्रगटता) रूप लक्षण है।

प्र052 सकल संयमी को कौनसा राग नहीं होता है ?

उ0 अनंतानुवन्धी अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण, और

तीव्र संज्वलन रूप क्रोध-मान-माया और लोभ के उदय से होने वाले प्रमादकारक राग द्वेष और मोहभाव वीतराग सम्यग्दृष्टि को नही होता है।

प्र054 वीतराग सम्यक्त्व की उत्पत्ती कैसे होती है ?

उ0 शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव, वाले परमात्मा में उपादेय बुद्धि होकर उसके ही योग्य शुद्धात्मा की समाधि से संज्ञात अनुभूत जो सहजानन्द स्वलक्षण वाला सुख की अनुभूति होना ही है स्वरूप जिसका ऐसे अप्रमतादि गुणस्थानवर्ती वीतराग चारित्र के साथ अविनाभाव रखने वाले अर्थात् वीतराग चारित्र के बिना होने वाले वीतराग सम्यक्त्व की भी उत्पत्ति नहीं होती है।

प्र055 चारित्र और सम्यक्त्व को कौन सा राग होने नहीं देता है ?

उ0 अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तो सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनों को ही नहीं होने देते।

प्र056 कौन सा राग देशसंयम होने नहीं देता है ?

उ0 अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यक्त्व को नहीं रोकते पर चारित्र के एक देश अंशरूप अणुव्रतात्मक चारित्र को नहीं होने देते।

प्र057 कौन सा राग सकल संयम होने नहीं देता है ?

उ0 प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया और लोभ सकल संयम महाव्रतरूप चारित्र को होने नहीं देता है।

प्र058 कौन सा राग यथाख्यात संयम होने नहीं देता है ?

उ0 संज्वलन क्रोध मान माया और लोभकषाय यथाख्यात चारित्र को नहीं होने देता है।

प्र059 कर्म के उदय से भी नवीन कर्म का बंधन कब नहीं होता है?

उ0 उदय में आये हुए मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्ययों के भी कारण जीवगत रागादिभाव रूप प्रत्यय होते है, उन द्रव्य प्रत्यय भले

ही उदय में आये हुये क्यों न हो तो भी वीतराग परम समायिक भावना में परिणत रहने वाले अभेदरत्नत्रय है लक्षण जिसका ऐसे भेदभाव होने पर उदय में आने पर भी नवीन कर्म का बंध नहीं होता है।

प्र060 **कर्म वर्गणा एक रूप होकर भी रागद्वेष के कारण अनेक प्रकार का कैसे होता है ?**

उ0 जैसे पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ भोजन अनेक प्रकार की अवस्था में परिणामन करता है जो कि उदर अग्नि का संयोग पाकर माँस, चर्बी, लोट आदि के रूप में परिणमन करता है, उसी प्रकार उदराग्नि के स्थान पर रागादि परिणाम को पाकर अनेक भेद वाला कर्म बन्ध होता है।

प्र061 **नवीन कर्म का बंध करने वाले जीव कैसा होता है ?**

उ0 वे जीव परमसमाधि ही है लक्षण जिसका ऐसे भेदभाव स्वरूप शुद्धनय से दूर रहने वाले अथवा "न च परिहीणास्तु ते (प्रत्यया) जीवातु" वे द्रव्य प्रत्यय अशुद्धनय की अपेक्षा से उस जीव के साथ एक क्षेत्रावगह होकर रहने वाला है, तात्पर्य यह है कि जिसमें अपना शुद्धात्मा ही ध्यान करने योग्य होता है तथा जो सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर डालने में समर्थ होता है ऐसे शुद्धनय विवेकी द्वारा त्यागने योग्य नहीं ऐसा सोचता है। वह जीव नवीन कर्म का बंध करता है।

प्र062 **संवर अधिकार में कितनी गाथाएँ है ?**

उ0 संवर अधिकार मे चौदह गाथाएँ है।

प्र063 **संवर कहाँ होता है ?**

उ0 मिथ्यादर्शन और रागादि में परिणमन होता हुआ बाहिरात्मा की भावना जो आश्रव भाव नहीं है वहाँ संवर होता है।

प्र064 **उपयोग से क्या तात्पर्य है ?**

उ0 ज्ञान और दर्शन रूप उपयोग ही आत्मा का स्वरूप है अत; अभेदविवक्षा से यहाँ पर अर्थात् संवर अधिकार में उपयोग शब्द से आत्मा को लिया गया है।

प्र065 शुद्धात्मा में क्या होता है ?

उ0 शुद्धात्मा मे ज्ञान दर्शनस्वरूप उपयोग मात्र ही होता है। अर्थात् उसमें क्रोधादिक विकारीभाव नहीं होते है।

प्र066 भ्रष्टात्मा कब बन जाता है ?

उ0 शुद्धनिश्चयनय से क्रोधादिक परिणामों के होने पर कोई भी उपयोग अर्थात् आत्मा नहीं रहता वह अनात्मा, भ्रष्टात्मा बन जाता है।

प्र067 परमात्मा कब नहीं रहता है ?

उ0 ज्ञानवरणादि रूप आठ प्रकार के द्रव्यकर्म तथा औदारिक आदि शरीररूप नोकर्म के रहने पर भी शुद्ध बुद्ध एक स्वभावरूप परमात्मा नहीं रह पाता है।

प्र068 ज्ञानी जीव उपसर्ग और परिषह में भी अपनी स्वभाव की रक्षा कैसे करता है ?

उ0 जिस प्रकार अग्नि से तपाया हुआ भी स्वर्ण अपने स्वर्णपने को नहीं छोड़ता हुआ उसमें शुद्ध ही होता है वैसे ही तीव्र/ परिषह या उपसर्ग रूप घोर कर्म के उदय से सताया हुआ भी जीव अभेद रत्नत्रय ही है लक्षण ऐसे समाधिस्थ अथवा भेद ज्ञान धारी जीव राग द्वेष और मोह रूप परिणामों को न होने देने में तत्पर होता हुआ पाण्डव और गजकुमार के समान अपने शुद्धात्मा के संवेदन ज्ञान को नहीं त्यागते हुये शुद्ध ही करता है। और अपनी स्वभाव की रक्षा स्वयं करता है।

प्र069 कौन से जीव आत्मानुभव नहीं करता अर्थात् आत्मानुभव होता नहीं है ?

उ0 वीतराग स्वसंवेदन स्वरूप भेदभाव वाला जीव तो समाधिस्थ

होकर अपने शुद्धात्मा के स्वरूप को जानता ही रहता है, उसी पर जमा रहता है, किन्तु अज्ञानी जीव को भेदज्ञान का अभाव होने से वह अपने आपको मिथ्यात्व और रागदिरूप ही मानता और जानता रहता है, क्योंकि वह अज्ञान रूप ही मानता और जानता रहता है, क्योंकि वह अज्ञानरूप अन्धकार से ढका हुआ है। निर्विकल्प समाधि का न होने से विकार रहित परम चैतन्य चमत्कार स्वरूप शुद्धात्मा को नहीं जानता है, उसका अनुभव नहीं करता अर्थात् उस जीव को आत्मानुभव नहीं होता है।

प्र070 ज्ञानी जीव किसे कहते हैं ?

उ0 क्रोधादि भावकर्म, ज्ञानावराणादि द्रव्यकर्म, औदारिक शरीरादि नोकर्म तीनों प्रकार के कर्मों से रहित तथा अनन्तज्ञानादि गुणस्वरूप शुद्धात्मा को निर्विकार सुख की अनुभूति स्वरूप, भेदभाव के द्वारा जो जानता है, अनुभव करता है वह ज्ञानी जीव कहलाता है।

प्र071 शुद्ध कौन सा जीव नहीं होता है अथवा अशुद्ध रहता है ?

उ0 जो जीव गुणों से विशिष्ट जैसी आत्मा का अर्थात् शुद्धात्मा का ध्यान करता है, अपने उपयोग में दृढ़ता से उतरता है वह अपने आपको भी वैसे ही बना लेता है क्योंकि उपादान के समान ही कार्य होता है, यह नियम है, परन्तु जो अपने आपको, मिथ्यात्वादि विकारभावों में परिणत हुआ आपको मिथ्यात्वादि विकारभावों में परिणत हुआ अशुद्ध जानता है, अनुभव करता है वह अज्ञानी जीव अपने आप को नरनारकादि पर्ययरूप मे अशुद्ध ही पाता है।

प्र072 जीव इच्छा रहित कब होता है ?

उ0 पुण्य और पाप के आधारभूत दोनों प्रकार की शुभाशुभ

क्रियाओं से अपनी आत्मा को प्रवर्तमान अपने करण साधनभूत स्वसंवेदन ज्ञान बल से दूर हटा कर दर्शन और ज्ञान में स्थित होता हुआ इन देहादिक और रागादिक सभी प्रकार के अन्य द्रव्यों में इच्छा रहित होता है।

प्र073 परिग्रह से रहित होकर क्या नहीं करता है ?

उ0 सर्व प्रकार से परिग्रह रहित होकर अर्थात् आत्म तत्व विपरित बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह रहित होता हुआ करणभूत अपनी शुद्धात्मा से अपने शुद्ध स्वरूप का ध्यान करता है, किन्तु कर्म और नोकर्म का चिंतन नहीं करता है।

प्र074 आत्म ध्यान करने वाला क्या करता है ?

उ0 आत्मा का ध्यान करने वाला जीव विशिष्ट गुणों से सहित, चेतना गुणहारी आत्मा केवल एकत्व का चिंतवन करता है जैसे कि "एकोऽहं निर्मम शुद्धों, ज्ञानी योगीन्द्रगोचर। बाह्या संयोगजा भाव मत सर्वोपि सर्वथा।" इस श्लोक में बताया है कि मैं तो एक हूँ, मेरा यहा कोई नहीं है, किसी भी प्रकार से सम्पर्क से दूर रहने वाला हूँ, केवल ज्ञान गुण का धारक हूँ मुझे योगी लोग ही ध्यान के बल से जान-पहचान सकते है और कोई नहीं, इसके सिवाय जितने भी संयोगज भाव है अर्थात् शरीरादिक है वे मेरे से सर्वथा भिन्न है इसी प्रकार आत्म ध्यान करने वाला योगी चिंतवन करता है।

प्र075 एकत्व आत्मा के चिंतवन से क्या होता है ?

उ0 एकत्व आत्मा चिंतवन करता हुआ निर्विकल्प रूप से आत्मा का ध्यान करता हुआ, दर्शन और ज्ञानमयी होकर तथा अपने आत्मा में एक चित्त होकर अपने आप को ही प्राप्त कर पाता है और भावकर्म द्रव्य कर्म और नोकर्म के भेद से जो तीन प्रकार के कर्म है उनसे रहित होता है।

प्र076 आत्मा छद्मस्थ जीवों के द्वारा देखने में नहीं आता तो उसका

निश्चय कर ध्यान कैसे किया जा सकता है ?

उ0 जैसे-लोक व्यवहार में किसी परोक्ष देव के रूप को भी किसी दूसरे के कहने से या कहीं लिखा हुआ देखकर कि यह अमुक देवता का रूप है, देवदत्त आदिक जान जाता है, उसी प्रकार यह जीव वचनों के द्वारा कहाँ जाता है तथा यह जीव मेरे द्वारा देखा गया है और जाना गया, ऐसा मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार विश्वास किया जा सकता है, समझा जा सकता है। ऐसा मन के द्वारा ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार विश्वास किया जा सकता है, समझा जा सकता है। ऐसा ही अन्य ग्रंथ में कहा गया है कि "गुरुपदेशाभ्यासात् संवित्तते स्वपरान्तरं जानाति य स जानाति मोक्षसौख्यं निरतरं।" जो गुरु महाराज के उपदेश से उनके बताये हुए मार्ग के द्वारा अभ्यास करने से अपनी बुद्धि के विवेक द्वारा अपने आपके तथा औरों के अंतरंग तत्व को जानता है वह निरन्तर होने वाले मोक्ष सुख को जानता हैं

प्र077 वर्तमान में आत्मा को कैसा देखा नहीं जाता है ?

उ0 कोई भी समझदार साधु इस समय ऐसा नहीं कहता अथवा कह सकता की मैंने आत्मा के स्वरूप को प्रत्यक्ष ही देख लिया है जैसे कि चतुर्थ काल में केवलज्ञानी देख लिया करते थे।

प्र078 वर्तमान में आत्मा को कैसे देखा जात है अर्थात् परोक्ष या प्रत्यक्ष ?

उ0 यद्यपि शुद्धनिश्चयनय से रागादि विकल्प रहित स्वसंवेदन रूप भावश्रुतज्ञान केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष ही है, तथापि सर्वसाधारण को होने वाला जो इन्द्रिय मनोजनित सविकल्पज्ञान होता है। उसकी अपेक्षा से वह प्रत्यक्ष है। अत स्वसंवेदन ज्ञान से होता है। पर केवल ज्ञान के द्वारा जाना जाता है इसलिये प्रत्यक्ष होता है पर केवल ज्ञान की दृष्टि में तो वह अनुभव परोक्ष ही है। किन्तु सर्वथा परोक्ष ही है ऐसा नहीं कहा जा

सकता है।

प्र079 भगवान हो अन्य कोई भी आत्मा को कैसे दिखाते है ?

उ0 चतुर्थ काल में भी केवली भगवान क्या आत्मा को हाथ में लेकर दिखलाते है ? अर्थात् नहीं, वे अपनी दिव्यध्वनी के द्वारा कहकर चले जाते है। तो भी दिव्यध्वनी सुनने के काल में सुनने वालों के लिए आत्मा का स्वरूप परोक्ष ही होता है।

प्र080 आज सुनकर आत्मानुभव कैसे करता है ?

उ0 श्रोता जन सुनकर तत्पश्चात परमसमाधि स्वीकार करते है उस ध्यानस्थ अवस्था में ही वह उनके प्रत्यक्ष होता है अनुभव गोचर होत है वैसा ही आज भी हो सकता है।

प्र081 भावकर्म का स्वरूप कैसा है ?

उ0 भावकर्म जीव और पुद्गल कर्मगत दो प्रकार का होता है जैसा कि कहा है "दैत्वं पुग्गालापिंडो दव्वं कोहादी भाव तु" यह जीवगत भावकर्म की बात हुई और "युगलपिंडो दव्वं तरसती भाव काम्मंतु" यह पुद्गल द्रव्य गत भावकर्म की बात हुई। उसी को दृष्टांत द्वारा समझाते है कि किसी मीठे या कड़वे पदार्थ को खाने के समय में उसके मधुर या कटुक स्वाद को चखने रूप जो जीव का विकल्प होता है वह जीवगत भाव कहलाता है, किन्तु उसकी प्रगटता में अथवा व्यक्ता में कारण भूत ऐसा उस मधुर या कटुक द्रव्य में रहने वाला शक्ति का अंश विशेष होता है वह पुद्गल द्रव्यगत भाव कहां जाता है। इस प्रकार भावकर्म का स्वरूप जीवगत और पुद्गलगत दो प्रकार का होता है।

प्र082 संसार का अभाव कैसे होता है ?

उ0 नोकर्म का अभाव होने पर संसार दूरवर्ति ऐसा जो शुद्धात्मत्व उसका प्रतिपक्षभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पंच

प्रकार के संसार का भी अभाव हो जाता है।

प्र083 निर्जरा अधिकार में कितनी गाथाएँ है ?

उ0 दण्डक को छोड़कर निर्जरा अधिकार में पचास गाथाएँ है।

प्र084 कौन से जीव का उपभोग निर्जरा का निमित है ?

उ0 सम्यग्दृष्टि वीतरागी जीव अपनी इन्द्रियों द्वारा चेतन तथा उनसे भिन्न अचेतन द्रव्यों का उपयोग निर्जराका निमित्त होता है।

प्र085 सम्यग्दृष्टि को निर्जराका निमित्ति क्यों होता है ?

उ0 जो वस्तु मिथ्यादृष्टि जीव के लिए राग द्वेष और मोह भावहोने के कारण बंध में निमित्त कारण होती है, वही वस्तु सम्यग्दृष्टि जीव के लिये राग द्वेष और मोह भाव के न होने पर निर्जरा का निमित्त होती है।

प्र086 सम्यग्दृष्टि के तो रागादिक-भाव होते है सब ही सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागी नहीं होते है इससे उसके कर्म की निर्जरा कैसे हो सकती है ?

उ0 समयसार में वास्तविक में वीतराग सम्यग्दृष्टि का ही ग्रहण किया गया है, परन्तु चतुर्थ गुणस्थानवर्ति अविरात सम्यग्दृष्टि का कथन गौण है, यहा उन जीवों को लक्ष करके नहीं कहाँ है।

प्र087 चौथे गुणस्थान को ले लिया है तो अर्थात् सराग सम्यग्दृष्टि जीव क्या निर्जरा करता नहीं है ?

उ0 चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव अपेक्षा कम राग वाला होता है क्योंकि उसके मिथ्यात्व तथा अनंतानुबी क्रोध, मान, माया, लोभ जनित रागादिक नहीं होते तथा श्रावक के अर्थात् पंचम गुणस्थानवर्ती जीव को अप्रत्यानावरण क्रोध, मान, माया और

लोभ जनित रागादिक नहीं होते इसलिये सम्यग्दृष्टि के जो भी निर्जरा होती है वह संवर पूर्वक होती है किन्तु मिथ्यादृष्टि के हाथी स्नान के समान बंध पूर्वक निर्जरा होती है।

प्र088 आगम ग्रंथ में बन्ध तो दसवे गुणस्थान तक होता है तब वह जीव किन कर्मो का संवर एवं निर्जरा करता है ?

उ0 आपका कहना ठीक है लेकिन कर्मबन्ध दो प्रकार का है एक शुभ और दूसरा अशुभ जिससे पुण्य और पापरूप होते है संवर तो पाप का होता है पुण्य का नहीं और निर्जरा भी पुण्य का नहीं पाप का ही करता है, पुण्य का निर्जरा स्वयं तीर्थंकर होकर भी नहीं कर पाते इसलिये पुण्य को संसार में रोकने वाला कहाँ लेकिन रोकने रोकने में भी बहुत अन्तर है, एक व्यक्ति जाते हुए बरात को रोककर स्वागत कर भेजता है वैसे ही पुण्य कार्य करता है।

प्र089 भोग आदि वस्तु बंध का कारण मानने पर दोष क्या है ?

उ0 वस्तु कभी भी बन्ध का कारण नहीं क्यों कि वस्तु से अगर कर्म बंध होने लग जाय तो संवर और निर्जरा कभी संभव नहीं क्योंकि अनादि काल से अनन्त काल वस्तु सदा शाश्र्वत्त विद्यमान रहता है उसका कभी अभाव नहीं और तीनों लोकों में ऐसा एक भी आकाश प्रदेश नहीं जहाँ बंध के निमित्त भूत वस्तु विद्यमान न हो तब सिद्ध को भी कर्म बंध होकर संसार में आना पड़ेगा ऐसा कभी नहीं होता क्रिया से कर्म बन्ध होता है और वह क्रिया राग द्वेष मोह के सदभाव ही संभव है अन्य में नहीं और सम्यग्दृष्टि एक अपेक्षा कंथचित राग रहित है अर्थात् इस क्रियाओं को न करने के कारण संवर एवं निर्जरा का कारण है, वस्तु का उपयोग करने पर निर्भर करता है वस्तु पर बंध निर्भर नहीं करता है।

प्र090 तब अन्य ग्रंथों में भोगादि वस्तु से बंध क्यों कहा ?

उ0 कारण में कार्य का उपचार करके भोगादि वस्तु को बंध का कारण कहा है, साक्षात नहीं।

प्र091 पर वस्तु का सेवन राग के अभाव में संभव है ?

उ0 नहीं पर वस्तु का सेवन रागपूर्वक ही होता है वह राग शुभ अथवा अशुभ हो सकता है जैसे-मुनिराज, तपस्वी, अहार ग्रहण करते है तभी उस वक्त शरीर धर्म का साधन समझकर प्रशस्त राग पाप को संवर के कारण एवं पुण्य बंध रूप राग अवश्य होता है, जहां बाह्य वस्तु परिणमन नियम से राग को सिद्ध करता है, इसलिये भोग उपभोग रूप क्रिया निवृत्ति के लिये ही पुण्य के फल में की आसक्ति का परिहार किया जाता है। इससे निर्जरा मानने में कोई दोष नहीं है।

प्र092 सम्यग्दृष्टि जीव भोग कैसे भोगता है ?

उ0 उदय में आये हुये द्रव्य कर्म को यह जीव जब भोगता है तब नियम से साता और असाता वेदनीय कर्म के उदय के वश से सुख और दुख अपने वस्तु के स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं, जो कि रागरहित स्वसंवेदनभाव से उत्पन्न होने वाले पारमार्थिक सुख से भिन्न प्रकार का होता है। उस उदय में आये हुये सुख या दुख को सम्यग्दृष्टि जीव भी भोगता है, किन्तु वहाँ कुछ भी भलाबुरापन न मानकर राग द्वेष किये बिना उपेक्षा बुद्धि से भोगता है, उसको पारकर जाता है-उसके साथ तन्मय होकर मैं सुखी हूँ या दुखी इत्यादि रूप से अनुभव न करता इसलिये वहां जीव स्वस्थ भाव से पाप की निर्जरा करता है जो विशिष्ट राग सद्भाव में पुण्याती पुण्य बंध करता है।

प्र093 चारित्र मोहनीय कर्म को कैसे भोगता है ?

उ0 जैसे-कोई भी चोर स्वयं कभी मरना नहीं चाहता किन्तु कोतवाल से जब पकड़ लिया जाता है और मारा जाता है तो मरण का अनुभव करता है। वैसे ही वीतराग सम्यग्दृष्टि-जीव

भी यद्यपि आत्मोत्थ सहज सुख को उपादेय मानता है और विषय सुख को हेय, फिर भी चारित्र मोहकर्म के उदयरूप कोतवाल से पकड़ा हुआ वह उस विषय सुख का अनुभव भी करता तो पुण्य के अथवा पाप के उदय में पाप कर्म की निर्जरा ही करता है।

प्र094 **समयसार में भोग किसे कहते है अथवा वीतरा सम्यग्दृष्टि क्या भोगता है ?**

उ0 समयसार में भोग कर्म के फल को कहा है और सम्यग्दृष्टि उसी का फल भोगता है, यहा अन्य वस्तुओं को भोग उपभोग शब्द से नहीं लिया है।

प्र095 **कर्म फल भोगते हुये भी बन्ध कैसे नहीं होता है ?**

उ0 जैसे मन्त्रविद्या के जानकार पुरुष विष को खाकर निर्दोष मंत्र की सामर्थ्य से मरण को प्राप्त नहीं होते है वैसे ही परम तत्वज्ञानी जीव शुभ और अशुभरूप कर्म के फल को भोगता हुआ भी वह निर्विकल्प समाधि है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञानरूप अमोघ कभी भी निष्फल नहीं होने वाले मंत्र के वल से कर्म बन्ध को प्राप्त नहीं होता है।

प्र096 **संसार शरीर भोग ये वैराग्य शक्ति के कारण कैसे होते है ?**

उ0 जैसा कोई अपने बवासीर आदि रोग को मिटाने के लिए भांग आदि मादक पदार्थ पीता है। उसमें उसकी मादकता को दबानेवाली औषधि डालकर अरुचि भाव से पीता है अत; वह उन्मत नहीं वनता है। वैसे ही परमार्थ तत्व का जानकार पुरुष पंचेन्द्रियों के विषयभूत खान पान आदि द्रव्य को उपभोग करने के समय में भी निर्विकार स्वसंवेदन से रहित होने वाले वहिरात्मा जीव की अपेक्षा से जिस जिस प्रकार के रागभाव को नहीं करता है, उस उस प्रकार का कर्म बन्ध उसके नहीं होता है। जब हर्ष विषाद आदि रूप समस्त विकल्प जालों

से रहित परम आत्म ध्यान वही है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान के बल से सर्वथा वीतराग हो जाता है उस समय नवीन कर्मबन्ध नहीं करता है, यही वैराग्य शक्ति की विशेषता है।

प्र097 ज्ञानी और अज्ञानी के भोग में क्या अंतर है ?

उ0 निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञान का धारक जीव अपने अपने गुणस्थान के योग्य खान पानादि रूप पंचेन्द्रियों के भोगों को भोगने वाला होकर भी उसका भोक्ता नहीं होता किन्तु अज्ञानी जीव उसे न सेवन करता है तभी राग भाव होने के कारण उसका सेवनेवाला अर्थात् भोगने वाला होता है।

प्र098 वस्तु के सेवन के बिना राग कैसे होता है ?

उ0 जैसे कि जिसका विवाहादि नहीं होना है अत; वह विवाहादि प्रकरण का प्राकरणिक तो नहीं है, जो कि दूसरे घर से आया हुआ पहुना आदि है फिर भी वह उस विवाहादि का काम करता है किन्तु जो प्रकरणीक है-जिसका विवाह होना है वह गीत नृत्य आदि कोई भी प्रकार का काम नहीं करता है फिर भी उन वैवाहिक कार्य के प्रति उसका राग होने से वही प्रकरणिक कहलाता है। उसी प्रकार तत्वज्ञानी जीव किसी विषय का सेवन करने वाला होकर भी वह उसका भोक्ता नहीं होता, किन्तु अज्ञानी जीव किसी वस्तु का न सेवन करने वाले होकर भी अपने राग भाव के कारण वह उसका भोक्ता बना रहता है।

प्र099 वैरागी, तत्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टि राग को कैसा जानता है ?

उ0 वैरागी सम्यग्दृष्टि जीव जानता है कि राग नाम का पौद्गलिककर्म है उसके विपाक का उदय ही मेरे अनुभव में प्रतीतिरूप से आया करता है, सो ज्ञायक स्वभाव हूँ इसमें सन्देह नहीं है।

प्र0100 भाव क्रोध किसे कहते है ?

उ0 पुद्गलकर्म रूप द्रव्यक्रोध जो इस जीव में पहले से ही बद्ध हो रहा है उसका विशेष विपाक अर्थात् फलरूप उदय होता है जो कि शान्तरूप आत्म तत्व उससे पृथग्भूत भिन्न अक्षमारूप भाव है वह भाव क्रोध कहते हैं।

प्र0101 कर्मोदय के फलस्वरूप विभाव परिणाम आपका (सम्यग्दृष्टिका) स्वभाव क्यों नहीं ?

उ0 विकार रहित परम प्रसन्न भाव ही है लक्षण जिसका ऐसे शुद्धात्म द्रव्य से भिन्न द्रव्य रूप पौदगालिक कर्म जो मेरी आत्मा में लगे हुए है उनके उदय से होने वाला यह क्रोधादिक तो औपाधिक भाव है जैसे कि डाक के कारण से होने वाला स्कटिक का काला पीलापन है। अत क्रोधादिक रूप भाव मेरा स्वभाव नहीं है। इतना नही किन्तु यह शरीर भी मेरे शुद्धात्मा का स्वंरूप नहीं है क्योंकि यह अज्ञानी है जड़ स्वरूप है और मैं अनन्तज्ञानादि गुण स्वरूप हूँ इसलिये सम्यग्दृष्टि विभाव परिणाम को अपना स्वभाव नहीं करता अर्थात समझता है।

प्र0102 वस्तु स्वभाव को जानकर सम्यग्दृष्टि क्या करता है ?

उ0 वस्तु के यर्थाथ स्वरूप को जानता हुआ जो जीव अपने आपको ज्ञायक स्वभाव मानता है और कर्म के उदय को कर्म का विपाक जानकर उसे छोड़ता है वही सम्यग्दृष्टि होता है, अर्थात् त्याग करता है।

प्र0103 जानकर त्यागने वाला सम्यग्दृष्टि जीव कौन होता है ?

उ0 यह अवस्था त्रिगुप्तिरूप परमसमाधि काल में होती है, छदमस्थ अवस्थाआएं में नहीं, अत वही पर सम्यग्दृष्टि होता है।

प्र0104 सम्यग्दृष्टि को नियम से क्या होता है ?

उ0 अपने आपके वस्तुत्व को वास्तविक स्वरूप को अनुभव करता हुआ यह जीव कर्मोदय से उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार विकारी

भावों को छोड़कर उनसे रहित होता है। इसलिये यह सम्यग्दृष्टि नियम से ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न होता है।

प्र0105 अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को क्या नहीं होता और क्या होता है ?

उ0 अविरत सम्यग्दृष्टि जीव वैराग्य युक्त नहीं होता है और न वास्तविक अनुभवरूप ज्ञानायुक्त होता है। क्योंकि वह तो कभी समायिकादि के समय शुद्धात्मा का चिंतवन मात्र कर पाता है।

प्र0106 सम्यग्दृष्टि विरागी जीव सामान्य रूप से अपने और पर के स्वभाव को कैसा जानता है ?

उ0 ज्ञानवरणादि कर्मों के उदय का फल ज्ञान को ढँकने आदि के भेद से अनेक प्रकार का श्री जिनेन्द्र भगवान् ने बतलाया है। वह कर्मोदय का प्रकार अनेक भेदरूप है वह मेरा स्वभाव नहीं है, क्योंकि मैं तो टांकी से उकेरी हुई वस्तु जैसा सदा एक सी रहती है वैसे ही सदा बने रहने वाले परमानन्दमय और ज्ञायक एक स्वभाव का धारक हूँ। इस प्रकार से सम्यग्दृष्टि विरागी जीव सामान्य रूप से अपने और पर के स्वभाव को जानता है।

प्र0107 सामान्य किसे कहते हैं ?

उ0 जिसमें विवक्षा का अभाव हो उसे सामान्य कहते हैं ऐसा नियम है।

प्र0108 आत्मा को कौन नहीं जानता है ?

उ0 जिसके हृदय में रागादि विकार भावों का स्पष्ट रूप से जरा सा लेश भी यदि विद्यमान है तो वह परमात्म तत्व को नहीं जानने वाला होने से द्वादशांगमय सम्पूर्ण शास्त्रों का पारगामी होकर भी शुद्ध बुद्धरूप एकस्वभाववाले आत्मा को नहीं जानता अनुभव नहीं करता है।

प्र0109 सामान्य को कौन नहीं जानता है ?

उ0 स्वसंवेदन ज्ञान के बल से सहजानन्दरूप एक स्वभाववाले शुद्धात्मा को नहीं जानता हुआ जब जीव और अजीव के स्वरूप को नहीं जानता अर्थात् सामान्य को नहीं जानता है।

प्र0110 सम्यग्दृष्टि भोगों की वांछा क्यों नहीं करता है ?

उ0 जो कोइ रागादिरूप विकल्प है वह तो वेदनकरने वाला अथवा अर्थात् अनुभव करने वाला है अत कर्ता है और साता के उदय से होने वाला कर्म रूप भाव रागादि विकल्प से अनुभव किया जाता है, वे दोनों ही भाव अर्थ पर्याय की अपेक्षा से अपने अपने समय में होकर नष्ट हो जाते है, क्षणिक है। अतएव वर्तमान में व आगामी काल में भी होने वाले वेद्य वेदक रूप दोनों भावों को विनश्वर जानता हुआ तत्वज्ञानी जीव उन दोनों में से किसी को कभी नहीं चाहता अर्थात् सातावेदनीय के उदय से प्राप्त भोगों की इच्छा नहीं करता।

प्र0111 वेद्य-वेदक भाव में ज्ञानी कौन है ?

उ0 संसार की इन दृश्यमान क्षणिक वस्तुओं को वेद्य अर्थात् अनुभव करने योग्य भोगने योग्य समझकर अपने आपको वेदक अर्थात् अनुभव करने वाला भोगने वाला स्थापन करना सो असम्वद्ध है, किसी भी प्रकार घटित नहीं होता। अत उस वेद्य-वेदक भाव को जो कभी नहीं चाहता स्मरण भी नहीं करता है किन्तु इन सांसारिक वस्तुओं से अत्यन्त विरक्त हो रहता है दूर हो रहता है वही विद्वान अर्थात् ज्ञानी है।

प्र0112 अध्यवसान कैसे होते है ?

उ0 वे अध्यवसान कुछ तो संसार को लक्ष्य में लेकर बिना प्रयोजन ही बंध के करने वाले रहते और कुछ वर्तमान शरीर को लक्ष्य में लेकर भोगों के निमित्त बनते है।

प्र0113 जीव भोग से भी ज्यादा पाप कैसे करता है ?

उ0 यह जीव भोगों के निमित्त तो बहुत कम पाप करता है किन्तु शालिमत्स्य के समान बिना प्रयोजन अपने दुर्विचार से घोर पाप करता है।

प्र0114 अपध्यान किसे कहते हैं ?

उ0 किसी भी प्रकार के वैर के कारण या अपने विषय साधने के राग के वश होकर दूसरों के स्त्रीपुत्रादिक का बांधना मार डालना नाक आदि छेद डालना आदि का चिन्तन करना उसको जिनशासन में प्रवीण लोगों ने अपध्यान कहा है।

प्र0115 इच्छा क्यों नहीं करना चाहिए ?

उ0 अनेक प्रकार के संकल्प विकल्पों में फंसकर जो तेरा मन नाना प्रकार इच्छाये करता रहता है, उससे तेरा प्रयोजन तो कोई सिद्ध होता नहीं मात्र पाप का संचय होता रहता है, इसलिये इच्छा नहीं करना चाहिये।

प्र0116 भोगी जीव झंझटों से कैसे छुटेगा ?

उ0 दुर्भाग्य से खाने पीने आदि के विषय में लालायति होकर जैसा तेरा मन दौड़ धूप मचाता है फिरता है वैसा ही यदि परमात्मा स्मरण में लग जाये तो फिर सारे झंझट से दूर हो जावेगा।

प्र0117 अपध्यान का क्यों त्याग करना चाहिये ?

उ0 इन दुष्ट काम भागों की वासनाओं में फंसा हुआ मनुष्य का मलिन मन नाना प्रकार की इच्छाये करता है उससे भोगों को न भोगता हुआ भी अपने उस दुर्भाव के द्वारा कर्म बन्ध करता ही रहता है इसलिये अपध्यान का त्यागकर शुद्धात्मा में लगे रहना चाहिये।

प्र0118 ''निर्विण्ण'' शब्द का क्या अर्थ है जो प्रथम दर्शन प्रतिमा में आता है ?

उ0 यहां पर ''निर्विण्ण'' शब्द है उसका अर्थ विरक्त नहीं है किन्तु

उद्विग्न अर्थात् अनासक्त लेना चाहिये अर्थात् समझना चाहिये।

प्र0119 विरक्त का क्या अर्थ है ?

उ0 विरक्त का अर्थ तो छोड़े हुए उनसे दूर रहने वाला अर्थात् त्यागी ऐसा होता है।

प्र0120 ज्ञानी जीव मिथ्यात्वादि अपध्यान को परिग्रह क्यों नहीं मानता है ?

उ0 मैं तो सहज शुद्ध केवल ज्ञान और दर्शन स्वभाव वाला हूँ। अत मिथ्यात्व व रागादिकरूप परद्रव्य पेरा परिग्रह हो जाये तो मैं अजीवपने को अर्थात् जड़पने को प्राप्त हो जाऊ, परन्तु मैं अजीव नहीं हूँ। मैं तो परमात्मास्वरूप शुद्धज्ञानमयी हूँ इसलिये यह शरीरादिक परद्रव्य मेरा परिग्रह नही है।

प्र0121 परमात्मा का स्वरूप कैसा है अथवा मेरा स्वरूप कैसा है ?

उ0 हे भव्य, तेरा स्वभाव निश्चित है, सदा एक सा रहने वाला है पर सहायता से रहित है और स्पष्ट रूप से तेरे अनुभव में आने वाला है। अर्थात् परमोत्कृष्ट आत्म सम्बन्ध सुख का संवेदन ही है स्वरूपं जिसका ऐसे स्व संवेदन ज्ञान स्वभाव के द्वारा जाना जाता है।

प्र0122 स्वसंवेदन स्वरूप ज्ञान कैसा है ?

उ0 स्वसंवेदन स्वरूप ज्ञान है वह नियत है एक है, नित्य है, अव्यभिचारों (दोषरहित) है, सदा बने रहने वाला है, वही आत्मा का पद है।

प्र0123 ज्ञानी परिग्रह किसे मानता है ?

उ0 वह कौनसा ज्ञानी है जो परद्रव्य को भी यह मेरा द्रव्य है' ऐसा स्पष्ट रूप से कहता रहे ? किन्तु कोई भी ऐसा नहीं। क्योंकि वह तो निश्चितरूप से चिदानन्द ही है एक स्वभाव जिसका

ऐसे शुद्धात्मा को ही अपना परिग्रह जानता रहता है।

प्र0124 ज्ञानी क्या सोचकर स्वभाव में स्थिर होते हैं ?

उ0 यह शरीरादिक पर द्रव्य भले ही छिद जावों भिद जावों, कोई इसे ले जावों अथवा नष्ट हो जावों, जिस किसी दशा को भी प्राप्त हो जावों तो भी यह मेरा परिग्रह नहीं है यह निश्चित है। इस प्रकार विचार कर ज्ञानी तो अपने स्वस्थ स्वभाव में रहता है।

प्र0125 सदा शाश्वत्त सुख क्या करने से मिलता है ?

उ0 हे आत्मन् ! यदि तू सुख चाहता है तो उसी आत्मानुभव रूप ज्ञान में तत्वलीन होकर रहा उसी में सदा के लिये सन्तोष धारण कर और उसी के द्वारा तृप्त हो सब इच्छाओं को छोड़ तभी सदा शाश्वत बना रहने वाला उत्तम सुख प्राप्त होगा।

प्र0126 कौन से ज्ञान से जीवको निर्वाण की प्राप्ति होगी ?

उ0 ज्ञान मति; श्रुत अवधि, मनपर्यय, केवलज्ञान के नाम से भेद होकर भी वास्तव में एक रूप ही रहता है। जैसे मेघों के द्वारा अछादान होने के तारतम्य के भेद से सूर्य प्रकाश में भेद हो जाते है वैसे ही मतिज्ञानावरणादि भेद वाले कर्म के वश से जिसमें जितने मतिज्ञान श्रुतादि भेद हो जाते है, इन लोक प्रसिद्ध पाँच भेदों द्वारा भी जो भेद को प्राप्त को नहीं होता वह पदार्थ ज्ञान सामान्य है जिसको प्राप्त करके यह जीव निर्वाण को प्राप्त होता है।

प्र0127 कायक्लेशादि रूप व्रत तपश्चरणादि मोक्ष के कारण कब है और कव नहीं ?

उ0 मत्यादि पाँच ज्ञानों के द्वारा भी जिसके भेद नहीं हो पाता है जो साक्षात मोक्ष का कारणभूत है और परमात्मपद् स्वरूप है उस पद को शुद्धात्मा की अनुभूति से शून्य केवल

कायक्लेशादि रूप व्रत तपश्चरणादि करने वाले प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वे स्वसंवेदन ज्ञान से रहित है वह मोक्ष का कारण नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि के तपश्चरणादि परंपरा से मोक्ष का कारण है।

प्र0128 ज्ञानभाव अथवा ज्ञान गुण किसे कहते है ?

उ0 "ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितं" अमृतचन्द्राचार्य के उस वचनानुसार तब छद्मस्थ आत्मा का ज्ञान, ज्ञान को ही विषय करने वाला हो जाता है उस समय उसमें अपने आपके सिवाय और किसी का भान भी नहीं रहता। तब उसको ज्ञान या ज्ञानभाव कहते हैं।

प्र0129 शुद्धोपयोग के पर्यायवाची नाम अथवा एकार्थवाची नाम कौन से है ?

उ0 स्वरूपाचरण, स्वसंवेदन, आत्मानुभव, शुद्धोपयोग, शुद्धनय आदि एकार्थवाची नाम है।

प्र0130 पुण्यरूपी धर्म को कब नहीं चाहता है ?

उ0 जो इच्छा रहित होता है, वह अपरिग्रही होता है जिसके बाह्य द्रव्यों की इच्छा होती अर्थात् बाह्य पदार्थों से उसका कोई लगाव नहीं होता इससे स्वसंवेदन ज्ञानी जीव शुद्धोपयोग रूप निश्चय धर्म को छोड़कर शुभोपयोग रूप धर्म अर्थात् पुण्य को नहीं।

प्र0131 ज्ञानी पुण्य के साथ कैसे रहता है अर्थात् व्यवहार करता है ?

उ0 ज्ञानी पुण्य रूप धर्म का परिग्रहवान न होकर, किन्तु पुण्य मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा जानकर उस पुण्य रूप से परिणमन नहीं करता हुआ तन्मय नहीं होता हुआ वह दर्पण में आये हुये प्रतिबिम्ब के समान उसका जानने वाला ही होता है।

प्र0132 ज्ञानी पाप के साथ कैसे रहता है अर्थात् पाप के प्रति उनका व्यवहार कैसा होता है ?

उ0 जिसके बाह्य द्रव्यों में बांछा नहीं वह परग्रिह रहित है। इसिलिये तत्वज्ञानी जीव विषय कषाय रूप अधर्म को, पाप का ग्राह्य न होता है यह पाप मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा जानकर पाप रूप से परिणमन नहीं करता हुआ वह दर्पण में आये हुए प्रतिबिम्ब के समान उसका ज्ञायक ही होता है।

प्र0133 ज्ञानी क्या चाहता है और क्या नहीं ? और किस लिये ?

उ0 परमतत्वज्ञानी जीव परिग्रह रहित होता है क्योंकि वह इच्छा रहित होता है, जिसके बाह्य पदार्थों में आकांक्षा नहीं होती उसके परिग्रह भी नहीं होता, यह नियम है। इसलिये परमतत्वज्ञानी जीव चिदानन्द ही है एक स्वभाव जिसका ऐसी शुद्धात्मा को छोड़कर धर्म अधर्म और आकाश आदि अंग पूर्वात्मक श्रुत में बताते हुए बाह्य और अंतरंग परिग्रह तथा देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकादि विभाव पर्यायों को नहीं चाहता है।

प्र0134 इच्छा को परिग्रह क्यों कहा है ?

उ0 जिसके बाह्य द्रव्यों में इच्छा, मूर्च्छा ममत्व परिणाम नहीं है, वह अपरिग्रहवान कहा गया है क्योंकि इच्छा अज्ञानमय भाव है।

प्र0135 अपरिग्रही किसे कहते हैं ?

उ0 जो इच्छा रहित है वह परिग्रही रहित कहलाता है। अर्थात् जिसके बाह्य पदार्थों में इच्छा, मूर्च्छा व ममत्व परिणाम नहीं है वह अपरिग्रहवान कहा गया है।

प्र0136 ज्ञानी जीव को इच्छा नहीं होती है अत उसको किसी भी प्रकार

का परिग्रह नहीं होती। वह तो निषकंच्चन होकर आत्म तल्लीन रहता है। इस पर शंका है कि ऐसा जीव इन छदमस्थों में कोन है, जिसके बिलकुल इच्छा नहीं होती हो क्योंकि गृहस्थ के अनेक प्रकार की इच्छा हर समय लगी रहती है और मुनि, त्यागी, तपस्वी के भी और नहीं तो भोजन की इच्छा तो होती है और वह आहार भी ग्रहण करते है?

उ0 मुनि तब अप्रमतरूप से (सातवेगुणस्थान स्वरूप) आत्मज्ञान में मग्न होता है उस समय उसके किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं होती है, अत वास्तव में ज्ञानी है, रही मुनि के आहार ग्रहण करने की बात तो सब वह प्रमत संयत दशा में हुआ करता है। यह आहार लेना भी शरीर को मोटा ताजा सुन्दर वनाये रखने के लिये नहीं किन्तु संयम के सम्पादन के लिये ज्ञानोपार्जन के लिये एवं ध्यान के सिद्धि के लिये ग्रहण करते हुए धर्मसाधनां रूप इच्छा होते हुए भी ममत्व न होने से अपनत्व न होने से परिग्रह न होकर अपरिग्रह ही होता क्योंकि ममत्व रूपी इच्छा को परिग्रह कहा है।

प्र0137 ज्ञानी किसमें हेयवुद्धि रखता है ?

उ0 कर्मोदय से उत्पन्न हुये भोग में स्वसंवेदन ज्ञानी जीव सदा ही वियोगवुद्धि एवं हेय वुद्धि रखता है।

प्र0138 स्वसंवेदन ज्ञान गुण किसे कहते है ?

उ0 भोग, उपभोग आदि चेतन और अचेतनात्म के जितने भी द्रव्य है उन सवके विषय मे निरालंबन रूप आत्म परिणाम है उसी का नाम स्वसंवेदन ज्ञान गुण है।

प्र0139 निदानवंध रूप विभाव परिणाम से रहित कौन होता है ?

उ0 स्वसंवेदन ज्ञानगुण के आलम्वन से जो पुरुषों ख्याति, पूजा, लाभ व भोगों की इच्छारूप निदानबंध आदि विभाव परिणाम से रहित होता है।

प्र0140 निदान से रहित होकर क्या करता है ?

उ0 निदान बंध आदि विभाव परिणाम से रहित होकर तीन लोक और तीन काल में भी अपने मन, वचन, काय तथा कृत, कारित और अनुमोदना द्वारा विषयों के सुख में आनन्द की वासना से वासित होनेवाले चित्त का त्याग कर देता है। अर्थात् विषय सुख की अभिलाषा से रहित होता है।

प्र0141 विषय वासना रूपी चित्त से रहित होकर क्या करता है ?

उ0 विषय सुख की अभिलाषा से रहित चित्तवाला होकर शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न हुये वीतराग परमानन्दसुख के द्वारा वासित अर्थात् रंजित व मूर्छित रूप में परिणत अर्थात् उसी रूप अपने मन को संतृप्त व तल्लीन बनाकर रहता है, वही जीव शुद्ध आत्मा की संवित्ति है लक्षण जिसका तथा जिसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान और केवलज्ञान का भेद नहीं है, परमार्थ नाम से कहा जाने योग्य है, मोक्ष का साक्षात कारण है तथा जो परमागम की भाषा में वीतराग धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान स्वरूप कहा जाता है और अपने ही द्वारा संवेदने योग्य शुद्ध आत्मा स्थान है ऐसे ज्ञान को परमरसी भाव से अनुभव करता है, दूसरा जीव उसका अनुभव नहीं कर सकता है।

प्र0142 आत्मानुभव करने वाला मोक्ष कैसे प्राप्त करता है ?

उ0 जैसे-परमात्म पद का अनुभव करता है उसी प्रकार परमात्मपदस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। क्योंकि उपादान कारण के समान ही कार्य हुआ करता है ऐसा नियम है।

प्र0143 कर्म रज नूतन के साथ ज्ञानी अज्ञानी कैसे रहता है ?

उ0 स्वसंवेदन ज्ञानी जीव हर्ष विषादादि विकल्पभावों की झंझट से रहित होता हुआ सभी द्रव्यों के प्रति होने वाले रागादिक विकारभावों का त्यागी होता है इसलिये कीचड़ में पड़े हुए सोने

के समान वह नवीन कर्म रज से लिप्त नहीं होता। किन्तु अज्ञानी स्वसंवेदन ज्ञान के न होने से पंचेन्द्रिय के विषयादि सभी प्रकार के परद्रव्यों में रागभावयुक्त आकांक्षायुक्त मूर्च्छावान एवं मोही रहता है इसलिए वह कीचड़ में पड़े हुए लोहे के समान नविनकर्म रज से बंध जाता है।

प्र0144 स्वसंवेदन ज्ञान तो अविरत सम्यग्दृष्टि को भी होता है ?

उ0 उसको तो अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को अपनी आत्मा का चेतन लक्षण के द्वारा परोक्ष होता है जैसा की धूम को देखकर उससे अग्नि का ज्ञान कराया जाता है वैसे।

प्र0145 सकल कर्म की निर्जरा न होने से मोक्ष कैसे होता है ?

उ0 नागफणी थूहर ही जड़ हथिनी का मूत्र, गर्भनाग सिंदूरद्रला और नाग अर्थात् सीसा धातु इनकों धोंकनी से अग्नि पर तपाने पर यदि पुण्योदय हो तो स्वर्ण बन जाता है वैसे द्रव्य कर्म तो कीट है, रागादि विभावपरिणाम कालिका है, भेदाभेद रूप, सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र नाम की परमौषधि है ऐसा जानों वीतराग विकल्प रहित समाधिरूप ध्यान है वही अग्नि है और आसन्न भव्य जीवरूप लोहा है। उस भव्य लोहे का पूर्वोक्त सम्यक्त्वादिरूप औषधि तथा ध्यानरूपी अग्नि के साथ संयोग मिला कर परमयोगी लोगों को बारह प्रकार के तपश्चरण रूप धमनी में धमना चाहिये इस प्रकार करने से जैसा लोहा स्वर्ण बन जाता है। वैसे ही मोक्ष भी हो जाता है।

प्र0146 ज्ञानी जीव की परिणती उदाहरण से स्पष्ट करिए ?

उ0 जैसे शंख अनेक प्रकार के सचित्त, अचित्त व मिश्र द्रव्य का भक्षण करता है तो भी उन वस्तुओं के खाने मात्र से अपने श्वेत स्वभाव को छोड़कर काला नहीं हो सकता उसी प्रकार ज्ञानी भी सचित, अचित्त, और मिश्र द्रव्यों का भोग करते हुये भी उस ज्ञानी राग रूप नहीं होता है।

प्र0147 लौकीक और पारमार्थीक दृष्टि में क्या अन्तर है ?

उ0 लौकीक दृष्टि में निमित्त की मुख्यता और परमार्थ दृष्टि में उपादान की मुख्यता होती है।

प्र0148 अज्ञानी जीव की परिणति कैसी है ?

उ0 जैसे कोई पुरुष अजीविका के लिए राजा की सेवा करता है तो उस सेवक को राजा नाना प्रकार की सुखदायक वस्तुयें देता है यह अज्ञानी जीव भी इसी प्रकार शुद्धात्मा से उत्पन्न होने वाले सुख से दूर होता हुआ अज्ञानी जीव भी विषय सुख के लिये कर्म रूपी राजा की सेवा करता है। अत वह पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मरूपी राजा भी उसे विपय सुख को उत्पन्न करने वाले भोगों की अभिलाषा वाले एवं शुद्धात्मा की भावना को नष्ट करने वाले रागादि परिणाम को उत्पन्न कर देता है।

प्र0149 अज्ञानी जीव का शुभ अनुष्ठान दुख कैसे उत्पन्न करता है?

उ0 जीव नवीन पुण्यकर्म वंध के निमित भोगों की इच्छामय निदान भाव से कर्म का अनुष्ठान करता है तो वह पापानुवन्धी पुण्यरूपी राजा कालान्तर में उसे भोग उत्पन्न कर देता है, परन्तु वे निदान वन्ध से प्राप्त हुए भोग रावण आदि के समान उसे अन्त में नरक को प्राप्त कराते हैं।

प्र0150 मोक्षार्थी की शुभ क्रिया कैसी होना चाहिए ?

उ0 सम्यग्दृष्टि जीव निर्विकल्प समाधि के न होने पर अशक्यानुष्ठान के रूप में विषय कषायों से वचने के नियें व्रत शक्ति करता है, किन्तु भोगों की आकांक्षा रूप निदान वन्ध के साथ उस पुण्य कर्म का अनुष्ठान नहीं करता है, वह पुण्यानुवंधी पुण्य कर्म आगे के भव में तीर्थकर, चक्रवर्ती, वलदेवादि के अभ्युदयरूप में उदय में आया हुआ भी पूर्व में भाये हुए भेद विज्ञान की भावना के वल से शुद्धात्मा की भावना

का मूलोच्छेद करने वाले भोगों की आकांक्षा रूप निदान बंध वाले ऐसे विषय सुखों को उपजाने वाले रागादि परिणाम को पैदा नहीं करता जैसे भरतेश्वर चक्रवर्ती आदि के पैदा नहीं किया।

प्र0151 निशंक किसे कहते हैं ?

उ0 सम्यग्दृष्टि जीव निशंक कहे गये है इसलिये निर्भय होते है। वे मरणादिरूप सात प्रकार के भय से रहित होते है यह निशंक का अर्थ है।

प्र0152 सात भय कौन से है ?

उ0 इहलोक, परलोक, अत्राण, अगुप्ति, मरण, वेदना और आकस्मिक यह सात प्रकार के भय है।

प्र0153 भय किसे कहते हैं ?

उ0 जिसके उदय से उद्वेग होता है उसे भय कहते है अथवा भीतिको भय कहते है। उदय में आये हुए जिन कर्म स्कन्धो के द्वारा जीव के भय उत्पन्न होता है उनकी कारण में कार्य के उपचार से भय कहते है।

प्र0154 इहलोक भय किसे कहते है ?

उ0 मेरे इष्ट पदार्थो का वियोग न हो जाये और अनिष्ट पदार्थों का संयोग न हो जाये इस प्रकार इस जन्म में क्रन्दन करने को इहलोक भय कहते है।

प्र0155 परलोक भय किसे कहते है ?

उ0 परभव में भावि पर्याय रूप अंश को धारण करने वाला आत्मा परलोक है और उस परलोक से जो कंपन के समान भय होता है उसको परलोक भय कहते है।

प्र0156 अत्राण भय (अरक्षाभय) किसे कहते है ?

उ0 जैसे कि बौद्धों में क्षाणिक एकान्त पक्ष में चित्त क्षण प्रतिसमय

नश्वर होता है वैसे ही पर्यायके नाश के पहले अंश रूप आत्मा के नाशकी रक्षा के लिये अक्षमता अत्राणभय (अरक्षाभय) कहलाता है।

प्र0157 वेदना भय किसे कहते है ?

उ0 शरीर में वात, पित्तादि के प्रकोप से आने वाली बाधा वेदना कहलाती है। मोह के कारण विपत्ति के पहले ही करुण क्रन्दन करना, मैं निरोगी हो जाऊँ, मुझे कभी भी वेदना न होवे, इस प्रकार की मूर्च्छा अथवा वार-बार चिन्तवन करना वेदना भय है।

प्र0158 अगुप्ति भय किसे कहते है ?

उ0 जिसमें किसी का प्रवेश नहीं ऐसे गढ़ दुर्गादिका नाम गुप्ति है, उसमें यह प्राणी निर्भय होकर रहता है जो गुप्त प्रदेश न हो, खुला हो उसको अगुप्ति कहते है, वहाँ बैठने से जीव को जो भय उत्पन्न होता है उसको अगुप्ति भय कहते है।

प्र0159 मरण भय किसे कहते है ?

उ0 मैं जीवित रहूँ कभी मेरा मरण न हो अथवा दैवयोग से कभी मृत्यु न हो इस प्रकार शरीर नाश के विषय में जो चिन्ता होती है वह मरण भय है।

प्र0160 आकस्मिक भय किसे कहते है ?

उ0 अकस्मात उत्पन्न होने वाला महान दुख आकस्मिक भय माना गया है जैसे कि बिजली आदि गिरने से प्राणियों का मरण हो जाता है जैसे मैं सदैव नीरोग रहूँ, कभी रोगी न होऊ इस प्रकार व्याकुलित चित्त पूर्वक होने वाली चिन्ता आकस्मिक भीति कहलाती है।

प्र0161 शंका शब्द का अर्थ क्या है ?

उ0 शंका शब्द के मुख्यता से दो अर्थ है, संदेह और भय होता

है।

प्र0162 निशंक सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ0 जो कोई कर्म बन्ध का करने वाला मोह भाव, व बाधा को उत्पन्न करने वाले, मिथ्यात्व अविरत, कषाय और शुभाशुभरूप योग इन चारों पायों को उखाड़ कर डालता है वह आत्मा की निशंक सम्यग्दृष्टि होता है।

प्र0163 इच्छा रहित सम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

उ0 जो आत्मा कर्मो के फलों में व सभी प्रकार के धर्मों में इच्छा नहीं करता है उस आत्मा को निंकाक्षित इच्छा रहित सम्यग्दृष्टि कहते है।

प्र0164 ग्लानी रहित सम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

उ0 जो चेतन आत्मा परमात्म तत्व की भावना के बल से सभी वस्तुओं के स्वभावों के प्रति जुगुप्सा ग्लानि, निन्दा या विचिकित्सा नहीं करता दुर्गन्ध के विषय में ग्लानी नहीं करता वह ग्लानी रहित सम्यग्दृष्टि माना गया है।

प्र0165 अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि किसे कहते है ?

उ0 जो चेतन आत्मा अपनी शुद्धात्मा में ही श्रद्धान, ज्ञान और आचरण, रूप निश्चयरत्नत्रयमय भावना का बल है उससे समाधि परिणामों से शुभ और अशुभ कर्मो से उपजाये हुए परिणाम स्वरूप इन बाह्य द्रव्यों के विषय में सर्वथा अमूढ़ है।

प्र0166 उपगूहन अंग धारी सम्यग्दृष्टि जीव कौन है ?

उ0 जिसने सिद्ध भगवान् की भक्ति में अपना उपभोग लगा रखा है अतएव सर्व विभाव धर्मों को ढकने वाला है वह उपगूहन अंग धारी सम्यग्दृष्टि जीव है।

प्र0167 सम्यग्दृष्टि स्थितिकरण कैसे करता है ?

उ0 जो जीव मिथ्यात्व और रागादिरूप उन्मार्ग की ओर जाते हुये अपने आप को परम उत्तम रूप योगाभ्यास के बल से अपनी

शुद्ध आत्मा की भावना स्वरूप जो मोक्षमार्ग, शिवमार्ग है उसमें निश्चलता स्थापन करता है वही जीव सम्यग्दृष्टि स्थिति करण गुण युक्त माना है।

प्र0168 वात्सलय अंग धारी सम्यग्दृष्टि कैसे होता है ?

उ0 जो कोई मोक्ष मार्ग में ठहर कर मोक्ष मार्ग के साधन करने वाले इन तीन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचरित्र रूप पाने ही भावों की अथवा व्यवहार से उस रत्नत्रय के आधारभूत आचार्य, उपाध्याय, साधु इन तीनों की भक्ति करता है उनमें धार्मिक प्रेम करता है वह सम्यग्दृष्टि वात्सल्य अंग धारी माना है।

प्र0169 सम्यग्दृष्टि जीव प्रभावना कैसे करता है ?

उ0 जो चेतन आत्मा अपने शुद्ध आत्मा की उपलब्धि स्वरूप विद्यामयी रथ पर आरुढ़ होकर मान बड़ाई पूजा-प्रतिष्ठा, लाभ तथा भोगों की इच्छा को आदि लेकर निदानवंध आदि विभावरूप परिणाम होता जो कि द्रव्य, क्षेत्रादि रूप पाँच प्रकार सांसारिक दुखों के कारण होते हैं एवं जो आत्मा के शत्रु हैं ऐसे मनोरथ के वेगों को चित्त की तरंगों को स्वस्थ भाव समभाव रूप सारथी के बल से और दृढ़तर ध्यान रूपी सारथी के वल से नष्ट कर देता है वह सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना करने वाला माना है।

प्र0170 यहाँ कौन से नय की प्रधानता से कथन किया है ?

उ0 वह निशंकितादि गुणों का जो व्याख्यान है वह निश्चय की प्रधानता से किया गया है इस व्याख्यान को निश्चय रत्नत्रय का साधक जो व्यवहार रत्नत्रय है उसमें स्थित होने वाले सराग सम्यग्दृष्टि से ऊपर भी अंजन चौरादिक की कथारूप जो व्यवहारनय है उसके द्वारा यथा संभव लगा लेना चाहिए।

प्र0171 निश्चय का कथन (व्याख्यान) करने के वाद भी व्यवहार का व्याख्यान क्यों किया ?

उ0 जैसे स्वर्ण और पाषाण स्वर्ण में परस्पर कार्य कारण भाव है वैसा ही कार्य कारण भाव निश्चय नय और व्यवहार नय में व्यवहार कारण है तो निश्चय उसका कार्य है। यह बात दिखलाया है सो जानना।

प्र0172 जिनमत का रहस्य कौन से नय से जाना जाता है ?

उ0 यदि जिनमत का रहस्य प्राप्त करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों में से किसी को मत भूलों क्योंकि व्यवहार नय को छोड़ देने से अभिष्ट सिद्धि का मूल निश्चय को भुला देने पर समुचित वस्तु तत्व ही नहीं रह पाता है।

प्र0173 निर्विकल्प समाधि कैसे होती है ?

उ0 निर्विकल्प-समाधि, शुद्धात्मा के समीचीन तन्मयरूप श्रद्धान ज्ञान और अनुष्ठान-रूप निश्चयरत्नत्रय स्वरूप होती है तथा आर्त और रौद्र भाव से रहित धर्मध्यान और शुक्लध्यानमय होती है और शुभ और अशुभ रूप बाह्य-द्रव्यों के अवलंबन से सर्वथा रहित होती है।

प्र0174 दुर्लभ (कठिण) क्या है ?

उ0 यह निर्विकल्प समाधि वास्तव में अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि साधारण निगोद से निकल एकेन्द्रियपना विकलेन्द्रियपना, संज्ञीपना, संज्ञी में भी पर्याप्तपना, मनुष्यपना, उत्तमदेश, उत्तमकुल, सुडौल शरीर इन्द्रयों की पूर्णता, रोगरहित आयु, समीचीन धर्म का सुनना, उसे विचार पूर्वक अपने मन में उतारणा और धारण करणा, भक्तिबुद्धि उस पर विश्वास क्रोधादिक कषायों को दूर करना, अनशन आदि तप की भावना का होना समाधि पूर्वक मरण होना ये सब बातें उत्तरोत्तर दुर्लभ है।

प्र0175 समाधि आदि दुर्लभ क्यों है ?

उ0 क्यों कि उपर्युक्त बातों में रूकावट डालने वाले मिथ्यात्व, विषय-कषायरूपी विकारी परिणामों की प्रबलता रहती है जिसमें ख्याति, पूजा लाभ, और भोगों कि आकांक्षा रूप निदान बंध आदि विभाव परिणाम होते रहते हैं।

प्र0176 प्रमाद क्यों नहीं करना चाहिए ?

उ0 अत्यन्त दुर्लभ है उस बोधिभाव को प्राप्त करके भी यदि मनुष्य प्रमादि बना रहे हैं और उसे हाथ से खो दे तो फिर वह बिचारा इस भयंकर संसार रूपीवन में बहुत काल तक परिभ्रमण करता ही रहेगा।

प्र0177 बंधाधिकार में कितनी गाथाएँ है ?

उ0 बंधाधिकार में छप्पन (56) गाथाएँ हैं।

प्र0178 कर्म बन्ध क्रियाओं से होता है या नहीं ?

उ0 जैसे कोई पुरूष अपनी देह में तैलादि लगाकर बहुत धूल वाले स्थान में स्थित होकर नाना हथियारों से व्यायाम करता है। वहां वह ताड़ का वृक्ष केले का वृक्ष तथा बाँस के पिण्ड इत्यादि को तोड़ मरोड़ता है, भेदता है और सचित व अचित द्रव्यों का उपघात करता है। इस प्रकार नाना प्रकार के उपकरणों द्वारा आघात करने वाले पुरूष के जो धूल या मिट्टी लगती है वह वास्तव में क्यों चिपकी है ? कि उसने तेल लगा रखा है इसलिए उसके मिट्टी चिपक रही है शेष काय चेष्टाओं से धूल चिपकना नहीं है इसी मिथ्यात्व में नाना प्रकार की चेष्टाओं में प्रवृत्त होता है वह अपने उपयोग में रागादि विकार भावों को करता हुआ प्रवर्तता है इस लिए कर्म रज से लिप्त होता है इसलिए कर्म बंध में क्रिया नहीं उसके साथ रागादि विकारी परिणाम हैं।

प्र0179 वीतराग सम्यग्दृष्टि को कर्म बन्ध क्यों नहीं होता ?

उ0 पुरूष यदि अपने शरीर में लगी हुई चिकनाहट को दूर करके अर्थात् हटाकर बहुत मिट्टी वाले स्थान में भी नाना शस्त्रों द्वारा अनके प्रकार के व्यायाम करता है। ताड़वृक्ष की जड़को, केले के वृक्ष को, बाँस के बीड़े को छेदता है भेदता है, और सचित, अचित द्रव्यों का उपघात भी करता है। इस प्रकार नाना उपकरणों के द्वारा उपघात करने वाले के भी नाना प्रकार की कायिक चेष्टा करने पर भी उसके धूली नहीं चिपकती सो क्यों नहीं चिपकती ? इस प्रकार विचार करो तो समझ में आवेगा कि उस मनुष्य ने जो तेल लगा रखा था उसी से उसके धूलि चिपकती थी काय की अन्य चेष्टाओं से नहीं चिपकती थी, सो अब वह तेल नहीं है इस लिए नहीं चिपकती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि विरत जीव भी नाना प्रकार के योगों में प्रवर्तमान होता है इसलिए अपने उपयोग में रागादिकों को नहीं करता इसलिए कर्मरज से लिप्त नही होता है।

प्र0180 बंध का कारण क्या है ?

उ0 जानाति यः स न करोति यस्तु जाना त्ययं न खलु तात्किल कर्मरागः

रागं त्वबोधमयमध्य वसायमाहुर्मिथ्यादृशः स नियतं स हि (च) बन्ध हेतुः।

अर्थात् जो है वह करता नहीं और जो करता है वह जानता नहीं है, क्योंकि कर्तापन उस कार्य के प्रति इच्छा हुए बिना नहीं होता। इच्छा रागाभाव है और राग अज्ञानमय अध्यवसान भाव है जो कि नियम से बन्ध का कारण होता है एवं वह मिथ्या दृष्टि के ही होता है, अर्थात जहाँ पर किंचित् भी इच्छा या रागभाव है वहाँ मिथ्यादृष्टिपन है ऐसा आचार्यो ने कहा है।

प्र0181 अज्ञानी कौन है ?

उ0 जो ऐसा मानता है कि मैं किसी पर जीव को मार रहा हूँ या मार सकता हूँ और मैं पर जीवों के द्वारा मारा जा रहा हूँ या मारा जा सकता हूँ अर्थात् कोई भी मुझे मार रहे है या मार सकते हैं ऐसा समझने वाला जीव अज्ञानी हैं।

प्र0182 अध्यवसान किसे कहते हैं ?

उ स्व और परका ज्ञान न होने से जो जीवकी निश्चिति होना यह अध्यवसान है।

प्र0183 अध्यवसान कितने प्रकार का है ?

उ0 अज्ञान, अदर्शन और अचारित्र रूप तीन प्रकार का है।

प्र0184 अध्यवसान के एकार्थ वाची कौन से हैं ?

उ0 बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव और परिणाम ये सब एकार्थ वाची हैं।

प्र0185 अज्ञान अध्यवसान कैसे हैं ?

उ0 जीवों का मरण उनकी आयु के क्षय से होता है ऐसा ही जिनेश्वर देव ने कहा है। जब उनकी आयु का अपहरण नहीं कर सकता, और तेरी आयु का अपहरण वे नहीं कर सकते तो कैसे तुम्हारे द्वारा उनका मरण किया गया। क्योंकि आत्मा तो ज्ञायक है इस ज्ञायकपन से ज्ञाप्ति क्रिया मात्र ही होने योग्य है हनन क्रिया नहीं इसलिए सद्रूप दृष्टि से किसी से उत्पन्न नहीं ऐसा नित्य रूप जानने मात्र ही क्रियावाला है। हनना, घातना आदि क्रियाएँ हैं वे राग द्वेष के उदय से है। इस प्रकार आत्मा और घातने आदि क्रिया के भेद को न जानने से आत्मा को भिन्न नहीं जाना इसलिए मैं पर जीव का घात करता हूँ ऐसा अध्यावसान मिथ्याज्ञान है।

प्र0186 ज्ञानी निमित्त को महत्व क्यों नहीं देता है ?

उ0 प्रत्येक प्राणी का जीवन उसकी आयु कर्म के ऊपर निर्भर है।

यदि आयु निःशेष हो चुकी है तो वह कभी जीवित नहीं रह सकता और अभी शष है तो वह किसी का मार नहीं सकता क्योंकि कोई भी किसी की आयु हड़प नहीं सकता, वह तो उपयोग के द्वारा ही समाप्त होगी। हाँ उसका उपभोग दो प्रकार से होता है उदय से और उदीरणा से उदये से आयु का उपभोग होना समुचित मरण हैं और उदीरणा होना उपभोग होना समुचित मरण है और उदीरणा होना उपभोग से आकाल मरण कहलाता है। परन्तु आयु का उपभोग होकर उसकी समाप्ति होना ही चाहिए तभी मरण होगा अन्यथा नहीं। रही निमित्त की बात तो, निमित्त मिलने पर किसी की मृत्यु नहीं होती तो किसी की साधारण निमित्त से भी मृत्यु हो जाती है। जैस तलवार की चोट लगने पर भी नहीं मरता वह साधारण चाकू की चोट से मरता है। अतः ऐसे निमित्त को ज्ञानी महत्व नहीं देता।

प्र0187 निमित्त का महत्व न होने से हम कुछ भी कर सकते हैं किसी को भी मारों कोई दोष नहीं ?

उ0 कुछ भी क्यों करते रहे। करना तो अज्ञान भाव है बंध करने वाला है। उसके स्थान पर यों कहों की कुछ भी न करे निर्विकल्प समाधि में लगकर आत्मतल्लीन होकर नवीन बन्ध न होने से ज्ञानी कहलाने के अधिकारी बने रहें उस अवस्था में चाहे कुछ भी हो हमारा उसमें क्या चारा है यदि कोई मरता है तो अपनी आयु की समाप्ति पर और कोई जीवित है तो आयु की समाप्ति पर और कोई जीवित है तो अपने आयु के वल पर क्योंकि हमारा तो उधर उपयोग ही नहीं है। परन्तु समाधि से च्यूत होने पर यदि वहां विकल्प करना चाहिए। जैसा कि बालि मुनि ने या विष्णु कुमार मुनि किया था ताकि कर्म बधं भी हो तो वह शुभ हो अनन्त संसार के कारण भूत

अशुभकर्म बन्ध से बच जावे।

प्र0188 सुख दुख का कर्त्ता कौन है ?

उ0 जो कोई अपने मन में ऐसा मानता है कि मैं इन जीवों को दुखी या सुखी करता हूँ या कर करता हूँ यह अहंकार रूप परिणाम नियम से अज्ञान भाव है क्योंकि अपने अपने कर्मोदय (साता असाता रूप) निमित्त से ही सब जीव सुखी या दुखी होते हैं ऐसा देखने में आ रहा है। तू उनको कर्म देता नहीं तब तेरे द्वारा वे प्राणी कैसे सुखी या दुखी किये गये एवं वे सब जीव तुझे कर्म तो देते नहीं है फिर उन्होंने तुझे दुखी सुखी किया यह भी कैसे कहा जाता है अर्थात् नहीं।

प्र0189 झूठ अथवा मिथ्या क्या है ?

उ0 जो कोई मारता है अथवा दुखी होता है वह सब अपने कर्म के उदय से ही होता है अतः मैंने अमुक को मार दिया या अमुक को दुखी कर दिया यह तेरा विचार है आत्मन! क्या झूठा नहीं है ? अपितु झूठा ही है तथा जो जीव नहीं मरता है या दुखी नहीं होता है वह भी अपने कर्मोदय के द्वारा ही होता है। ऐसा स्पष्ट है, इसलिए मैंने उसे नहीं मरने दिया अथवा मैंने उसे दुखी नहीं होने दिया इस प्रकार का विचार हे आत्मन! क्या झूठ नहीं है। अर्थात् झूठा है। मिथ्या है।

प्र0190 बहिरात्मा शब्द के दो अर्थ कौन से हैं ?

उ0 1. बाह्य शरीर पर ही है आत्मबुद्धि जिसकी। 2. दूसरा बाह्य अर्थात् आत्मा से अतिरिक्त इन दृश्य मान वस्तुओं पर मन है जिसका ऐसे दो भेद हैं।

प्र0191 दो प्रकार के मिथ्या दृष्टि कौन से हैं ?

उ0 पहला मिथ्या अर्थात् झूठी या उल्टी है दृष्टि अर्थात् श्रद्धान जिसकी वह मिथ्यादृष्टि। दूसरा मिथ्या अर्थात् विचारधारा

जिसकी वह मिथ्या दृष्टि है।

प्र0192 समयसार में कौन से मिथ्यादृष्टि को लक्ष्य कर कहा है ?

उ0 समयसार में दूसरा मिथ्यादृष्टि अर्थात् आचरण रूपी विचारधारा में जो गलत मान्यता है उसी जीव को संबोधन किया है। जिनकी श्रद्धा ठीक है लेकिन आचरण ठीक नहीं है।

प्र0193 किसका कुछ भी काम नहीं है ?

उ0 आत्मन्! मैं इन जीवों को सुखी या दुखी करता हूँ या कर सकता हूँ इस प्रकार की बुद्धि यह तेरी मूढ़बुद्धि है जो कि तुझे स्वस्थभाव से दूर रखकर तेरे शुभाशुभ कर्मों का बन्ध करने वाली है और इसका कुछ भी कार्य नहीं है।

प्र0194 हिंसा किसे कहते हैं ?

उ0 किसी जीव को मारों या न मारो परन्तु जहाँ किसी को मारने का विकल्प हुआ कि उस विकल्प परिणाम से हिंसा होकर कर्मों का बधं होता ही है।

प्र0195 पुण्य और पाप का बंध कैसे होता है ?

उ0 जिस प्रकार हिंसा के विषय में किया हुआ विचार पाप-बन्ध का कारण होता है। उसी प्रकार झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के विषय में किया हुआ विचार भी पाप-बन्ध का कारण है, उसी प्रकार अहिंसा के विषय में किया हुआ विचार पुण्य बंध करने वाला है वैसे ही सत्य बोलेन, चोरी ने करने; ब्रह्मचर्य पालने और अपरिग्रह के विषय का विचार भी पुण्य के बधं को करने वाला है।

प्र0196 आचार्य श्री बतला आये हैं कि, मात्र सम्यग्दर्शन होने पर किसी भी प्रकार का बधं नहीं होता और महाव्रत अवस्था में भी पुण्यबन्ध होता है सो कुछ समझ में नही आया ?

उ0 हे भाई जहाँ आचार्य श्री ने सम्यग्दृष्टि को निर्बन्ध कहा है

वहाँ केवल वीतराग सम्यग्दृष्टि को लेकर कहा जैसा कि "चत्वारि वि पापे" इत्यादि गाथा से सुस्पष्ट है। अविरत सम्यग्दृष्टि सराग सम्यग्दृष्टि। आदि के बन्ध उनके रागानुसार होता ही है, क्योंकि राग ही बन्ध का कारण है।

प्र0197 **आपने कहा सो ठीक परन्तु महाव्रतों से भी पुण्य बंध होता है यह कैसे ? क्यों कि फिर जो बंध नहीं करना चाहता वह क्या व्रत छोड़ दें ?**

उ0 हे भाई! महाव्रतों के दो रूप होते हैं- 1. सत्प्रवृतित्त रूप 2. निवृत्तिरूप। जैसे कि हिंसा करना या किसी को भी कष्ट देना यह पाप है, अशुभ बन्ध का कारण है किन्तु हिंसा नहीं करना अर्थात् सभी के सुखी होने की भावना करना यह सतप्रवृत्तिरूप महाव्रत है यह पुण्य बंध करने वाला है और इसी का सम्पन्न रूप किसी से भी डरने डराने रूप भय संज्ञा से रहित स्वयं निर्भय होना यह पुण्य और पाप इन दोनों से भी रहित। किसी की भी बिना दी हुई वस्तु लेना सो चोरी पाप, और उसका त्याग किन्तु श्रावक के द्वारा भक्ति पूर्वक उचितरूप से दिया हुआ शुद्ध आहार ग्रहण करना सो पुण्य और आहार संज्ञा से रहित होनो सो पुण्य व पाप इन दोनों से भी रहित। व्यभिचार तो पाप तथा स्त्री त्याग रूप ब्रह्मचर्य सो पुण्य, किन्तु मैथून-संज्ञा रहित होना यह पुण्य और पाप से रहित। इसी प्रकार परिग्रह पाप, परिग्रह त्याग पुण्य किन्तु परिग्रह संज्ञा नहीं होना सो शुद्ध रूप इस प्रकार महाव्रतों का पूर्व प्रारम्भात्मक रूप शुभ किन्तु उन्हीं का ही अपर रूप जो कि पूर्णतय उदासीनतामय एवं चारों संज्ञाओं से भी रहित होता है वह शुद्ध अतः अबन्ध कर होता है ऐसा जानना।

प्र0198 **वस्तु बन्ध का कारण क्यों नहीं है ?**

उ0 जीवों के रागादि रूप से प्रसिद्ध होने वाला विकारी भाव इन

पंचेन्द्रियों के विषय भूत चेतन और अचेतनात्मक बाह्म वस्तुओं के आश्रय से होता है। फिर भी वह वस्तु बंध का कारण नहीं होता। क्योंकि बंध तो वीतराग परमात्मतत्व से भिन्नता रखने वाला रागादिरूप अध्यवसानभाव विकारी परिणाम से होता है, वस्तु के साथ में बन्ध का अन्वय व्यतिरेक पूरी प्रकार नहीं बैठता, उसमें व्यभिचार (दोष) आता है, क्योंकि जहाँ बाह्म वस्तु हो वहां बन्ध भी अवश्य हो इस प्राकर तो अन्वय और जहां वस्तु न रहे वहां बन्ध भी न होवे इस प्रकार का व्यतिरेक भी नहीं पाया जाता। जैसे एक संयमी यत्नाचार से चल रहा है वहां सहसा टकराकर कोई जीव मर गया तो वहाँ बधं होने पर भी संयमी के बंध नहीं इसी प्रकार किसी को मारने के लिए किसी ने तलवार चलाई किन्तु उसके लगी नहीं वह बच गया तो वध तो नहीं हुआ फिर भी उस तलवार चलाने वाले के कर्म बंध हो ही गया।

प्र0199 **वस्तु बन्ध का कारण नहीं तो उसका त्याग क्यों करें ?**

उ0 रागादिरूप अध्यवसानभाव को न होने देने के लिये बाह्म वस्तु के त्याग की आवश्यकता है पंचेन्द्रियों की विषयभूत बाह्म वस्तु के होने पर ही अज्ञान भाव के कारण रागादिरूप अध्यवसान भाव होते हैं, उस अध्यवसान भाव से नूतन कर्म बन्ध होता है। इस प्रकार परम्परा से बाह्म वस्तु भी कर्म बन्ध का कारण होती, किन्तु साक्षात बाह्म वस्तु ही बन्ध का कारण होती हो ऐसा नहीं है अपितु वस्तु बन्ध का सम्बन्ध तो अध्यवसान ही है।

प्र0200 **बाह्म वस्तु का त्यागने पर रागादि परिणाम कैसे नहीं होते हैं ?**

उ0 विकारी भाव बाह्म वस्तु के आलम्बन से ही होता है। जैसे कि सुभट है तो उसको मारने या बचाने का विचार हो सकता

है किन्तु बांझ के पुत्र को मारने या बचाने का विकल्प नहीं हो सकता क्योंकि वह है ही नहीं। जब बाह्य वस्तु का आलम्बन लेकर ही विकारी भाव होता है तब उस विकारी भाव से बचने के लिए छद्मस्थ को बाह्य वस्तु का त्याग करना भी परमावश्यक है।

प्र0201 बन्ध से छुड़ाना अथवा बन्धन में डालने वाला कौन है ? अर्थात् इष्ट अनिष्ट का संयोग कौन कराता है ?

उ0 मैं इन जीवों को दुखी या सुखी कर रहा हूँ बांध रहा हूँ या छुड़ा रहा हूँ यह जो तेरी बुद्धि है वह निरर्थक है, कोई भी प्रयोजन सिद्ध करने वाली नहीं है, यह स्पष्ट है इसलिए यह मिथ्या है झूठी है व्यर्थ है। क्योंकि जब तक उन जीवों को साता वेदनीय तथा असाता वेदनीय का उदय न हो तब तक तेरे विचार मात्र से उनको सुख या दुख नही हो सकता है।

प्र0202 अध्यवसान क्रियाकारी क्यों नही होता ?

उ0 जब कि, सब संसारी जीव अपने में होने वाले मिथ्यात्वादि रागादि अध्यवसान का निमित्त लेकर ही नवीन कर्म के बन्ध से जकड़ लिये जाते हैं ऐसा नियम है, शुद्धात्मा के समीचीन श्रद्धान ज्ञान, चरित्र रूप निश्चयरत्न त्रय ही है लक्षण जिसका उस मोक्षमार्ग में स्थित होने पर अर्थात आत्मा ध्यान में तल्लीन होकर मुक्त हो सकते हैं तब तू वहां क्या कर सकता है ? कुछ भी नहीं अपितु तेरा विचार व्यर्थ ही ठहरता है।

प्र0203 पाप का बन्ध कैसे करता है ?

उ0 हे भोले प्राणी! यदि जीव अपने ही पाप कर्म के उदय से दुखी होते हैं एवं तुम जीवों के विषय में कुछ कर ही नहीं सकते तो फिर मैंने इन जीवों को मन से, वचन से, काय से, और शस्त्रों के द्वारा भी दुखी कर सकता हूँ या कर रहा हूँ यह जो तेरी बुद्धि है वह झूठी है प्रत्युत (विपरीत) ऐसी बुद्धि के

द्वारा स्वस्थ-भाव सहज निराकुल आत्माभाव से च्यूत होकर तू पाप बंद ही करेगा।

प्र0204 **अगर कोई किसी को दे नहीं सकता मार नहीं सकता तो गृहस्थ को दया करणा, अहारादिदान देने का उपदेश क्यों दिया है ?**

उ0 यहां पर गृहस्थ धर्म का उपदेश न देकर मुनि धर्म का उपदेश दिया है मुनि धर्म में आत्मानुभव मुख्य होता है। जिसने सर्व प्रकार का परिग्रह त्यागकर महाव्रत धारण कर लिया फिर भी मैं अमुक को मार रहा हूँ या बचा रहा हूँ इसी विचार से उलझा रहा तो उस जीव को लक्ष्य में लेकर आचार्य महाराज कहते हैं कि तेरे इस विचार मात्र से कोई भी जीव सुखी दुखी नहीं होता। सुखी दुखी होना तो उसके शुभाशुभ कर्मोदय के अनुसार है तब व्यर्थ ही इस प्रकार के संकल्प विकल्प में फंस रहा है तुझे तो इन सब प्रपंचों से दूर हठकर अपने शुद्ध आत्मा के ध्यान में लगकर अपने पूर्व कर्मो की निर्जरा करने का उपदेश है गृहस्थ के योग्य कार्य की यहां अपेक्षा नहीं।

प्र0205 **अध्यवसान से पर द्रव्य को अपना कैसे मानता है ?**

उ0 उदय में आये हुए नरकगति आदि कर्म वश से यह जीव नारक, तिर्यन्य, मनुष्य और देवरूप अवस्थाओं को जो कि कर्मजनित अवस्थायें हैं उनको अपने आप के साथ लगाकर अपना लेता है अपनी कर लेता है। अर्थात् निर्विकाररूप जो परमात्मतत्व उसके ज्ञान से भ्रष्ट होता हुआ वह उदयगत कर्म से उत्पन्न विभाव रूप परिणामों को मैं नारकी हूँ इत्यादि रूप से अपने ऊपर लाद लेता है तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीव अजीव, लोक और आलोक रूप जो ज्ञेय पदार्थ हैं उनको भी अपनी परिच्छिति करने के विकल्परूप अध्यवसान के द्वारा अपने आप से जोड़ करके अपना लेता है।

प्र0206 तपोधन किसे कहते हैं ?

उ0 निश्चय से यह आत्मा शरिरादि परद्रव्य से भिन्न हैं किन्तु जिस मोहके प्रभाव से यह अपने आपको परद्रव्य के साथ सम्बन्ध जोड़ता है वह मोह भाव जिसके नहीं है वहीं तोपधन है।

प्र0207 शुभाशुभ कर्म बन्ध कौन नहीं करते हैं ?

उ0 अध्यवसान तथा और भी इस प्रकार के अध्यवसान भाव जिनके नहीं है वे मुनि लोग ही शुभ अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों से नहीं लिपते बंधते नहीं।

प्र0208 गृहस्थ अध्यवसान रहित होता है क्या ?

उ0 नहीं! गृहस्थ जब मुश्किल से पाप से छूट नहीं पाता तो अशुभ से परिहार मुनि को भी कठिनाइयों से दूर होते हैं गृहस्थ को नहीं इसलिए बंधाधिकार गाथा 7 में मुनि कहकर विधीत्मक गृहस्थ का निषेध किया है।

प्र0209 -ह्दय से आत्मा को कब तक नहीं जानता हैं ?

उ0 जब तक यह जीव शरीर पुत्र स्त्री आदिक बाह्य वस्तुओं के विषय में ये सब मेरे हैं इस प्रकार का तो संकल्प और उन्हें लक्ष्य में लेकर प्रसन्नता तथा अप्रसन्नतारूप विकल्प को मन में करता है तब तक यह जीव अनन्त ज्ञानादि स्वरूप आत्मा को ह्दय से नहीं जनता है।

प्र0210 आत्मोपलब्धि कितने प्रकार की है ?

उ0 आत्मोपलब्धि तीन प्रकार की है।

1. आगामिक आत्मोपलब्धि 2. मानसिक आत्मोपलब्धि 3. केवलात्मोपलब्धि।

प्र0211 आगमिक आत्मोपलब्धि किसे कहते हैं ?

उ0 गुरू की वाणी में आत्मा का स्वरूप सुनकर उस पर विश्वास ले आना यह आगमिक आत्मोपलब्धि है।

प्र0212 मानसिक आत्मोपलब्धि किसे कहते हैं ?

उ0 आत्मा के शुद्ध-स्वरूप को मन से स्वीकार करना अर्थात् मन को तदनुकूल परिणाम लेना यह मानसिक आत्मोपलब्धि है।

प्र0213 केवलात्मोपलब्धि किसे कहते हैं ?

उ0 केवल ज्ञान हो जाने पर प्रत्यक्षरूप से आत्मा की प्राप्ति यह केवलात्मोपलब्धि है।

प्र0214 समयसार में कौन से आत्मोलब्धि से प्रयोजन हैं ?

उ0 यहां पर मानसिक आत्मोपलब्धि की बात है जहां पर श्रद्धा के साथ आचरण भी तदनुकूल होता है। जैसी कथनी वैसी करनी की वात है। जहां पर श्रद्धा के साथ-साथ मानसिक आत्मोपलब्धि के समय स्वयं में भी हर्ष विषदादि विकारी भावों के अभाव होता है अतः शुभ अशुभ किसी भी नूतनकर्म बन्द का सद्भाव नहीं होता अतः इस प्रकरण में वही महर्षियों को स्वीकार्य है अर्थात् समयसार में प्रयोजन हैं।

प्र0215 बुद्धि किसे कहते हैं ?

उ0 'वोधनं' अर्थात् जानना मात्र सो बुद्धि है।

प्र0216 व्यवसाय किसे कहते हैं ?

उ0 'व्यवसायनं अर्थात् जानने मात्र के रूप में सो व्यवसाय हैं।

प्र0217 अध्यवसान किसे कहते हैं ?

उ0 'अध्यवसानं' अर्थात् समझ लेना अध्यवसान है।

प्र0218 मति किसे कहते हैं ?

उ0 'मननं' अर्थात् मान लेना, स्वीकार करना सो मति कहते हैं।

प्र0219 विज्ञान किसे कहते हैं ?

उ0 जिसके द्वारा जाने सो विज्ञान हैं।

प्र0220 चित्त किसे कहते हैं ?

उ0 'चिन्तन' अर्थात् स्मरण करना वह चित्त है।

प्र0221 भाव किसे कहते हैं ?

उ0 ‘भवनं अर्थात् चेतना का होना सो भाव हैं।

प्र0222 परिणाम किसे कहते हैं ?

उ0 ‘परिणामनं’ चेतना का रूपान्तर होना सो परिणाम हैं।

प्र0223 व्यवहार नय क्यों हटाया जाता है ?

उ0 हे आत्मन! अपर्युक्त व्यवहार नय जो कि पराश्रित हैं वह शुद्ध द्रव्य के आश्रित होने वाले निश्चय नय से हटा देने योग्य हैं ऐसा तुम समझो, क्योंकि निश्चयनय को आश्रय लेने वाले उसमें लीन रहने वाले मुनि लोग ही निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

प्र0224 व्यवहार नय किनको प्रयोजन वान नहीं है ?

उ0 यद्यपि व्यवहारनय निश्चयनय का साधक है इसलिए प्रारंभ में प्रथम सविकल्प दशा में प्रयोजन वान हैं। उसे प्राप्त करना आवश्यक है फिर भी जो लोग विशुद्धज्ञान दर्शनरूप जो शुद्धात्मा उसमें स्थित है, चिगते नहीं है, उनको व्यवहारनय से कोई प्रयोजन नहीं होता।

प्र0225 आजकल तो निर्विकल्प समाधि नहीं होती है ? इसलिए मुनि नहीं बनाना चाहिए ?

उ0 कौन कहता है कि आजकल निर्विकल्प-समाधि नहीं हो सकती है ? विकल्प भी दो प्रकार के होते हैं :-1 ध्येय-ध्याता आदिरूप विकल्प 2. इष्ट अनिष्टादिरूप विकल्प। जहां मैं ध्यान करने वाला हूँ और अमुक अर्हन्तादि का ध्यान कर रहा हूँ इस प्रकार का ध्याता और ध्येय आदि का विकल्प न हो जैसा ऐसा एकाकार ध्यान जिसको आगम भाषा में शुक्लध्यान कहते हैं वह तो उत्तम संहनन वाले के ही होता है अतः इस समय नहीं हो सकता है किन्तु जहां पर मेरा और पराया अथवा यह अच्छा और यह बुरा इस प्रकार के आर्तरोद्र

भावात्मक संकल्प विकल्प न होने पावे ऐसा धर्म ध्यान तो हो सकता है। इसलिए धर्मध्यान युक्त मुनि भी निर्वाण को प्राप्त होते हैं, निरर्थक नहीं हैं।

प्र0226 धर्मध्यान से निर्वाण कैसे होता है ?

उ0 श्री कुंद कुंद स्वामी कहते हैं।

'अज्जवितिरयण सुद्धा, अपा झाऊण जांति सुरलोए।

लोयंतिय देवतं, तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।।

अर्थात आज भी ऐसे जीव हैं जिसका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय निर्दोष व शुद्ध है अतः वे अपनी आत्मा का ध्यान करके उसके बल पर यहाँ से ब्रह्मस्वर्ग में जाकर लोकांतिक देव हो जावें और वहाँ से आकर मनुष्य हो मुनि बनकर उसी भव से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र0227 व्रत, तपश्चरण आदि करने पर भी शुद्धात्म तत्व उपादेयभूत श्रद्धा कौन से जीव को नहीं होती है ?

उ0 श्री जिन भगवान् के द्वारा बताये हुए व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तपश्चरण आदि को मिथ्यात्व तथा कषाय का मन्द उदय होने से, करते रहने पर भी अभव्य जीव अज्ञान तथा मिथ्याजृष्टि बना रहता है, इसलिए शुद्धात्म तत्व उपादेय है। इस प्रकार का श्रद्धान उसके नहीं होता है।

प्र0228 अभव्य जीव को कितने अंग का ज्ञान होता है ?

उ0 मोक्ष का जिसको श्रद्धान नहीं है। अर्थात् अशुद्ध आत्मा भी शुद्ध हो सकती है इस प्रकार की आत्म विशुद्धि पर जिसका विश्वास नहीं जमता है ऐसा अभव्य जीव यद्यपि ख्याति, पूजा लाभादि के लिये ग्यारह अंगश्रुत का अध्यन करता है अर्थात ग्यारह अंग तक ज्ञान होता है।

प्र0229 अभव्य जीव धर्म को क्यों धारण करता अर्थात मुनि क्यों बनता

है ?

उ0 अभव्य जीव श्रद्धान करता है उसे ज्ञान के द्वारा प्रतीति में लाता है, उसकी जानकारी प्राप्त करता है विशेष रूप से विश्वास लाता है तथा उसे छूता है अर्थात् आचरण में लाता है लेकिन कौन से धर्म को जो अहमिन्द्रादि का कारण होने से धर्म भोगों का विशेष रूप से साधन हैं उस पुण्य रूप धर्म को भोगों की अभिलाषा से ही धारण करता है।

प्र0230 अभव्य कौन से धर्म को नहीं मानता हैं ?

उ0 शुद्धात्मा की संविति हैं लक्षण जिसका ऐसा जो निश्चय धर्म जो कि कर्मों के नाश करने में निमित्त होता है उस धर्म को नहीं मानता, नहीं जानता है।

प्र0231 व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप क्या है ?

उ0 आचरांग, सूत्रकृतांग आदि ग्यारह अंग रूप जो शब्द शास्त्र हैं वे ज्ञान का आश्रय होने के कारण व्यवहार से सम्यग्यान हैं। जीवादि स्वरूप नवपदार्थ जो श्रद्धान के विषय है वे ही सम्यक्त्व का आश्रय होने से, कारण होने से व्यवहारनय से चारित्र है। इस प्रकार व्यवहार माक्षमार्ग का स्वरूप है।

प्र0232 निश्चय मोक्षमार्ग का क्या स्वरूप है ?

उ0 अपनी शुद्धात्मा ही ज्ञान का आश्रय है, निमित्त है इसलिए निश्चयनय से मेरी आत्मा ही सम्यग्ज्ञान है मेरी शुद्धात्मा ही सम्यग्दर्शन का आश्रय है हेतु है इसलिए निश्चयनय से वही सम्यग्दर्शन है शुद्धात्मा ही चारित्र का आश्रय है, हेतु है इसलिए निश्चय से वही सम्यक्यचारित्र है। शुद्धात्मा ही रागादि के परित्याग स्वरूप जो प्रत्याख्यान उसका आश्रय है, कारण है इसलिए निश्चयनय से वही प्रत्याख्यान है। शुद्धात्मा के स्वरूप की उपलब्धि के वश से हर्ष विषादादि का न होना ही लक्षण जिसका ऐसे संवर का आश्रय होने से निश्चय नय से वही

संवर है। शुभ और अशुभरूप जो चिन्ता उसका निरोध करके रखना वही है लक्षण जिसका ऐसा परमध्यान शब्द से कहा जाने योग्य है उसका आश्रय होने से, हेतु होने से शुद्धात्मा ही परम योग है इस प्रकार स्वशुद्धात्मा के ही आश्रय होने से यह निश्चय मोक्षमार्ग है। ऐसा समझना चाहिए।

प्र0233 निश्चय और व्यवहार मार्ग से मोक्ष कब होता है ?

उ0 निश्चय मोक्षमार्ग तो प्रतिषेधक है और व्यवहार मोक्षमार्ग (निश्चय मोक्षमार्ग से) प्रतिषेध्य (निषेध) है। क्योंकि जो निश्चय मोक्षमार्ग में स्थित है उनको नियम से मोक्ष होता है, किन्तु व्यवहार मोक्षमार्ग में स्थित होने वाले को मोक्ष होता भी है और नहीं भी होता है।

प्र0234 कौन से व्यवहार मार्ग से मोक्ष होता है ? किससे नहीं होता हैं ?

उ0 जो जीव मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षय होने से शुद्धात्मा को उपादेय मानकर वह व्यवहार मोक्षमार्ग में प्रवृत होता है तब तो मोक्ष होता है और यदि उन्हीं सात प्रकृतियों के उपशमादि न होने पर शुद्धात्मा को उपादेय न मानकर ही वह व्यवहार मोक्षमार्ग में प्रवृत हुआ है तो उसके फिर मोक्ष नहीं हो सकता है।

प्र0235 भव्य कौन होता है ?

उ0 जो जीव शुद्धात्मा को उपादेय मानता है उसका विश्वास करता है अर्थात् जो कोई रागद्वेष मिटाना चाहे तो मिटाकर सदा के लिए वीतराग रूप बन सकता है, तो उसके मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का उपशमादि भी अवश्य होता है वह भव्य जीव होता है।

प्र0236 ज्ञानी को आहार कृत बन्ध क्यों नहीं होता है ?

उ0 आहार लेने के विषय में मान, अपमान, सरस, निरस आदि

की चिन्तारूप रागद्वेष न करने के कारण आहार लेते हुए भी ज्ञानी जीव के आहार कृत बन्ध नहीं होता है।

प्र0237 **ज्ञानी को अधः कर्म दोष क्यों नहीं लगता है ?**

उ0 स्वयं अपने बनाने से सम्पन्न हुआ आहार अधः कर्म शब्द से कहा जाता है। उसी को प्रथम लेकर कहते हैं कि अधकर्मादिक जो दोष है वह सब शुद्धात्मा से पृथग्भूत आहाररूप पुद्गल द्रव्य के पकने पकाने आदि क्रियारूप होते हैं अतः निश्चय से ज्ञानी उन्हें कैसे कर सकता है ? एंव किसी दूसरे गृहस्थ के द्वारा उन सबकी वह अनुमोदना भी कैसे कर सकता है। कभी नहीं कर सकता है। क्योंकि ज्ञानी को तो निर्विकल्प समाधि होती है उसके होने पर उसके आहार विषयक मन, वचन, काय और कृत, कारित और अनुमोदन का अभाव होने से दोष नहीं लगता है।

प्र0238 **नव कोटि पूर्वक ही कर्म का क्योंबन्ध होता है ?**

उ0 त्रिकाल सम्बधि कार्यों से मन वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनरूप नव कोटितया जो दूर है ऐसा जीव भी दूसरे के सुख दुख का निमित्त लेकर यदि कर्म बांधता होवे तब तो किसी को भी मुक्ति नहीं हो सकेगी। अतः जो ज्ञानी जीव है अर्थात् जो आत्म समाधि में लीन है उनके आहार ग्रहण करने से होने वाला बंध नहीं होता। क्योंकि नव कोटि रूप प्रपंच से ही दूर होते है।

प्र0239 **बंध के कारणभूत रागादिक परिणाम कैसे होते है ?**

उ0 जैसे स्फटिक मणि जो कि निर्मल होता है वह किसी बाहरी लगाव के कारण बिना अपने आप लाल आदिरूप परिणमन नहीं करता है किन्तु जपा पुष्पादि बाह्य दूसरे दूसरे द्रव्य के कारण वह लाल आदि बनता है उसी प्रकार ज्ञानी जीव भी उपाधि से रहित अपने चिच्चमत्कार रूप स्वभाव से वह शुद्ध

ही होता है जोकि जपा पुष्प स्थानीय कर्मोदय रूप उपाधि के बिना रागादिरूप विभावों के रूप में परिणमन नहीं करता है। हाँ जब कर्मोदय से होने वाले रागादिरूप-दोषभावों से अपनी सहज स्वच्छता से च्यूत होता है तब रागी बनता है।

प्र0240 ज्ञानी जीव क्या नहीं करता और क्या करता है ?

उ0 रागादि दोषों से रहित जो शुद्धात्मा उसके स्वभाव से पृथक रहने वाले राग द्वेष मोहभावों को तथा किसी भी प्रकार के कषाय भाव को क्रोधादाकि रूप परिणाम को ज्ञानी जीव नहीं करता, क्योंकि वह कर्मोदय रूप सहकारी कारण के बिना अपने आप ही अपने उन विकार भावों का कर्ता शुद्ध भाव के द्वारा नहीं हो सकता अर्थात् शुद्ध भाव का ही कर्ता है।

प्र0241 ज्ञानी जीव अज्ञानी होता है या नहीं ? होता है तो कब होता है ?

उ0 रागद्वेषादि कषायरूप द्रव्यकर्म के उदय में आने पर अपने सहज भाव से चिगे हुए इस जीव को उस कर्मोदय के निमित्त से जो आत्मगत् रागादि भाव अर्थात् विकारी परिणाम होते है, उनसे मैं रागादिक रूप हूँ इस प्रकार के अभेद को लिए हुए परिणमन करता हुआ अर्थात् रागद्वेषरूप होता हुआ वह फिर से भावी रागादिरूप परिणामों के उत्पादक द्रव्यकर्मों का बंध करने लग जाता है। इस प्रकार वह अज्ञानी जीवन बनता है।

प्र0242 राग-द्वेष शब्द से क्या लेना चाहिये ?

उ0 मोह शब्द से दर्शन मोह जो कि मिथ्यात्व का जनक है उसे लेना चाहिये और राग द्वेष शब्द से क्रोधादि कषायों के उत्पन्न करने वाले चारित्र मोह को समझना चाहिये।

प्र0243 चारित्र मोह में राग और द्वेष कौन से है ?

उ0 कषाय वेदनीय नाम वाले चारित्र मोह के भीतर क्रोध और

मान ये दोनों द्वेष चारित्र मोह के भीतर क्रोध और मान ये दोनों द्वेष के उत्पादक होने से द्वेष के अंग है और माया और लोभ ये दोनों राग जनक होने से रागारूप है। इसी प्रकार नोकषाय वेदनीय नामक चारित्र मोह में स्त्रीवेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति ये पाँच नोकषाय रागोत्पादक होने से राग में तथा शेष अरति, शोक, भयस जुगुप्सा ये चारों नोकषाय द्वेष उत्पादक होने से द्वेष है।

प्र0244 अप्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उ0 पूर्व काल में अनुभव किये हुए विषयों का अनुभव करने रूप रागादि का स्मरण करना सो अप्रतिक्रमण कहते है।

प्र0245 अप्रतिक्रमण कितने प्रकार का है ?

उ0 अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है।

(1) ज्ञानी जनों के आश्रित (2) अज्ञानी जनों के आश्रित

प्र0246 ज्ञानी जनों के आश्रित अप्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उ0 ज्ञानी जनों के आश्रित जो अप्रतिक्रमण है वह शुद्धात्मा के सम्यग्ज्ञान, श्रद्धान व आचरण लक्षण वाले अभेद रत्नत्रयरूप या त्रिगुप्ति स्वरूप होता है।

प्र0247 अज्ञानी जीवों के आश्रित अप्रतिक्रमण कैसे होते है ?

उ0 यह विषय कषाय की परिणति रूप है अर्थात् हेयोपादेय के विवेकशून्य सर्वथा अत्यागरूप निर्गल प्रवृत्ति है।

प्र0248 अप्रत्याख्यान किसे कहते है ?

उ0 आगामी काल में होने वाले रागादि के विषयों की आकांक्षा रूप जो है उसे अथवा जो प्रत्याख्यान रूप नहीं है वह अप्रत्याख्यान है। इषत् प्रत्याख्यान ही अप्रत्याख्यान है इस व्युत्पति के अनुसार अणुव्रतों को अप्रत्याख्यान संज्ञा है।

प्र0249 अप्रत्याख्यान कितने प्रकार का है ?

उ0 अप्रत्याख्यान दो प्रकार है।

(1) द्रव्यप्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान (2) भाव अप्रत्याख्यान।

प्र0250 अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान से क्या होता है ?

उ0 अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान तो बंध का कारण है ऐसा आगम का उपदेश है।

प्र0251 अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान बन्ध का कारण कैसे है ?

उ0 जीव की अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान रूप परिणति ही कर्मो को करने वाली होती है। ज्ञानी जीव (जो कि नियम से उस परिणति से रहित होता है) कर्मो का करने वाला नहीं होता यह बात स्पष्ट है। यदि वह जीव जो कि ज्ञानी स्वभाव वाला है सदा ही बना रहता है। अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान रूप भाव रागादि विकल्प भाव है अतः वे आनित्य है, क्योंकि वे स्वस्थ्य भाव से च्यूत जीवों के ही होते है इसलिये सदा नहीं होते हैं इससे यह बात सिद्ध हो गई कि जब यह स्वस्थ भाव से च्यूत होता हुआ अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान के रूप में परिणमत होता है उस समय में कर्मों का करने वाला होता है।

प्र0252 बंध किसको होता है ? हेय क्यों है ?

उ0 निर्विकल्प समाधि रूप निश्चय प्रतिक्रमण और निश्चय प्रत्याख्यान इन दोनों से रहित जो जीव है उनके बन्ध होता है। वह त्यागने योग्य है। सम्पूर्ण नरक आदि के दुखों का कारण है इसलिये हेय है।

प्र0253 वन्ध का नाश करने के लिये कौन सी भावना होती है ?

उ0 में सहज शुद्ध ज्ञानानन्द रूप एक स्वाभाव वाला हूँ, विकल्प रहित हूँ, उदासीन हूँ, निरंजन जो निज शुद्धात्मा उसके समचिन श्रद्धान, ज्ञानी और अनुष्ठान रूप जो निश्चय रत्नत्रय स्वरूप

निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न हुआ जो वितराग सहजानन्दरूप सुख उसकी अनुभूति मात्र ही है लक्षण जिसका ऐसे स्वसंवेदन के द्वारा संवेध है, जानने योग्य है, प्राप्त करने योग्य है वह मैं हूँ भरित अर्थात् संतृप्त अवस्था वाला हूँ, राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, मायालोभ एवं पंचेन्द्रियों के विषयों में होने वाले मन, वचन, काय का व्यापार तथा भावकर्म, नोकर्म, द्रव्यकर्म, ख्याति, लाभ, पूजा एवं देखे गये, सुने गये तथा अनुभव में लाए गये जो भोग उनकी आकांक्षा रूप निदान शल्य माया शल्य और मिथ्या शल्य इन तीनों से रहित तथा और भी सब प्रकार के विभाव परिणामों से रहित हूँ, शून्य हूँ, तीन लोक और तीन काल में मन, वचन, काय और कृत, करित, अनुमोदना द्वारा शुद्ध निश्चय से तो मैं ऐसा ही हूँ और ऐसे ही सब जीव है इस प्रकार की भावना निरन्तर करना चाहिये।

प्र0254 मोक्षाधिकार में कितनी गांथाए है ?

उ0 मोक्षाधिकार में बाईस गाथांए है।

प्र0255 जानने वाला जीव मोक्ष प्राप्त करता है या नहीं ?

उ0 जैसे कोई पुरुष चिरकाल से बन्धन में बंधा हुआ उसके तीव्र या मन्द स्वभाव को भी जानता है एवं उसके काल को भी जानता है। इस प्रकार जानता हुआ भी यदि वह बंध को नहीं छेदता है तो उससे वह नहीं छूटता है एवं उस बन्धन से नहीं छूटता हुआ वह पुरुष चिरकाल तक भी मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। उसी प्रकार ज्ञानावरणादि मुलोतर प्रकृतियों के भेद से नाना भेद वाले जो कर्मो के बन्धन है उनके प्रदेश, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग को जानता हुआ भी जीव कर्म से मुक्त नहीं होता है।

प्र0256 सभी कर्मो का नाश कैसे करता है ?

उ0 जब कि मिथ्यात्व और रागादि से रहित हो जाता है तो

अनन्तज्ञानादि गुणात्मक परमात्मा के स्वरूप में स्थित होता हुआ वह सभी कर्मो को छोड़ देता है उनसे रहित हो जाता है।

प्र0257 क्या ज्ञान से मोक्ष हो जाता है ?

उ0 आचार्य देव ने जो प्रकृति स्थिति आदि रूप कर्म बन्ध के परिज्ञान मात्र से संतुष्ट हुये बैठे हैं हमको कर्म बन्ध का ज्ञान तो है अत हमें कुछ नहीं करना है कार्यों का ज्ञान मात्र से मोक्ष होता है ऐसा बताया है उनको समझाया है कि हे भाई! स्वरूप की उपलब्धिरूप वीतराग चारित्र से रहित जीवों के बंध के परिज्ञानमात्र से स्वर्गादिक के सुख का निमितभूत पुण्य बन्ध ही होता है मोक्ष नहीं होता है।

प्र0258 ज्ञान से मोक्ष क्यों नहीं होता है ?

उ0 जैसे बन्धन से बँधा हुआ कोई भी पुरुष उसके विषय में विचार करने मात्र से ही बन्धन मुक्त नहीं हो जाता है, उसी प्रकार जीव भी प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप बंध के विषय का मात्र विचार करता हुआ ही स्वशुद्धात्मा की प्राप्ति रूप है लक्षण जिसका उस मोक्ष को कभी प्राप्त नहीं हो सकता है।

प्र0259 मोक्ष कौन से जीव को होता है और किसको नहीं होता है ?

उ0 समस्त शुभ और अशुभ बाह्य द्रव्यों के आलम्बन से रहित चिदानंद एकरूप शुद्धात्मा के आलम्बन स्वरूप जो वीतराग धर्मध्यान या शुक्ल ध्यान से रहित जीव बन्धप्रपंच की रचना कि चिंतारूप सराग धर्मध्यान स्वरूप शुभोपयोग से स्वर्गादि सुख का कारणभूत पुण्य बन्ध प्राप्त होता है परन्तु उस जीव को मोक्ष नहीं होता है।

प्र0260 मोक्ष को कैसे प्राप्त कर सकता है ?

उ0 जैसे बंधन में बँधा हुआ कोई पुरुष रस्सी के बंध को, सांकल के बंध को, व काठ की बेड़ी के बंध को किसी को खोल कर अपने विज्ञान और पुरुषार्थ के बल से उस बन्धन से छुटकारा पाता है, उसी प्रकार यह जीव भी वीतराग एवं विकल्प रहित स्वसंवेदन ज्ञान के बल से बंध को छेदकर उसे दो रूप कर अर्थात् भिन्नाभिन्न कर खोलकर, विदारण कर अपने शुद्धात्मा के उपलंभ स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

प्र0261 इस प्राभृत में निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान् होता हुआ बताया गया है वह तो किसी प्रकार भी घटित नहीं होता है क्योंकि चक्षु आदि के द्वारा दर्शन होता है जो कि सत्तामात्र अवलोकन स्वरूप है उसे जैन मत में निर्विकल्प कहा है हाँ वौद्धमत में ज्ञान को निर्विकल्प कहा गया है किन्तु वह भी उत्तर क्षण में विकल्प का जनक होता है परन्तु जैतमत में ज्ञान विकल्प का उत्पादन न होकर अपने स्वरूप से ही सविकल्प तथा स्वपर प्रकाशक कहाँ गया है सो कैसे ?

उ0 अरे भाई ! जैन मत एकान्त हठवादि नहीं अनेकान्तात्मक है इसलिये उसमें ज्ञान को कथचित् सविकल्प और कथंचित् निर्विकल्प कहाँ गया है। जैसे विषयानन्द रूप सराग स्वसंवेदन ज्ञान होता है वह सराग संविति के विकल्प रूप है अत सविकल्प होता है किन्तु वहीं पर शेष अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पों का सद्भाव होने पर भी वहां पर उनकी मुख्यता नहीं होती है इसलिये उसे निर्विकल्प भी कहा जाता है। वैसे ही अपनी शुद्धात्मा की संविति रूप वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान होता है वह भी स्वसंवित्ति रूप एक आकार से तो सविकल्प होता है फिर भी वहाँ पर बाह्य विषयों के अनिच्छित सूक्ष्म विकल्प भी होता है उनके होने पर भी उनकी वहाँ मुख्यता नहीं होती इसलिये उसे निर्विकल्प भी कहते है। और जहाँ ईहापूर्वक स्वसंवित्याकार

जो अर्न्तमुख प्रतिभास होता है वहीं पर बर्हिविषयों के भी अनिच्छितं सूक्ष्म विकल्प भी होते, इसलिये वह स्व पर प्रकाशक भी होता है, यही निर्विकल्प व सविकल्प ज्ञान का तथा स्व पर प्रकाशक ज्ञान का व्याख्यान स्पष्ट सिद्ध है।

प्र0262 कर्मों को कौन और कैसे काटता है ?

उ0 भाव बंध मिथ्यात्व और रागादिक है उनके स्वभाव को जानकर हेय उपादेय के विषय में विपरीत मान्यता अर्थात् हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझना मिथ्यात्व कहलाता है। पंचेन्द्रिय के विषय में इष्ट और अनिष्ट का विचार होना रागादिक का स्वभाव है उसे जानकर केवल बंध स्वभाव को नहीं परन्तु आत्मा अनन्त ज्ञानादि स्वभाव को जानकर द्रव्यबंध के कारण भूत मिथ्यात्व और रागादिक भावबंध है उनमें निर्विकल्प समाधि के बल से रंजायमान नहीं होता वही कर्मों नाश वाला है।

प्र0263 आत्मा और बंध को अलग कैसे करें ?

उ0 जैसे जीव और बंध ये दोनों अपने अपने लक्षणों द्वारा पृथक् किये जाते है। उसी प्रकार प्रज्ञा रूपी छैनी है लक्षण जिसका ऐसा भेदज्ञान के द्वारा भिन्नता को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि जीव का लक्षण शुद्ध चैतन्य है और बंध का लक्षण मिथ्यात्व-रागादिक है उनके द्वारा भिन्न भिन्न कर लिये जाते है। किससे पृथक् किये जाते है ? कि शुद्धात्मा की अनुभूति है लक्षण जिसका ऐसा भेदज्ञान रूपी प्रज्ञा वही है छेदने वाली छैनी उससे पृथक् किये जाते है।

प्र0264 छैन्नी किसे कहते है ?

उ0 विशुद्धज्ञान और दर्शन ही है स्वभाव जिसका ऐसे परमात्मतत्व का समीचीन श्रद्धान ज्ञान और आचरण रूप जो निश्चय रत्नत्रय, तत्वरूप जो भेदविज्ञान वही छैन्नी है अर्थात् उसे छन्नी

कहते हैं।

प्र0265 आत्मा और बंध का पृथक्करण के बाद किसकी सिद्धि होती है ?

उ0 जीव और बंध इन दोनों को निश्चित अपने अपने लक्षणों द्वारा इस प्रकार पृथक पृथक करना कि बन्ध तो छेदकर भिन्न हो जाये और आत्मा मात्र रह जाता है।

प्र0266 आत्मा और बंध का पृथक्करणे का प्रयोजन क्या है ?

उ0 वीतराग सहज परमानन्द है लक्षण जिसका ऐसे शुद्धात्मा के सुख समरसी भाव के द्वारा ग्रहण कर लिया जावे यही आत्मा और बन्ध को पृथक करने का प्रयोजन है।

प्र0267 शुद्धात्मा को कैसे ग्रहण किया जाता है ?

उ0 शुद्धात्मा अमुर्त होने पर भी वह बुद्धि के द्वारा, भेदज्ञान के द्वारा ही, ग्रहणकिया जा सकता है। जैसे पूर्वसूत्र में प्रज्ञा के द्वारा ही वह विभक्त किया गया है रागादि से पृथक किया गया है उसी प्रकार प्रज्ञा से ही उसे ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र0268 यहाँ पर प्रज्ञा से क्या ग्रहण करना चाहिये ?

उ0 निर्विकल्प समाधि में स्थिति होकर अनुभव करना चाहिये यह अर्थ है।

प्र0269 आत्मा को प्रज्ञा से कैसे ग्रहण करना चाहिये ?

उ0 जो चेतनावान् है सो नियम से मैं हूँ उसके सिवा जितने भी भाव है वे सब मेरे से भिन्न है इस प्रकार विवेक बुद्धि से शुद्धात्मा को ग्रहण करना चाहिये।

प्र0270 विभाव परिणाम कैसे है ?

उ0 प्रज्ञा स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जो चेतन स्वरूप आत्मा ज्ञाता द्रष्टा और परमानन्द लक्षण वाले सुख से रहित अनुभव में आता है निश्चय से वही मैं हूँ शेष जो रागादि भावरूप विभाव

परिणाम है वे चिदानन्द स्वभाव वाले मुझसे भिन्न है ऐसा जानना चाहिये।

प्र0271 ज्ञान और दर्शन में क्या भिन्नता है ?

उ0 सामान्य को ग्रहण करने वाला दर्शन है और निर्विकल्प है और विशेष को ग्रहण कराने वाला ज्ञान है वह निर्विकल्प और सविकल्प होता है।

प्र0272 ज्ञानी परद्रव्य को कैसे जानता है ?

उ0 निर्मल आत्मा की अनुभूति वही है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान के द्वारा परद्रव्य को भिन्न जानता है।

प्र0273 शंका किसे होता है ?

उ0 जो पुरुष चोरी परदारगमनादि अपराधों का करने वाला है व सशंकित रहता है क्योंकि लोगों में विचरण करता हुआ मैं चोर समझाकर किसी कोटपाल आदि के द्वारा कभी बांध न लिया जाऊँ। इसी प्रकार जो कोई जीव रागादि रूप परद्रव्यों को ग्रहण करता है स्वीकार करता है वह स्वस्थ भाव से च्यूत होता हुआ अपराध युक्त होता है और अपराध युक्त होने के कारण शंकाशील भी होता है।

प्र0274 शंका किसे नहीं होता है ?

उ0 जो पुरुष चोरी आदि अपराध नहीं करता वह निशंक होता हुआ गाँव के लोगों में बीच में घूमता रहता है, क्योंकि वह निरपराध है इसलिये उसके कभी चिंता नहीं उपजती कि मैं चोर समझकर किसी के द्वारा बाँधा जा सकता हूँ किन्तु जो निरपराध है वह तो देखे गये सुने गये और अनुभव में आये ऐसे भोगों कि आकांक्षा रूप निदान बंध आदि समस्त विभाव परिणामों से रहित होने के कारण निशंक होता है।

प्र0275 अपराध के पर्यायवाची नाम कौन से है ?

उ0 संसिद्ध, राध, सिद्धि, साधित और आराधित ये सब एकार्थ वाची शब्द है।

प्र0276 राध किसे कहते है ?

उ0 तीन काल के होने वाले मिथ्यात्व, विषय कषायादि परिणाम रहित के द्वारा निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर अपनी शुद्ध आत्मा का आराधन सेवन वह राध कहलाता है।

प्र0277 अपराध किसे कहते है ?

उ0 अपगत अर्थात् नष्ट हो गया है राध अर्थात् शुद्धात्मा का आराधन जिस पुरुष का वह पुरुष ही अभेद विवक्षा से अपराधी ठहराता है। अथवा अपगत अर्थात् नष्ट हो गया है राध अर्थात् शुद्धात्मा की आराधना जिसके वह रागादि विभाव परिणाम वही अपराध है।

प्र0278 लोक में चोरी आदि करना अपराध है लेकिन आपने उसे न कहते रागादिक अपराध है तो चोरी आदि अपराध नहीं है ?

उ0 लोक में जो चोरी आदि को जो अपराध कहा है वह कारण में कार्य का उपचार किया है क्योंकि चोरी आदि क्रिया रागादिक की उत्पत्ति में कारण है और रागद्वेषादि स्वयं अपराध स्वरूप है चोरी एक भव रुलाता है और रागद्वेषादि भव भव रुलाता है इसलिये चोरी को अपराध कहाँ है लेकिन अध्यात्म में निमित कारण गौण रहता है उपादान कारण मुख्य होता है। इसलिये यहां पर चोरी आदि क्रिया अपराध में नहीं लिया है।

प्र0279 विषकुंभ कौन से हैं ? और कितने प्रकार का है ?

उ0 विषकुंभ आठ प्रकार का है।

1. प्रतिक्रमण, 2. प्रतिसरण, 3. परिहार, 4. धारणा, 5. निवृत्ति, 6. निन्दा, 7. गर्हा, 8. शुद्धि।

प्र0280 यह विषकुंभ क्यों है ?

उ0 प्रतिक्रमणादि शुद्धि तक इन आठों में कर्तापन की बुद्धि होती है इसलिये विषकुंभ है।

प्र0281 प्रतिक्रमण किसे कहते है ?

उ0 किये हुये दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण कहते है।

प्र0282 प्रतिसरण किसे कहते है ?

उ0 सम्यक्त्वादि गुणों में प्रवृत्ति होना सो प्रतिसरण कहते है।

प्र0283 परिहार किसे कहते है ?

उ0 मिथ्यात्व तथा रागादि दोषों का निवारण करना सो परिहार है।

प्र0284 धारणा किसे कहते है ?

उ0 पंचनमस्कार आदि मंत्र तथा प्रतिमा आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन से चित्त को स्थिर करना धारणा है।

प्र0285 निवृत्ति किसे कहते है ?

उ0 बहिरंग विषय कषायादि में जो इच्छायुक्त चित होता है उसका निवारण करना सो निवृती है।

प्र0286 निन्दा किसे कहते है ?

उ0 अपने आपकी साक्षी से दोषों को प्रकट करना सो निन्दा हैं

प्र0287 गर्हा किसे कहते है ?

उ0 गुरु की साक्षी से दोष को प्रकट करने से।

प्र0288 शुद्धि किसे कहते है ?

उ0 कोई भी प्रकार का दोष हो जाने पर प्रायश्चित लेकर उसका शोधन करना शुद्धि है।

प्र0289 द्रव्यप्रतिक्रमणादि आठ प्रकार विषकुंभ कौन से जीव को है ? या सभी जीव को ?

उ0 द्रव्य प्रतिक्रमणादि आठ प्रकार विषकुंभ सभी जीवों को नहीं है, जो जीव राग, द्वेष और मोह भाव तथा ख्याति, पूजा, लाभ व देखे हुये और अनुभूति में आये हुये ऐसे भोगों की आकांक्षारूप निदानबंध इत्यादि समस्त परद्रव्यों के आलंबन से होने वाले सब ही प्रकार के विभाव परिणामों से शून्य है तथा जो निदान रहित स्वभाव वाले विशुद्धि आत्मा के आलंबन से भरी और निर्विकल्प रूप शुद्धोंपयोग लक्षण वाली अवस्था वाले जीव को अथवा ज्ञानी जनों के द्वारा आश्रय करने योग्य जो निश्चय प्रतिक्रमणादि रूप जो तीसरी अवस्था है उसकी अपेक्षा लिये हुये जो वीतराग चारित्र में स्थित हो रहे है उन लोगों के लिये तो उपुर्यक्त द्रव्य प्रतिक्रमणादि विष कुंभ ही है।

प्र0290 द्रव्य प्रतिक्रमणादि अमृत कुंभ कौन से जीव को है ?

उ0 इन आठों शुभ विकल्पों वाला शुभोपयोग यद्यपि मिथ्यात्वादि विषय कषाय परिजाति रूप अशुभोपयोग की अपेक्षा जो विकल्प सहित सराग चारित्र अवस्था में तो अमृतकुंभ ही है।

प्र0291 अप्रतिक्रमण कितने प्रकार का है ?

उ0 अप्रतिक्रमण दो प्रकार का है।

(1) अज्ञानी जीवों द्वारा (2) ज्ञानी जीवों के द्वारा।

प्र0292 अज्ञानी जीवों का अप्रतिक्रमण का स्वरूप कैसा है ?

उ0 अज्ञानी जनाश्रित अप्रतिक्रमण तो विषय कषाय की परिणति रूप होता है।

प्र0293 ज्ञानी जीवों का अप्रतिक्रमण का स्वरूप कैसे होता है ?

उ0 ज्ञानी जनाश्रित अप्रतिक्रमण तो शुद्धात्मा के समीचीन श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठान स्वरूप त्रिगुप्तिमय होता है। वह ज्ञानी जनाश्रित अप्रतिक्रमण यद्यपि सरागचारित्र है लक्षण जिसका

ऐसे शुभोपयोग की अपेक्षा तो अप्रतिक्रमण कहाँ जाता है किन्तु वीतरागचारित्र की अपेक्षा उसी का नाम निश्चय प्रतिक्रमण है क्योंकि वही शुभ और अशुभ आश्रवरूप दोष के निराकरण रूप होता है इसलिये यही निश्चय प्रतिक्रमण है।

प्र0294 कौन से प्रतिक्रमण से किसकी प्राप्ति होती है ?

उ0 व्यवहार प्रतिक्रमण की अपेक्षा अप्रतिक्रमण शब्द के द्वारा कहा जाकर भी ज्ञानीजनों के लिये मोक्ष का कारण होता है। व्यवहार प्रतिक्रणम यदि शुद्धात्मा को उपादेय मानकर निश्चय प्रतिक्रमण का साधक होने से विषय कषायों से बचने के लिये करता है तो वह परमारा से मोक्ष का कारण होता है। अन्यथा वह स्वर्गादि के सुख का निमित्तभूत पुण्य का ही कारण होता है। अज्ञानीजन संबधि अप्रतिक्रमण तो मिथ्यात्व और विषय कषायों को परिणति रूप होने से नरकादि दुख का ही कारण है।

प्र0295 किस पर्याय का आश्रय लेकर कर्ता-भोक्ता-मोक्ष आदि सहित है अर्थात् इनका अस्तित्व है ?

उ0 संसार पर्याय का आश्रय लेकर यह जीव अशुद्ध उपादान रूप अशुद्धनिश्चयनय से यद्यपि कर्ता पन, भोक्तापन एवं बन्ध और मोक्षादि परिणाम सहित है।

प्र0296 बंध मोक्षादि परिणामों से रहित किस अपेक्षा से है ?

उ0 सर्वविशुद्ध परिणामिक रूप परमभाव का ग्राहक जो शुद्ध द्रव्यार्थिनय है जो कि शुद्ध उपादान रूप है उससे कर्तापन, भोक्तापन, बन्ध या मोक्ष आदि कारणभूत परिणामों से रहित है।

प्र0297 मोक्ष पदार्थ चूलिका में कितनी गाथाएँ है ?

उ0 मोक्षपदार्थ चूलिका में 14 गाथाएँ है।

प्र0298 चूलिका किसे कहते है ?

उ0 "विशेष व्याख्यान कहे हुये और न कहे हुये का व्याख्यान तथा कहा हुआ और न कहा हुआ से मिश्रित व्याख्यान इस प्रकार तीन प्रकार का व्याख्यान चूलिका शब्द से कहा जाता है अर्थात् चूलिका कहते है।

प्र0299 जीव और पुद्‌गल (अजीव द्रव्य) कैसे है ?

उ0 जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य के भी परिणाम या पर्याय जो सूत्ररूप परमागम में बताये है, उन परिणामों के साथ यह जीव या अजीव द्रव्य अनन्य अभिन्न ही होता है।

प्र0300 आत्मा कर्ता कैसे नहीं है ?

उ0 शुद्धनिश्चयनय से यह जीव नरनारकादि विभाव पर्यायों के रूप में पैदा नहीं हुआ अर्थात् कर्मों के द्वारा आत्मा पैदा नहीं हुआ है इसलिये आत्मा कर्म और नोकर्मो का कारण भी वह नहीं है। क्यों कि आत्मा कर्मों का कर्ता भी नहीं है तो मोचक भी नहीं है इसलिये आत्मा शुद्धनिश्चयनय से वन्ध और मोक्ष दोनों का ही कर्ता नहीं हैं

प्र0301 कर्ता कैसे होता है ?

उ0 कर्तारूप कर्म और नोकर्म के द्वारा जीव पैदा नहीं किया जाता है वैसे कर्म और नोकर्म को जीव पैदा नहीं करता है। इस पर से यह जाना जाता है कि कर्म को प्रतित में लाकर उपचार से जीव कर्म का कर्ता होता है तथा जीव को कर्तारूप में आश्रय करके उपचार से कर्म उत्पन्न होते है ऐसा नियम है।

प्र0302 कर्तापन की सिद्धि कैसे नहीं होती है ?

उ0 परस्पर के निमित्तभाव को छोड़कर शुद्ध उपादानरूप से शुद्ध निश्चयनय से जीव के कर्म कर्तापने के विषय में सिद्धि नहीं होती है अर्थात् घटित नहीं होती है।

प्र0303 जीव असंयत कब तक है ?

उ0 जब तक यह चेतन स्वभाववाला जीव चिदानन्द एक स्वभाव है जिसका ऐसे परमात्मा के समीचीन श्रद्धान, ज्ञान और अनुभवरूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अभाव से प्रकृति के अर्थ को अर्थात् कर्मोदय रूप रागादिक को नहीं छोड़ता है तब तक आत्मा को रागादिरूप ही मानता है, रागादिरूप ही जानता है, और रागादिरूप ही अनुभवता है इसलिये मिथ्यादृष्टि होता है, अज्ञानी होता है और तब तक असंयत होता है।

प्र0304 मुनि कब होता है ?

उ0 जब वही आत्मा (चेतयिता) शक्तिरूप से अनन्त विशेष भेदभाव मिथ्यात्व रागादिक कर्मफल को सर्व प्रकार से छोड़ देता है उस समय शुद्ध सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव रूप जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के सद्भाव होने से मिथ्यात्व और रागादि से भिन्न आत्मा को मानने, जानने और अनुभव करने लगता है, तब वह सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञान और संयत मुनि होता है।

प्र0305 ज्ञानी कर्म फल को क्या करता है ?

उ0 अज्ञानी (प्रमादि) जीव कर्म के फल को प्रकृति के स्वभाव में स्थित होता हुआ भोगता है परन्तु ज्ञानी जीव उदय में आये हुये कर्म के फल को जानता मात्र है भोगता नहीं है।

प्र0306 जानना और वेदन में अंतर क्या है ?

उ0 अमुक वस्तु घड़ी आदि है, यह तो जानना हुआ इसमें अच्छे बुरेपन की मान्यता या विचार आना यह उसका वेदना या भोगना कहलाता है।

प्र0307 कर्मोदय में ज्ञानी क्या करता है ?

उ0 जो चेतयिता ज्ञानी जीव निरपराध होता हुआ परमात्मा के

आराधन में निशंक होता है। वह निशंक होकर निर्दोष परमात्मा की आराधना निरन्तर सदा काल, अनन्त ज्ञानादि स्वरूप हूँ इस प्रकार विचार करके निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर आत्मा को अच्छी प्रकार से जानता हुआ वह परम समरसी भाव के द्वारा उसी का अनुभव करता है।

प्र0308 कौन सा जीव नियम से कर्मों का वेदक होता है ? और कैसे ?

उ0 जैसे पन्न अर्थात् साँप शक्कर सहित दूध पीकर भी विष रहित नहीं होते है। वैसे ही अभव्य अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व रागादिरूप कर्म प्रकृति के उदय स्वभाव को नहीं छोड़ता है।

प्र0309 अभव्य जीव कैसे होता है ?

उ0 शास्त्रों को अच्छी प्रकार पढ़ करके भी अभव्य जीव कर्मोदय के स्वभाव को नहीं छोड़ता है।

प्र0310 कर्मों का वेदक मिथ्यादृष्टि जीव न कहकर अभव्य क्यों कहा?

उ0 कर्मों का वेदन अभव्य और मिथ्यादृष्टि दोनों वेदन करते है लेकिन दोनों में जो अन्तर है उसका स्पष्टीकरण के लिये आचार्य ने कर्मों को वेदक में अभव्य लिया है क्योंकि अभव्य जीव अनादि अनन्त काल तक वेदन ही करता है लेकिन भव्य मिथ्यादृष्टि जीव के तीन विकल्प है। अनादि अनन्त, अनादि सान्त, साधि सान्ति, इसलिये आचार्य ने वेदक में मिथ्यादृष्टि न कहकर अभव्य मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र0311 अनादी अनन्त काल वेदन करने वाला कौन सा जीव है?

उ0 दूरान दूरभव्य और अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त काल है।

प्र0312 अनादि सात काल का वेदन करने वाला कौन सा जीव है?

उ0 मिथ्यादृष्टि (अनादि) का जीव भविष्य काल में वेदक और

अवेदक दोनों स्थिति का कर्ता है। अगर जीव संयम पर आरूढ़ जब तक नहीं हुआ है तब तक वेदक ही है उसके पश्चात् अवेदक है।

प्र0313 **सादि-सान्त काल कैसे घटित होता है ?**

उ0 उपशम श्रेणी आदि से च्युत जीव अवेदक होकर मिथ्यात्व में जाकर वेदक हुआ लेकिन उन्हें अनन्त काल से पहले नियम से अवेदक होगा इसलिये सादि सान्त घटित होता है।

प्र0314 **ज्ञानी अशुभ कर्म का कैसे जानता है ?**

उ0 ज्ञानी जीव अशुभ कर्म के फल को नीम, कांजी, विष, हलाहल के रूप में जानता है।

प्र0315 **ज्ञानी शुभ कार्य को कैसे जानता है ?**

उ0 ज्ञानी शुभ कर्म को गुड़, खाण्ड, शक्कर और अमृत के रूप स्वरूप जानता है।

प्र0316 **ज्ञानी क्या नहीं करता है ?**

उ0 ज्ञानी शुद्ध आत्मा से उत्पन्न हुये सहज परमानन्द रूप अतिन्द्रिय सुख को छोड़कर पंचेन्द्रिय के सुख में कभी परिणमन नहीं करता है।

प्र0317 **शुभ और अशुभ कर्म का भोक्ता कौन सा जीव होता नही है ?**

उ0 परम समाधि में लगे रहने वाले ज्ञानी जीव शुभ या अशुभ कर्म के फल का भोक्ता नहीं होता है।

प्र0318 **कौन से भाव बंध और मोक्ष पर्याय की परिणति से रहित है ?**

उ0 औपशमिक, क्षयोपशमिक, क्षायिक और औदयिक ऐसे चार भाव तो पर्ययरूप है और एक शुद्ध पारिणामिक भाव द्रव्य रूप है। पदार्थ परस्पर अपेक्षा लिये द्रव्य पर्ययरूप है वह

जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व तीन प्रकार का पारिणामिक भाव है उसमें भी शक्ति लक्षणरूप शुद्ध जीवत्व परिणामिक भाव है, वही शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का आश्रय होने से निरावरण शुद्धपारिणामिक भाव है नाम जो कि बंध और मोक्षरूप पर्याय की परिणति से रहित है।

प्र0319 अशुद्धपारिणामिक भाव कौन से है ?

उ0 दश प्राणरूप जीवत्व भव्यत्व, अभव्यत्व ये सब पर्यायार्थिकनय के आश्रय होने से अशुद्धपारिणामिक नाम वाले है।

प्र0320 यह भाव अशुद्ध पारिणामिक क्यों है ?

उ0 दशप्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व इन तीनों का सिद्धो में सर्वथा अभाव है किन्तु संसारी जीवों में भी शुद्धनिश्चयनय से अभाव है, वहाँ इन तीनों में से भव्यत्व लक्षणवाला परिणामिक भाव है।

प्र0321 भव्यत्व भाव पर्यायार्थिनय से कैसा है ?

उ0 मोहादिक कर्म सामान्य अच्छादक है जो देश घाति और सर्वघाति नाम वाला है एवं सम्यक्त्वादि जीव के गुणों का घातक है ऐसा समझना चाहिये।

प्र0322 भव्यत्व शक्ति अचरणादिरूप में कब परिवर्तित होता है ?

उ0 जब काल आदि लब्धियों के वश से भव्यत्व शक्ति की अभिव्यक्ति होती है तब वह जीव सहजशुद्ध परिणामिक भावरूपी लक्षण को रखने वाली ऐसे निजपरमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान आचरण की पर्याय के रूप में परिणमन करता है।

प्र0323 भव्यत्व शक्ति परिणमन को आगम भाषा में क्या कहाँ है ?

उ0 आगम भाषा में औपशमिक, क्षयोपशमिक और क्षायिक भाव इन तीनों नामों से कहा जाता है।

प्र0324 भव्यत्व शक्ति की परिणमन को अध्यात्म भाषा में क्या कहा जाता है ?

उ0 भव्यत्व शक्ति परिणमन को अध्यात्म भाषा में शुद्धात्मा के अभिमुख परिणाम कहलाता है जिसको शुद्धोपयोग इत्यादि नाम से कहते है।

प्र0325 शुद्धोपयोग रूप पर्याय कैसे है ?

उ0 वह शुद्धोपयोग रूप पर्याय भी शुद्धपारिणामिक भाव लक्षण जिसके ऐसे शुद्धात्मद्रव्य से कथचित् भिन्न रूप होती है क्योंकि वह भावनारूप होता है।

प्र0326 शुद्धपारिणामिक भाव भावना रूप है या नहीं ?

उ0 शुद्धपारिणामिक भाव भावना रूप नहीं होता है। यदि इस भावनारूप परिणाम को एकान्त रूप से शुद्ध पारिणामिक भाव से अभिन्न ही मान लिया जाय तो मोक्ष का कारणभूत भावना रूप परिणाम का तो, मोक्ष हो जाने पर नाश हो जाता है तब उसके नाश हो जाने पर शुद्धपारिणामिक भाव का भी नाश हो जाना चाहिये ? सो ऐसा है नहीं। इसलिये यह निश्चित है कि शुद्ध पारिणामिक भाव के विषय में जो भावना है उस रूप जो औपशमिकादि तीन भाव है सो रागादिक समस्त विकार भावों से रहित होने से शुद्ध उपादान के कारण रूप है इसलिये मोक्ष के कारण होते है, किन्तु पारिणामिक भाव मोक्ष का कारण नहीं है।

प्र0327 मोक्ष कितने प्रकार का है ? और कौन से मोक्ष का विचार करना चाहिये ?

उ0 (1) शक्ति रूप मोक्ष (2) व्यक्ति रूप मोक्ष

जो शक्ति रूप मोक्ष है वह तो शुद्धपारिणामिक रूप पहले से ही प्रवर्तमान है, किन्तु यहाँ पर तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार

चल रहा है और करना चाहिए।

प्र0328 पारिणामिक भाव कैसे होता है ?

उ0 शुद्ध पारिणामिक भाव तो निष्क्रिय होता है।

प्र0329 निष्क्रिय का क्या अर्थ है ?

उ0 रागादिमय परिणति वाली एवं बंध की कारणभूत क्रिया से रहित है, तथा मोक्ष की कारणभूत जो क्रिया, शुद्धस्वरूप की भावना रूप परिणति है उससे भी रहित है।

प्र0330 शुद्धोपयोग के अभिमुख परिणाम को शुद्धोपयोग क्यों कहा है ?

उ0 कारण में कार्य का उपचार करके अभिमुख परिणाम को शुद्धोपयोग कहा है।

प्र0331 चौथे गुणस्थान में औपशमिक, क्षयोपशमिक और क्षायिक भाव है तो क्या चतुर्थ गुणस्थन में शुद्धोपयोग अभिमुख परिणाम पाया जाता है ?

उ0 चौथे गुणस्थान में जो औपशमिक आदि जो भाव पाये जाते हैं वह शुद्धोपयोग अभिमुख न होकर शुभोपयोग अभिमुख पाया जाता है और यहाँ आचर्य देव ने छठे सातवें गुणस्थान में जो औपशमिक, क्षयोंपशमिक, क्षायिक आदि शुभोपयोग रूप जो शुद्धोपयोग अभिमुख है उसे ही ग्रहण किया है क्योंकि इससे पूर्व भव्यत्व शक्ति की अभिव्यक्ति संयम के साथ ग्रहण किया है असंयम के साथ नहीं इसलिये चौथे गुणस्थान के भाव शुभोपयोगाभिमुख है लेकिन शुद्धोपयोग अभिमुख नहीं है।

प्र0332 समयसार चूलिका में कितनी गाथाएं हैं ?

उ0 समयसार चूलिका में 96 छयानवें गाथाएँ हैं।

प्र0333 आम लोगों की मान्यता क्या है ?

उ0 आम लोगों का ऐसा मन्तव्य है की सुरनारक, तिर्यंच और मनुष्य नाम के प्राणियों को विष्णु अर्थात् परमात्मा बनाता है अर्थात् कर्ता है।

प्र0334 यतियों की (साधु) मान्यता कैसी नहीं होना चाहिये ?

उ0 यतियों का भी विश्वास, मान्यता यह हो की छह काय के जीवों को आत्मा करता है तो फिर लोगों का तथा श्रमणों का एक ही सिद्धान्त ठहरा इसमें कोई भी विशेषता नहीं है क्योंकि लोगों की मान्यता में एक आत्मा दूसरे आत्मा का कर्ता है ऐसा मान्यता नहीं होनी चाहिये।

प्र0335 कर्तव्य बुद्धि में दोष क्या है ?

उ0 निरंतर सब ही काल में कर्म करने वाले देव, मनुष्य, असुर सहित लोक में मोक्ष नहीं ठहरता। रागद्वेष और मोह रूप में परिणमन करने का नाम ही कर्ता पन है, रागद्वेष और मोह रूप परिणमन होने पर शुद्ध स्वभाव आत्मत्व का समीचीन श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप जो निश्चय रत्नत्रय तद्रूप जो मोक्षमार्ग उससे च्यूत होता है तब वहाँ मोक्ष नहीं होता है।

प्र0336 अध्यवसान क्या है ?

उ0 वीतराग सम्यक्त्व है नाम जिसकी ऐसी निश्चय दृष्टि जिनके नहीं है उन लोगों का यह अध्यवसाय है।

प्र0337 व्यवहार से जो परद्रव्य को अपने कहते है वह अज्ञानी कैसे होते है ?

उ0 व्यवहार तो प्राथमिक लोगों को सम्बोधन करने के लिए उस समय ही अनुसरण करने योग्य है। जैसे कि म्लेल्छों को समझाने के लिए म्लेच्छ भाषा बोली जाती है। प्राथमिक जन के सम्बोधन काल को छोड़कर अन्य काल में यदि कोई ज्ञानी जीव कतक फल के समान आत्मा का संशोधन करने वाला

शुद्धनय उससे च्यूत होकर परद्रव्य को अपना करता है, कहता है उस समय वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी होता है।

प्र0338 ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर कौन है ?

उ0 यह सारा लोक ही एकेन्द्रियादि जीवों से भरा हुआ है उन सभी जीवों में निश्चयनय से विष्णु के रूप में, ब्रह्मा के रूप में, महेश्वर के रूप में और जिन के रूप से परिणमन करने की शक्ति विद्यमान है इसलिये आत्मा ही विष्णु है, आत्मा ही ब्रह्मा है, आत्मा ही महेश्वर है और आत्मा ही जिन भी है।

प्र0339 आत्मा विष्णु-कैसे बनता है ?

उ0 कोई जीव अपने पूर्व भव में जिनदिक्षा लेकर भोगों की आकांक्षा रूप निदान बंध के द्वारा पापानुवंधी पुण्य करके स्वर्ग में जा उत्पन्न हुआ, वहाँ से आकर मनुष्य भव में तीन खण्ड का अधिपति अर्धचक्री बनता है उसी को लोक में विष्णु संज्ञा होती है।

प्र0340 आत्मा महेश्वर कैसे वनता है ?

उ0 कोई जीव जिन दिक्षा लेकर रत्नत्रय की आराधना द्वारा पापानुबंधी पुण्य उपार्जन करके विद्यानुवाद नाम के दशवें पूर्व को पढ़कर चारित्र मोह के उदय से तपश्चरण से भ्रष्ट होकर हुंडावसर्पिणी काल के प्रभाव से और अपनी विद्याा के बल से मैं इस लोक का कर्ता हूँ ऐसा चमत्कार दिखाकर मूढ़ लोगों में आश्चर्य करके महेश्वर वनता है।

प्र0341 ब्रह्मा कैसे वनता है ?

उ0 कोई एक विशिष्ट तपश्चरण करके पश्चात इस तपश्चरण के प्रभाव से स्त्री विषय का निमित्त पाकर चारमुख वाला होता है उसी का नाम ब्रह्मा है, और कोई व्यापक एक रूप वाला होकर जगत का कर्ता हो ऐसा कोई ब्रह्मा नहीं है।

प्र0342 जिन कैसे बनता है ?

उ0 कोई एक दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता आदि सोलह भावना के फल से देवेन्द्रादि द्वारा की हुई पंच महाकल्याण पूजा के योग्य तीर्थकर नाम पुण्य को उपार्जन कर जिनेश्वर अथवा जिन होता है।

प्र0343 जीव का स्वरूप कैसा है अर्थात् नित्य या अनित्य है ?

उ0 पर्यायार्थिक नय के द्वारा जिनका विभाग किया जाता है ऐसे देव मनुष्यादि पर्यायों के द्वारा यह जीव नाश को प्राप्त होता है, किन्तु द्रव्यार्थिकनय के द्वारा जिनका विभाग किया जाता है ऐसी कुछ अवस्थाओं के द्वारा नाश को प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि जीव का स्वरूप नित्य और अनित्य स्वभाव है।

प्र0344 जीव कब के कर्म फल को भोगता है ?

उ0 जिसने मनुष्य जन्म में जो शुभाशुभ कर्म किया था वही जीव द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा इस लोक में या नरक में जाकर उसके फल को भोगता है और पर्यायार्थिक से उसी भव की अपेक्षा से अपने बाल्यकाल में हुए कर्म को यौवनादि अवस्था में भोगता है संक्षेप से कहा जाय तो अंतर्मुहूर्त के बाद भोगता है। किन्तु भवांतर की अपेक्षा देखे तो मनुष्य पर्याय में किये हुये कर्म को देवादि पर्याय में जाकर भोगता है।

प्र0345 कौन सा जीव जिनमत से बाह्य है अर्थात् मानने वाला नहीं है ?

उ0 जो एकान्त से ऐसा मानता है कि जो कर्ता है वही भोगता है अथवा जो ऐसा मानता है कि कर्ता दूसरा है व भोक्ता दूसरा है, इस प्रकार जो एकान्त करता है, जिसका एकान्त से ऐसा सिद्धान्त है कि जो शुभ या अशुभ कर्म करता है वही उसके फल को भोगता है दूसरा नहीं वह जीव मिथ्या दृष्टि होकर

अर्हंत मत का मानने वाला नहीं है ऐसा जानना चाहिये।

प्र0346 सांख्य मत से जीव कैसा है ?

उ0 जीव एकान्त से सदाकाल नित्य कूटस्थ अपरिणामी और टंकोत्कीर्ण ही है।

प्र0347 सांख्य मत से दूषण क्या है ?

उ0 जिस जीव ने मनुष्य भव में नरकगति के योग्य पापकर्म किया या स्वर्गगति के योग्य पुण्य कर्म किया, उस जीव का नरक में या स्वर्ग में गमन नहीं हो सकता तथा शुद्धात्मा के अनुष्ठान के द्वारा फिर उसका मोक्ष भी कहाँ ? क्योंकि यहां तो एकांत नित्यता है, अर्थात् जीव जैसा है वैसा सदा एकसा रहता है इसमें कुछ भी फेरफार होता ही नहीं।

प्र0348 बौद्ध मत में क्या दोष है ?

उ0 एकान्त से बंध जो कहता है कि कर्म कोई अन्य ही करता है और फल उसका कोई अन्य ही भोगता है, तो फिर मनुष्य भव में जिसने पुण्य कर्म किया या पाप किया अथवा मोक्ष के लिये शुद्धात्मा की भावना का अनुष्ठान किया तो उसके पुण्य कर्म के फल का देव लोक में कोई भी भोगने वाला बन जायेगा अपितु वह जीव भोगता नहीं होगा। इसी प्रकार नरक में भी उसके पापकर्म का भोक्ता वह न होकर दूसरा हो जायेगा तथा केवल ज्ञानादि व्यक्तिरूप मोक्ष को भी कोई अन्य जीव ही प्राप्त करेगा। ऐसी दशा में पुण्य पाप और मोक्ष का अनुष्ठान व्यर्थ ही ठहरेगा। इस तरह अनेकों दोष उत्पन्न होते है।

प्र0349 जो आत्मा स्वयं नहीं परिणमन करने वाला है उसको द्रव्य मिथ्यात्व प्रकृति हठात मिथ्यादृष्टि बना देती है इसमें दोष क्या है ?

उ0 हे सांख्यमतिन ! तेरे मत से तो अचेतन रूप यह द्रव्य मिथ्यात्व

नाम की प्रकृति ही भाव मिथ्यात्व की करने वाली ठहरी, जीव तो फिर सर्वथा अकर्ता ही ठहरा। तब फिर उसको तो कर्मबन्ध नहीं होना चाहिये और जब कर्मबन्ध नहीं, तो संसार का अभाव आया सो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

प्र0350 **सम्यक्त्व प्रकृति से सम्यक्त्व की हठात उत्पत्ति मानने पर दोष क्या है ?**

उ0 सम्यक्त्व नाम वाली प्रकृति स्वयं नहीं परिणमन करने वाले आत्मा को सम्यग्दृष्टि बना देती है तो फिर चैतन्य-शून्य-प्रकृति ही तेरे मत में कर्ता ठहरी, जीव तो सम्यक्त्व परिणाम का कर्ता नहीं ठहरा अपितु अकर्ता ही रहा तो वेदक सम्यक्त्व का अभाव ही रहा, और वेदक सम्यक्त्व के अभाव में क्षायिक सम्यक्त्व का भी अभाव ठहरा और उससे मोक्ष का भी अभाव हुआ, तब प्रत्यक्ष विरोध व आगम विरोध हुआ।

प्र0351 **सम्यक्त्व प्रकृति तो कर्म का भेद है जो कि सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व के भेद से तीन प्रकार का होने वाले दर्शन मोह का भेद है वह सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है। क्योंकि सम्यक्त्व तो भव्य जीव का परिणाम होता है जो की निर्विकार-सदानन्दरूप है लक्षण जिसका ऐसा जो परमात्म तत्व उसे आदि लेकर जीवादि-सात तत्वों के श्रद्धानरूप होकर मोक्ष का बीजभूत होता है ?**

उ0 यद्यपि सम्यक्त्व प्रकृति कर्म विशेष है यह ठीक है किन्तु निर्विष किया हुआ विष जैसे मारने वाली नहीं होता है वैसे ही मंत्र स्थानीय विशुद्धाविशेष मात्र शुद्धात्मा के अभिमुख परिणाम के द्वारा नष्ट कर दी गई है मिथ्यात्व शक्ति जिसकी, ऐसा वह सम्यक्त्व नामकर्म विशेष है वह क्षयोपशमिक आदि पाँच लब्धियों के द्वारा उत्पन्न हुआ प्रथमोपशम सम्यक्त्व उसके अनन्तर उत्पन्न जो वेदक सम्यक्त्व उसका स्वभाव जो तत्वार्थ श्रद्धान रूप आत्म परिणाम उसको नष्ट नहीं करता है, इसलिये

उपचार से सम्यक्त्व का हेतु (कारण) होने के कारण यह कर्म विशेष भी सम्यक्त्व कहा है हठात साक्षात् नहीं है। जो कि तीर्थंकर नामकर्म के समान परम्परा से मुक्ति का कारण भी होता है।

प्र0352 श्रमण का कौन सा उपदेश एकान्त पक्ष सांख्य मत के समान है ?

उ0 यह जीव कर्मों के द्वारा ही अज्ञानी किया जाता है, और कर्मों के द्वारा ज्ञानी भी होता है, कर्मों के द्वारा ही सुलाया जाता है और कर्मों के द्वारा ही जागरण पाता है। कर्मों के द्वारा ही सुखी और दुखी भी होता है, कर्मों के द्वारा ही मिथ्यात्व को प्राप्त होता है और कर्मों के द्वारा ही असंयम को प्राप्त होता है। कर्मों के द्वारा ही उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक में परिभ्रमण करता है। जो कुछ शुभ और अशुभ हो रहा है वह सब कर्मों के द्वारा ही किया हुआ हो रहा है। क्योंकि कर्म ही तो करता है, कर्म ही देता है, कर्म की हरता है, सब कुछ कर्म ही करता है इसलिये सब जीव ही अकारक है कुछ भी करने वाले नहीं है। यह आचार्यों की परम्परा से आई हुई बात है कि पुरुष वेद कर्म तो स्त्री की अभिलाषी है और स्त्रीवेदकर्म पुरुष की इच्छा करता है। इसलिये कोई भी जीव आपके मत में अब्रह्मचारी नहीं है, क्योंकि कर्म ही कर्म को चाहता है ऐसा शास्त्र में कहा है। क्योंकि दूसरे का मारता है और दूसरे के द्वारा मारा जाता है वह भी कर्म ही है, इसलिये उसे परघातनाम प्रकृति कहते है। इसलिये आपके मत में तो कोई भी जीव उपघात करने वाले नहीं है, क्योंकि कर्म ही कर्म को घातता है ऐसा जो एकान्त से उपदेश करते है वे श्रमण अर्हंत मत से बाहर होकर सांख्य मती होते हैं।

प्र0353 ऐसा उपदेश भी कर्म सिद्धान्त में पाया जाता है तो दोष क्या है ?

उ0 ऐसा उपदेश अन्य सिद्धान्त ग्रन्थ में नहीं पाया जाता है क्योंकि आगम हो या सिद्धान्त जिनमत एकान्त कभी भी ग्रहण नहीं करता है। सर्वथा कर्मादीन होने पर पुरुषार्थ नामक कोई वस्तु न होकर अकर्ता को कर्ता की फल प्राप्ती का प्रसंग आयेगा इससे अनवस्था नामक महादोष उत्पन्न होकर संसार का अभाव होगा, मोक्ष के उपायभूत संयम आदि जो कर्म के अभाव से उत्पन्न होते हैं उन्हें कर्मों से उत्पन्न मानने से यह प्रश्न होता है की सन्यास जीवन काया अपने आप होता है, अगर कहा जाय की कर्महीन है तो सभी कर्माधीन जीव हो संयम की उपलब्धी नहीं होती लेकिन इससे विपरीत पाया जाता है कि कर्माधीन जीव तो असंयमी होकर संसार परिभ्रमण कर रहा है लेकिन पुरुषार्थी जीव कर्म काटकर मोक्ष जाते देखे जाते हैं, संयमी के सामने कर्म दास बनकर रहता है। संयम से अनादि कालिन वैर नाश होकर मोक्ष मार्गी बनते देखे है इसलिये नाना प्रकार के दोष पाया जाता है।

प्र0354 प्राण जीव से अभिन्न मानने पर दोष क्या है ?

उ0 यदि जीव से प्राण अभिन्न है तब तो जैसे जीव का नाश नहीं होता वैसे ही प्राणों का भी नाश नहीं होना चाहिये तब हिंसा आदि कथन संभव नहीं होगा।

प्र0355 प्राण जीव से भिन्न मानने पर दोष क्या है ?

उ0 यदि प्राण जीव से भिन्न है ऐसा कहा जाय जो प्राणों के घात होने पर भी आत्मा क्या बिगड़ा, अतः फिर भी वहां हिंसा नही मानना चाहिए।

प्र0356 प्राण जीव से भिन्न भी नहीं है ? अभिन्न भी नहीं है ये कैसा है ?

उ0 कायादि रूप प्राणों के साथ इस जीव का कथंचित् भेद और कंथचित् अभेद है। कैसे है ? सो बताते है-जैसे तप्तायमान

लोहें के गोले में से उसी समय अग्नि को पृथक् नहीं किया जा सकता उसी प्रकार वर्तमान काल में कायादि प्राणों को जीव से पृथक् नहीं किया जा सकता इसलिये व्यवहार नय के द्वारा तो कायादि प्राणों का जीव के साथ अभेद है, किन्तु निश्चय नय से यह जीव मरण काल में जब परलोक जाता है तो कायादि प्राण इस जीव के साथ नहीं जाते इसलिये कायादिक प्राणों के साथ जीव का भेद भी हैं। यदि एकान्त से भेद ही मान लिया जाय तव तो जैसे दूसरे के शरीर के छिन्न भिन्न होने पर किसी को दुख नहीं होता उसी प्रकार अपने शरीर के छिन्न भिन्न होने पर भी दुख नहीं होना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि इसमें तो प्रत्यक्ष विरोध आता है।

प्र0357 हिंसा निश्चय है या व्यवहार है ?

उ0 व्यवहार से ही हिंसा होती है, और पाप भी व्यवहार से ही होता है, तारकादिकों का दुख भी व्यवहार से ही होता है यह बात हमको मान्य ही है। हाँ, वह नारकादिकों का दुख तुम्हे इष्ट है तो हिंसा करते रहो और यदि नरकादिक से तुम्हें डर लगता है तो हिंसा करना छोड़ दो। निश्चयनय से आत्मा अकर्ता है इसलिये हिंसादि व्यवहार से है।

प्र0358 मिथ्याज्ञान का घात कैसे करे ?

उ0 शब्दादि पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा रूप और शरीर के साथ ममत्व रूप से होने वाला अनंतानु बंध्यादि राग-द्वेष रूप मिथ्याज्ञान है वह ज्ञाना वरणादि कर्मो के बंध का निमित्त कारण है। इस आत्मा के मन में निवास करता है। उस मिथ्याज्ञान का निर्विकल्परूप समाधिरूप हथियार से घात करना चाहिये ऐसा सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है।

प्र0359 सिर्फ मिथ्यादर्शन का घात करने से मोक्ष हो जायेगा क्या ?

उ0 सिर्फ मिथ्यादर्शन का घात करने से मोक्ष नहीं होगा। इसके

साथ मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र का भी घात करना अनिवार्य है जिससे मोक्ष होता है।

प्र0360 घात किसका किया नहीं जाता है ?

उ0 अचेतन शब्द आदि विषय रूप व द्रव्य कर्म और शरीर रूप पुद्‌गल-द्रव्य में कुछ भी घात नहीं कहां गया है। देखों, घड़े का आधारभूत जो कुछ भी है उसको नष्ट कर देने पर भी घड़ा नष्ट नहीं होता है, वैस ही रागादिभावों का निमित्त भूत जो पंचेन्द्रियों के विषय शब्दादिक है उसके नष्ट कर देने पर भी मन में होने वाले जो रागादिक है, उनका नाश नहीं होता है, क्योंकि अन्य के घात कर देने पर भी अन्य का घात नहीं होता, ऐसा न्याय है, अन्यथा फिर अतिप्रसंग दोष आता है कोई भी व्यवस्था नहीं बनती।

प्र0361 आप घात का निषेध करके क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

उ0 वस्तु का घात अघात करते वक्त वस्तु के उत्पत्ति के आधारभूत उपादान शक्ति और निमित्त शक्ति, निमित्त शक्ति पर्याय के आधीन और नाशवान घात से युक्त है, लेकिन उपादान शक्ति द्रव्य के आश्रय से युक्त हमेशा विद्यमान अविनश्वर है अन्यथा द्रव्य का अभाव होगा यहाँ पर घड़े के आधार भूत जो उपादान शक्ति से युक्त है उसकी अपेक्षा घड़े का कभी नाश नहीं होता है, क्यों कि घड़े का आधार माटी है वह चाहे घड़ा है चाहे खपर हो माटी का कभी नाश नहीं होता, इसलिये शब्दादिक जो पुद्‌गल वर्गणा है वह पुद्‌गल रूप हमेशा विद्यमान रहेंगे। पुद्‌गल का स्वरूप छोड़कर अन्य रूप कभी नहीं होगे अन्यथा अनवस्था नामक महान दोष उत्पन्न होगा।

प्र0362 आचार्य ने उपादान शक्ति का वर्णन करके क्या संबोधन किया है ?

उ0 कोई नया शिष्य अपने चित्त में ठहरे हुए राग द्वेषादि भावों

को तो जानता नहीं है किन्तु उन रागादिकों में निमित्त पड़ने वाले वहिरंगभूत शब्दादि विषयों का घात करने की चेष्टा करता है, क्योंकि वह मानता है इन शब्दादिको ने ही मेरे रागदि पैदा किया है अतः इनको नष्ट कर दूँ ऐसा सोचता है, क्योंकि उसके निर्विकल्प समाधि ही है लक्षण जिसका ऐसा जो भेदज्ञान है उसका अभाव है। उस शिष्य को संवोधन किया है।

प्र0363 प्रयत्न किस तरह करना चाहिये ?

उ0 अज्ञानी जीव रागद्वेष की उत्पति को परद्रव्य से मानकर परद्रव्य के ऊपर कोप करता है, कि इस परद्रव्य ने मेरे राग द्वेप उपजा दिये। अत उस रागद्वेप को नष्ट करने के लिये इस परद्रव्य को नष्ट करुं इस प्रकार व्यर्थ उलझन में पड़ जाता है उसे समझाने के लिये ही आचार्य श्री ने यह वात कही है कि हे भाई ! रागद्वेष की उत्पति तो अपने अज्ञान भाव से अपने में ही होती है। यह सव रागद्वेप तेरे ही अशुद्ध परिणाम है, सो अज्ञान नाश को प्राप्त हो और सम्यग्ज्ञान प्रगट हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

प्र0364 आत्मा कैसे रहता है ?

उ0 दर्शक आत्मा भी निश्चय से दृश्यरूप जो घट पटादि पदार्थ है उनका दर्शक नहीं होता है अर्थात् उनके साथ में तन्मय नहीं होता। तो क्या होता ? कि दर्शक तो दर्शक ही होता है अपने स्वरूप में रहता। इस प्रकार सत्तावलोकन रूप दर्शन दृश्यमान पदार्थों के द्वारा पररूप में परिणमन नहीं कर जाता है।

प्र0365 ज्ञान अपने स्वभाव में कैसे रहता है ?

उ0 जैसे संसार में हम देखते हैं कि श्वेतिका अर्थात् सफेद खड़िया मिट्टी निश्चय से परद्रव्य रूप भींत आदि की नहीं हो जाती अर्थात उससे लगकर भी भिन्न रहती है तन्मय नहीं होती

किन्तु बाहर में ही रहती है अर्थात् श्वेतिका तो श्वेतिका ही हैं और अपने आपके स्वरूप में ही रहती है। इसी श्वेत मिट्टी के दृष्टान्त द्वारा ज्ञानात्मा भी निश्चय के द्वारा घट पटादि ज्ञेय पदार्थों का ज्ञायक नहीं होता है। अर्थात् उन्हें जानते हुए भी उनसे तन्मय नहीं होता। फिर क्या होता है ? कि ज्ञायक तो ज्ञायक ही होता है। अपने स्वभाव में रहता है। इस प्रकार यहाँ पर आचार्य देव ने बतलाया है कि ज्ञान ज्ञेय के रूप में परिणमन नहीं करता जैसा कि ब्रह्म अव्दैतवादियों के यहाँ ज्ञान ज्ञेयरूप स्वभाव विशेष में परिणमन कर जाता है।

प्र0366 संयमी आत्मा का परिणमन कैसे होता है ?

उ0 संयत आत्मा त्याज्य जो परिग्रहादि परद्रव्य है उनका निश्चय से त्यागने वाला नहीं होता अर्थात् उनके साथ में तन्मय नहीं होता। तो क्या होता है कि संयत तो संयत ही रहता है अर्थात् निर्विकार अपना मनोहर आनन्द है लक्षण जिसका ऐसे अपने स्वरूप में ही रहता है।

प्र0367 सम्यग्दर्शन कैसा है ?

उ0 जो तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है वह श्रध्दान करने योग्य जो बहिर्भूत जीवादि पदार्थ है उनका श्रध्दान करने वाला निश्चय से नहीं होता अर्थात् उनके साथ तन्मय नहीं होगा। तो क्या होता है सम्यग्दर्शन तो सम्यग्दर्शन ही है अपने स्वरूप में रहता है।

प्र0368 परद्रव्य का जानना व्यवहार से ही होता है तब फिर सर्वज्ञ भी व्यवहार से ही कहे जायेगें, निश्चय से नहीं ?

उ0 हे भाई ! जिस प्रकार आत्मा अपने सुखादि को तन्मय होकर जानता है वैसे बाह्य द्रव्यों को तन्मय होकर नहीं जानता इसलिये उस जानने को व्यवहार से जानना कहा है। यदि दूसरे के सुखादि को भी यह आत्मा अपने सुखादि के समान तन्मय

होकर जाने तब तो जैसे अपने संवदेन में सुखी होता है। उसी प्रकार पर के सुख दुख के संवेदन की अपेक्षा तो निश्चय रूप है काल में भी सुखी दुखी होना चाहिये सो वह होता नहीं है। यद्यपि सर्वज्ञ का ज्ञान स्वकीय सुख संवेदन की अपेक्षा तो निश्चय रूप है किन्तु परकीय सुख के संवेदन की अपेक्षा से वही सर्वज्ञ का ज्ञान व्यवहार रूप है अर्थात् परकीय सुख को जानता है फिर भी उससे भिन्न है इसलिये उसे व्यवहार रूप कहा गया है किन्तु छद्मस्थ की अपेक्षा तो दूसरे के सुख को जानने वाला सर्वज्ञ का ज्ञान भी वास्तविक है निश्चय है।

प्र0369 बौद्धमती भी ऐसा कहते है कि हमारे सौगत बुद्ध भगवान् व्यवहार से सर्वज्ञ है फिर आप उनको दूषण क्यों देते हो ?

उ0 सौगत आदि के मत में जैसा निश्चय की अपेक्षा व्यवहार सत्य नहीं है, वैसा ही व्यवहार से भी व्यवहार इनका झूठा ही है, किन्तु जैनमत में तो व्यवहार नय यद्यपि निश्चय नंय की अपेक्षा मिथ्या है किन्तु व्यवहार रूप में तो सत्य ही है। यदि लोक व्यवहार रूप में भी सत्य न हो तो फिर सारा लोक व्यवहार मिथ्या हो जाये, ऐसा होने पर कोई भी व्यवस्था नहीं बने। इसलिये जैसा ऊपर कहा गया है वह ठीक ही है।

प्र0370 ज्ञानी आत्मा अपने आपको कैसे दूर अर्थात् अलग करता है ?

उ0 जो कारण समयसार इस लोक और परलोक की आकांक्षमय ख्याति, पूजा और लाभ तथा दृष्ट, श्रुत और अनुभूत जो भोग उनकी आकांक्षा रूप निदान बंध इत्यादि समस्त पर द्रव्यों का जो आलम्बन उससे उत्पन्न शुभाशुभ संकल्प विकल्प से रहित तथा विशुद्धज्ञान दर्शनस्वभाव जो आत्म भाव उसके समीचीन श्रद्धान, ज्ञान और अनुभवरूप जो अभेद रत्नत्रय सो ही है आत्मा अर्थात् स्वरूप जिसका ऐसी जो निर्विकल्प रूप परम

समाधि उससे उत्पन्न हुआ सो वीतराग सहज परमानन्द स्वभावरूप सुखरस का आस्वाद वही हुआ समरसीभाव परिणाम, इसके आलम्बन से भरा पूरा है और जो केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की अभिव्यक्ति रूप कार्य समयसार का समुत्पादक है ऐसे उस कारण समयसार में स्थित होकर अपने आपको दूर कर लेता है।

प्र0371 निश्चय प्रतिक्रमण कब होता है ?

उ0 अनेक प्रकार के विस्तार से विस्तीर्ण जो पूर्व काल के किए हुए शुभाशुभ कर्म है उनसे दूर कर लेता है, वह पुरुष ही अभेदनय (निश्चय नय) से निश्चय प्रतिक्रमण होता है।

प्र0372 निश्चय प्रत्याख्यान कब होता है ?

उ0 शुभ और अशुभ रूप अनेक प्रकार के फैलाव में फैला हुआ भविष्यत् कालीन कर्म जिस मिथ्यात्व या रागादि रूप परिणाम के होने पर बन्धता है उस परिणाम से बचा लेता है दूर रखता है इस प्रकार के गुणवाला वह तपोधन ही अभेदनय से निश्चयरूप प्रत्याख्यान होता है।

प्र0373 निश्चय आलोचना कब होता है ?

उ0 जो कोई कर्म है वह मेरा किया हुआ दोष है, किन्तु वह मेरा स्वरूप नहीं है, वह कौनसा कर्म है ? जो कि उदय में आ रहा है। फिर वह कैसा है ? शुभ और अशुभरूप है। फिर कैसा है कि मूल और उत्तर प्रकृति के भेद से अनेक प्रकार के फैलाव में फैला हुआ है। जो कि वर्तमानकाल में स्पष्ट हो रहा है। सो वह उपर्युक्त प्रकार से जानने वाला आत्मा ही अभेदनय से आलोचना रूप होता है।

प्र0374 वचन कैसे है ?

उ0 नाना प्रकार भाषा वर्गणा योग्य पुद्‌गल द्रव्य से बने हुये नाना

प्रकार के निंदा और स्तुति के वचन रूप परिणमन करते हैं।

प्र0375 ज्ञानी क्या जानकार इष्ट और अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता है ?

उ0 ज्ञानी तो व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग जो पहले कह आये हैं उन दोनों स्वरूप जो दो प्रकार का कारण समयसार है उनको जानकर इन बहिरंग इष्ट अनिष्ट विषयों में राग द्वेष नहीं करता है।

प्र0376 ज्ञानी निन्दा और स्तुति को क्या समझता है ?

उ0 मर जावो या जीते रहो इत्यादि रूप निन्दा और स्तुति जो भाषा वर्गणा योग्य पुद्गल द्रव्य है, उस पुद्गल द्रव्य का गुणधर्म यदि शुद्धात्मा के स्वरूप से पृथक् रूप है, जड़ता लिये हुए है तो फिर उससे जीव को क्या हानी लाभ है ? कुछ भी नहीं है। इस तरह ज्ञानी समझता है।

प्र0377 पंचेन्द्रिय के विषय में आचार्य देव ने अज्ञानी जीवों को क्या संदेश दिया है ?

उ0 आचार्य महाराज कहते है कि शब्दरूप में परिणत हुआ पुद्गल द्रव्य है उसका गुण तो पुद्गलमय है, तेरे से अन्य है, इसलिए हे भोले प्राणी तुझे तो उसने कुछ भी नहीं कहा है, तू अज्ञानी हुआ क्यों रोष करता है यदि। देख अशुभ या शुभ शब्द है वह तुझे ऐसा कहता है क्या, कि तू मुझे सुन ? अपितु नहीं कहता और श्रोत इन्द्रिय के विषय में आये हुए शब्द को ग्रहण करने के लिए आत्मा भी नहीं दौड़ता। इसी प्रकार अशुभ या शुभ गंध भी तुझे ऐसा नहीं कहता कि मुझे सूंघ और घ्राण इन्द्रिय के विषय में आये हुए गन्ध को ग्रहण के लिए आत्मा भी नहीं दौड़ता। इसी प्रकार अशुभ या शुभ गंध भी तुझे ऐसा नहीं कहता कि उसे सूंघ और घ्राण इन्द्रिय के विषय में आया हुआ स्पर्श के ग्रहण करने को आत्मा भी नहीं माना जाता।

इसी प्रकार किसी भी बाह्य द्रव्य का गुण जो अशुभ तथा शुभ है वह तुझे ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जान बुद्धि के विषय में आए हुए गुण को ग्रहण करने के लिए आत्मा भी नहीं दौड़ता। इसी प्रकार अशुभ तथा शुभ द्रव्य है वह भी तुझे ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जान और बुद्धि के विषय में आये हुए द्रव्य के ग्रहण करने को आत्मा दौड़ नहीं लगाता। ऐसा जानकर भी मूढ़ जीव उपशमभाव को प्राप्त नही होता प्रत्युत पर के ग्रहण करने का मन करता है क्योंकि इसे द्रव्य के स्वरूप को कल्याणकारी बुद्धि अर्थात् समुचित समीचीन ज्ञान की प्राप्ति नही हुई है।

प्र0378 चेतना कितने प्रकार की है ?

उ0 चेतना दो प्रकार की है (1) ज्ञान चेतना (2) अज्ञान चेतना।

प्र0379 अज्ञान चेतना कितनी प्रकार की है ?

उ0 अज्ञान चेतना दो प्रकार की है।

(1) कर्म चेतना (2) कर्म फल चेतना।

प्र0380 कर्म चेतना किसे कहते है ?

उ0 यह मेरा है, मैंने ही इसे किया है इस प्रकार अज्ञान भाव विषयों के द्वारा वीतराग जो शुद्धात्मानु भूति है उससे च्यूत हुए जीव का जो इष्ट अनिष्ट रूप से इच्छापूर्वक मन, वचन, काय की चेष्टा करना है वह कर्म चेतना कहलाती है।

प्र0281 कर्म फल चेतना किसे कहते है ?

उ0 स्वस्थ भाव से रहित अज्ञान भाव के द्वारा यथा सम्भव व्यक्त अथवा अव्यक्त (अप्रकट) रूप से इच्छा पूर्वक इष्ट और अनिष्ट विकल्प के रूप में हर्ष विषाद मय सुख दुख का अनुभव होना सो कर्मफल चेतना कहलाती है।

प्र0282 ज्ञान चेतना किसे कहते हैं ?

उ0 निश्चय रत्नत्रय अर्थात् स्वरूपाचरणमय होने का नाम ही ज्ञान चेतना है अथवा निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान, निश्चय आलोचना है स्वरूप उसमें स्थित होना ज्ञान चेतना है।

प्र0283 कर्म चेतना त्याग की भवना से क्या होता है ?

उ0 कर्म चेतना त्याग की भावना से कर्म बंध का विनाश होता है। अर्थात् नवीन कर्म बंध नहीं होता है।

प्र0284 सप्त भंग प्रतिक्रमण कल्प के कौन से है ?

उ0 (1) मन (2) वचन (3) काय (4) मन, वचन (5) वचन, काय (6) काय, मन (7) मन, वचन, काय इस प्रकार सप्त भंग है।

प्र0385 क्रिया की अपेक्षा सप्त भंग कौन सी है ?

उ0 क्रिया की अपेक्षा (1) कृत (2) कारित (3) अनुमोदना (4) कृत, कारित (5) कारित, अनुमोदना (6) कृत, अनुमोदना (7) कृत, कारित, अनुमोदना।

प्र0286 कृत क्रिया के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) मन कृत (2) वचन कृत (3) काय कृत (4) मन, वचन कृत (5) वचन, काय कृत (6) मन, काय कृत (7) मन, वचन, काय कृत इस तरह कृत के सप्त भंग हैं।

प्र0287 कारित के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) मन, कारित (2) वचन कारित (3) काय कारित (4) मन, वचन कारित (5) वचन, काय कारित (6) काय, मन कारित (7) मन, वचन काय कारित इस तरह कारित के सात भंग हैं।

प्र0388 अनुमोदना के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) मन अनुमोदना (2) वचन अनुमोदना (3) काय अनुमोदना

(4) मन, वचन अनुमोदना (5) वचन, काय अनुमोदना (6) वचन, काय अनुमोदना (7) मन, वचन, काय अनुमोदना इस तरह सप्त भंग हैं।

प्र0389 कृत, कारित के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) मन कृत कारित (2) वचन, कृत कारित (3) काय, कृत और कारित (4) मन, वचन कृत कारित (5) वचन काय कृत कारित (6) काय मन कृत कारित (7) मन, वचन, काय कृत कारित इस तरह सप्त भंग हैं।

प्र0390 कारित अनुमोदन के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) मन कारित अनुमोदन (2) वचन कारित अनुमोदन (3) काय कारित अनुमोदन (4) मन वचन कारित अनुमोदन (5) वचन काय कारित अनुमोदन (6) काय मन कारित अनुमोदन (7) मन वचन काय अनुमोदन इस प्रकार सप्त भंग हैं।

प्र0391 कृत अनुमोदना के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) मन कृत अनुमोदना (2) वचन कृत अनुमोदना (3) काय कृत अनुमोदना (4) मन वचन कृत अनुमोदना (5) वचन काय कृत अनुमोदना (7) मन, वचन, काय कृत अनुमोदन इस तरह सप्त भं हैं।

प्र0392 कृत, कारित, अनुमोदन के सप्त भंग कौन से हैं ?

उ0
1. मन कृत कारित अनुमोदन।
2. वचन कृत कारित अनुमोदन।
3. काय कृत कारित अनुमोदन।
4. मन वचन कृत कारित अनुमोदन।
5. वचन काय कृत कारित अनुमोदन।
6. काय मन कृत कारित अनुमोदन।

7. मन वचन काय कृत कारित अनुमोदन। इस तरह सप्त भंग है।

प्र0393 प्रतिक्रमण कल्प के उनचास भंग कौन से हैं ?

उ0 (1) कृत के सात (2) कारित के सात (3) अनुमोदना के सात (4) कृत कारित के सात (5) कारित अनुमोदना के सात (6) कृत अनुमोदना के सात (7) कृत, कारित अनुमोदना के सात। इस तरह उनचास भंग हैं।

प्र0394 प्रत्याख्यान कल्प किसे कहते हैं ?

उ0 जो मैं करूँगा, करते हुए अन्य को भला मानूँगा, वचन से, काय से किसी भी प्रकार से यह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो जाय यह छहों के संयोग रूप पहले के अनुसार एक पहला भंग हुआ। इसी प्रकार मैं करूँगा मैं कराऊँगा और करते हुए अन्य को भला मानूँगा-मन से, वचन से, काय से सो मेरा दूषकृत्य मिथ्या होवे यह पंच संयोगी भंग भी पूर्व कहे अनुसार अर्थात् प्रतिक्रमण कल्प में जो उनचास भंग बताये हैं उसी प्रकार। एक एक हो हटा देने पर तीन प्रकार का होता है। इसी प्रकार प्रत्याख्यान कल्प के भी उनचास भंग हो जाते हैं।

प्र0395 आलोचना कल्प का स्वरूप क्या होती है ?

उ0 जैसे कि जो मैं करता हूँ, कराता हूँ अथवा करते हुए अन्य को अच्छा मानता हूँ मन से, वचन से, काय से, यह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो जाये यह पहले के समान होता है के संयोग रूप पहला भंग हुआ। इसी प्रकार जो मैं करता हूँ कराता हूँ, और करते हुए अन्य प्राणी को भला मानता हूँ मन से, वचन से, सो सब मेरा दुषकृत्य मिथ्या हो जाये इसी प्रकार क्रम से एक एक को कम करने पर पंच संयोगात्मक तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार उनचास भंग होते हैं।

प्र0396 कर्म फल भावना का स्वरूप क्या है ?

उ0 जैसे कि मैं मतिज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता है। तब फिर क्या करते हो ? कि मैं तो शुद्ध चैतन्य स्वभाव आत्मा को ही भले प्रकार का अनुभव करता है। मैं श्रुत ज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता। तब फिर क्या करते हो ? कि शुद्ध चैतन्य स्वभाववाली अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ। अवधिज्ञानावरण कर्म के फल को नहीं भोगता। तब फिर क्या करते हो ? कि शुद्ध चैतन्य स्वभाववाली अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ। मैं मन पर्याय ज्ञानवरण कर्म के फल को भी नहीं भोगता। तब फिर क्या करते हो ? कि शुद्ध चैतन्य स्वभाववाली आत्मा का ही अनुभव करता हूँ। मैं केवल ज्ञानावरण कर्म के फल को भी नहीं भोगता। तब फिर क्या करते हो ? शुद्ध चैतन्य स्वभाववाली अपनी आत्मा का ही अनुभव करता हूँ। इस प्रकार पाँच प्रकार के ज्ञानावरणी कर्म के रूप में कर्म फल संज्ञा वाली भावना का स्वरूप है।

प्र0397 ज्ञान क्या है ?

उ0 जो निरन्तर सदा ज्ञेय रूप वस्तु को जानता है ऐसा जीव ज्ञायक है तथा ज्ञानी है। यह जीव कौन ? जो ज्ञान रूप है। यह ज्ञान यद्यपि जीव से अव्यतिरिक्त अभिन्न है, तथा संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि के भेद से भिन्न है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार निश्चय से जीव भी ज्ञान गुण से अभिन्न है। इसके सिवाय अपवाद विशेष रूप से यह है कि ज्ञानीजन ज्ञान को आत्मा स्वरूप मानते हैं। सम्यग्दृष्टि, जीव के गुण स्वरूप सम्यग् दर्शन को, इन्द्रिय संयम तथा प्राणी संयम रूप बाह्य संयम के बल से प्रकट शुद्धात्मानुभूति रूप संयम को, अंगपूर्व ज्ञान के बल से प्रकट शुद्धात्मादि की परिच्छिति रूप भाव श्रुत को, भाव पुण्य पाप को तथा रागदि रूप इच्छा के निरोध रूप

लक्षण से युक्त स्वरूप की लीनता रूप प्रव्रज्या को विवक्षता वश आत्म स्वरूप मानते हैं।

प्र0398 **तपश्चरण आदि जो है वह किस नय से ज्ञान कहाँ जाता है ?**

उ0 मिथ्यादृष्टि को आदि लेकर क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थान पर्यन्त अपने अपने गुणस्थान के योग्य शुभ, अशुभ अथवा शुद्धोपयोग के साथ अविनाभाव रखने वाला जो विवक्षित अशुद्धनिश्चयनय है जो कि अशुद्ध उपादान रूप है। उस अशुद्धनय के द्वारा यह सब ज्ञान माना जाता है।

प्र0399 **प्रायोगिक गुण किसे कहते हैं ?**

उ0 कर्म के संयोग जनित गुण को प्रायोगिक गुण कहते हैं।

प्र0400 **वैस्रासिक गुण किसे कहते हैं ?**

उ0 स्वभावजन्य गुण को वैस्रासिक गुण कहते हैं।

प्र0401 **कर्मोंके निमित से जो उत्पन्न हुआ प्रायोगिक गुण है उससे तो आहार भी ग्रहण करते हैं फिर ये सब अनाहारक कैसे माने जा सकते हैं ?**

उ0 है भाई! तुमने जो कहा है सो ठीक ही है किन्तु निश्चय के साथ जो तन्मय नहीं होता वहीं व्यवहार नय है। किन्तु समयसार में निश्चय की व्याख्यान किया जा रहा है।

प्र0402 **कौन से गुण में आहार ग्रहण नहीं होता है ?**

उ0 वैस्रासिक गुण से वह आत्मा परद्रव्य रूप आहारादि को वह न तो ग्रहण करता है और न छोड़ सकता है।

प्र0403 **जीव का स्वरूप क्या नहीं है ?**

उ0 कर्म आहार, नोकर्म अहार, कवलाहार, लेपाहार ओजा आहार, मानसिक आहार के रूप में जीव अजीव के भेद से जितने भी द्रव्य हैं उनमें से सचित आहार तथा अचित आहार किसी प्रकार

के आहार को न तो ग्रहण ही करता है और न ही छोड़ता है। क्योंकि नोकर्म आहार रूप जो शरीर है वह जीव का स्वरूप नहीं है और जब शरीर का अभाव है तो शरीरमय जो द्रव्यलिंग है वह भी जीव का स्वरूप नहीं है।

प्र0404 मोक्ष कौन से ज्ञान से होता है ?

उ0 केवल ज्ञान तो फलस्वरूप होता है जो कि आगे जाकर होगा। अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान ये दो ज्ञान "रुपिष्वधे और तदनन्तभागें मन पर्ययस्य" इन सूत्रों के अनुसार मूर्त पदार्थ को ही विषय करने वाले हैं इसलिए मूर्त हैं। अत ये दोनों ज्ञान भी मोक्ष के कारण नहीं हो सकते। इसलिए सामर्थ्य से यह बात सिद्ध हुई कि बहिर्विषयक मतिज्ञान श्रुतज्ञान के विकल्प रहित होने के कारण जो ज्ञान अपने शुद्धात्मा के अभिमुखरूप परिच्छिति (जानकारी) ही है लक्षण ऐसा तथा निश्चित रूप से निर्विकल्प भावना रूप मानस मतिज्ञान है नाम जिसका तथा पंचेन्द्रिय का विषय न होने से अतिन्द्रिय है ऐसा और जो शुद्ध पारिणामिक भाव के विषय में जो भावना रूप है तथा निर्विकल्प स्वसंवेदन शब्द के द्वारा जिसको कहा जाता है, एवं सांसारिक जीवों को क्षायिक ज्ञान नहीं होता है इसलिए क्षयोपशमिकरूप है ऐसा जो विशिष्ट भेदज्ञान होता है वही मुक्ति का कारण है।

प्र0405 सिद्ध कैसे होते है ?

उ0 जो कोई भी सिद्ध होते है वे सब नियमपूर्वक भेदविज्ञान के द्वारा ही अर्थात् निर्विकल्प शुद्ध आत्मध्यान के द्वारा ही होते है जब वह शुद्ध आत्म ध्यान नहीं रह पाता उस समय फिर से कर्म बंध करने लगते हैं अर्थात् कर्म बंध से छूटने का उपाय एक निर्विकल्प शुद्धात्मा का ध्यान भेद विज्ञान ही है।

प्र0406 कौन सा द्रव्य लिंग मुक्ति का कारण नहीं है ?

उ0 जो मोही है अर्थात् रागादि विकल्प की उपाधि से रहित परम समाधिरूप भावलिंग के विषय के जानकर नहीं है, ये नाना प्रकार के बनावटी साधुओं के भेष अथवा गृहस्थों के भेष से लेकर बैठते हैं यह द्रव्यमय मेरा भेष मुझे मुक्ति प्राप्त करा देगा उसके लिऐ आचार्य कहते है कि भावलिंग से रहित अर्थात् अंतरंग शुद्धि से रहित केवलमात्र शरीर पर स्वीकार किया हुआ द्रव्यलिंग ही मोक्ष का मार्ग नहीं अर्थात् उसका मुक्ति का कारण नहीं है पुण्य बंध का ही कारण है।

प्र0407 द्रव्य लिंग मुक्ति का कारण क्यों नहीं है ?

उ0 लिंग का आधार जो उसके ममत्व को मन वचन काय से छोड़कर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की सेवा करते हैं। अर्थात् चिदानंद ही है एक स्वभाव जिसका ऐसा जो शुद्धतत्व उसके विषय में जो श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं उनकों बार-बार उपार्जन नहीं करने से मुक्ति का कारण नहीं है।

प्र0408 मोक्ष मार्ग क्या नहीं है ?

उ0 निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग से सर्वथा रहित जो पाखंडी गृहस्थों के द्वारा स्वीकार किये जो नाना भेष हैं वे मोक्ष मार्ग नहीं है।

प्र0409 वे भेष कौन-कौन से हैं ?

उ0 अंतरंग शुद्धि के बिना बाह्य में सर्वथा निग्रंथ होकर रहना अथवा कोपीन धारण करना आदिरूप बहिरंग अकारक चिन्हरूप है ये सब मोक्षमार्ग नहीं है।

प्र0410 मोक्ष मार्ग क्या है ?

उ0 शुद्ध-बुद्ध रूप एक स्वभाव वाला जो परमात्मतत्व उसका श्रद्धान, ज्ञान और अनुभव ही है स्वरूप जिसका ऐसा

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्ष मार्ग है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

प्र0411 **द्रव्य लिंग का निषेध किनको बताया है ?**

उ0 जो निर्विकार स्वसंवेदन ज्ञानरूप जो भावलिंग हैं उससे रहित होने वाले सागार गृहस्थ और अनगार त्यागी मुनियों के द्वारा मात्र बाह्य में ग्रहण किये हुए द्रव्य लिंगों को छोड़कर असंयम में न आते हुए निर्विकल्प दशा में बाधक होने से अपने विकल्प को हटाने का उपदेश दिया है।

प्र0412 **आचार्य ने भव्य को क्या उपदेश दिया है ?**

उ0 हे भव्य! तू अपने आप को मोक्षमार्ग में स्थापित कर, उसी का अनुभव कर और उसी आत्मा में ही निरन्तर विहार कर अन्य द्रव्यों में विहारमत कर।

प्र0413 **समयसार को कौन से लोग जानते नहीं हैं ?**

उ0 जो लोग नाना प्रकार के पाखण्डी लिगों में और गृहस्थ लिंगों में ही ममत्व किये हुए हैं, वे लोग समयसार को नहीं जानते हैं।

प्र0414 **यति लिंग कैसा होता है ?**

उ0 विकार रहित शुद्धात्मा का सवंदेन ही है लक्षण जिसका ऐसे भांवलिंग से युक्त जो निग्रन्थ यति लिंग होता है।

प्र0415 **बाह्य लिंग मोक्ष का कारण है या नहीं ?**

उ0 बाह्य लिंग भाव लिंग में कारण होने से व्यवहार नय से तो मुनि और श्रावक के भेदों से दोनों प्रकार के ही लिंगों को मोक्षमार्ग मानता है किन्तु निश्चय नय सब ही बाह्यलिंगों में से किसी को भी मोक्षमार्ग नहीं मानता है इसका कारण पूर्व में अनेक बार कहा है।

प्र0416 **द्रव्यलिंग का निषेध कर आचार्य ने क्या संबोधन किया है ?**

उ0 द्रव्यलिंग का निषेध किया है उसे सर्वथा निषिद्ध ही मान लेना, किन्तु निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग है उससे रहित होने वाले मतियों को संबोधन किया है कि हे तपोधन लोगों! तुम अपने इस द्रव्यलिंग मात्र के आधार से निश्चयरत्नायात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावना को प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहिए।

प्र0417 लिंग मोक्षमार्ग नहीं है इसका तात्पर्य क्या है ?

उ0 द्रव्य लिंग मोक्षमार्ग नहीं है, इस वचन से भावलिंग रहित द्रव्यलिंग का निषेध किया है न कि भावसहित द्रव्यलिंग का क्योंकि द्रव्य लिंग का आधारभूत जो देह है उसके ममत्व का यहाँ निषेध किया है न कि द्रव्यलिंग का। क्योंकि पहले दीक्षा ली गई उस समय सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग किया गया है तब वहाँ देह का त्याग नहीं किया जा सकता अतः फिर वीतराग रूप ध्यान के काल में यह मेरा देह है, मैं लिंगी हूँ इत्यादि विकल्प के द्वारा भी नहीं करना योग्य है इसी कथन से देह का ममत्व छुड़ाया है।

प्र0418 द्रव्यलिंग और भावलिंग का संबंध क्या है ?

उ0 जैसे शालि तंदूल के बहार में जब तक तुषलगा रहे तब तक अंतरंग के तुषकों नहीं छुड़ाया जा सकता। जहाँ अंतरंग तुषका त्याग होता है वहां उसके बहिरंग तुष का त्याग अवश्य होता ही है। इस न्याय से जहां सर्वसंग अर्थात् परिग्रह के त्यागरूप बहिरंग द्रव्यलिंग होता है वहां भावलिंग होता भी है और नहीं भी होता, कोई एक नियम नहीं हैं। किन्तु अंतरंग भावलिंग जहां होता है वहाँ सर्व परिग्रह त्यागरूप द्रव्यलिंग अवश्य होता ही है ऐसा नियम है।

प्र0419 भाव लिंग होता है वहां बहिरंग द्रव्यलिंग होता ही ऐसा नियम नहीं क्योंकि साहोरणासाहारण इत्यादि आगम वचन मिलता है ?

उ0 बात ऐसी है कि कोई तपस्वी ध्यान में बैठे हुए तपस्वी के कपड़ा लपेट जाये या उसे कोई आभूषण आदि पहना दे तो भी वह तो निग्रन्थ ही रहता है क्योंकि उसके बुद्धि पूर्वक ममत्व का अभाव है इसलिए कोई दोष नहीं है।

प्र0420 केवलज्ञान तो शुद्ध होता है और छद्मस्थों का ज्ञान अशुद्ध, वह छद्मस्थों का ज्ञान अशुद्धरूप केवलज्ञान का कारण नहीं हो सकता क्योंकि "सुद्धं तु वियाणंतो शुद्ध मेवप्पयं लहदि जीवो" इस प्रकार इसी समयसार में वचन आया है अर्थात् शुद्ध को जानने वाला ही आत्मा शुद्ध बनता है ऐसा समयसार में लिखा है ?

उ0 तुम जैसा कहते हो ऐसा नहीं है। अपितु छदमस्थ का ज्ञान कथांचित शुद्ध भी होता है तो कथांचित अशुद्ध भी। केवल ज्ञान की अपेक्षा तो छद्मस्थ का ज्ञान अशुद्ध ही होता है किन्तु मिथ्यात्व और रागादि रहित हो जाने के कारण वह शुद्ध भी होता है। अभेदनय से वह छद्मस्थ सम्बन्धित भेद विज्ञान आत्म स्वरूप ही होता है, इसलिए एकदेश व्यक्तिरूप उस ज्ञान के द्वारा सकलदेश व्यक्तिरूप केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसमें कोई दोष नहीं है।

प्र0421 मोक्ष कौन से भाव से होता है ?

उ0 जीव के भाव औपशमिक, क्षयोपशमिक, क्षायिक औदायिक और पारिणामिक के भेद से पाँच प्रकार के हैं उनमें औदायिक भाव तो बधं का कारण है और औपशमिक भाव क्षयोपशमिक भाव, क्षयिक भाव मुक्ति देने वाला है। परिणामिक भाव निष्क्रिय होता है।

प्र0422 क्षयोपशमिक भाव कैसे होता है ?

उ0 क्षयोपशमिक रूप भाव श्रुतज्ञान ही है जो कि वीतराग सम्यकत्व और चारित्र के साथ में नियम से होता है, और जो

निर्विकल्प रूप शुद्धात्मा की परिच्छितिरूप शब्द से कहा जाता है। ऐसा वह भावश्रुतज्ञान जो कि क्षयोपशमिक होता है वही मोक्ष का कारण है।

प्र0423 पारिणामिक भाव कैसे हैं ?

उ0 शुद्ध पारिणामिक भाव कथंचित भेदाभेदात्मक द्रव्य पर्याय स्वरूप जो जीव पदार्थ कथांचित हैं उसकी एकदेश अभिव्यक्ति वाला शुद्धभावना रूप अवस्था में ध्येय रूप द्रव्य में रहता है न कि ध्यान पर्याय में क्योंकि ध्यान विनश्वर हुआ करता है।

प्र0424 समयसार का फल कया है ?

उ0 कोई भी जीव इस समयप्राभृत नाम के ग्रन्थ को पढ़कर, केवल पढ़कर ही नहीं अर्थ और तत्व से भी जानकर अर्थात उसके भाव को भी समझकर पश्चात शुद्धात्मा लक्षण वाले उपादेय पदार्थ में अर्थात् निर्विकल्प समाधि में लगे रहेगा वह आत्मा आगामी काल में वीतराग रूप सहजअपूर्व आह्लाद रूप सुख को प्राप्त करेगा।

प्र0425 सिद्ध कैसे होते हैं ?

उ0 जो सिद्ध होता है उसको वह परमसुख होता है जिसका कि आत्मा ही उपादान है अर्थात् आत्मा से ही उत्पन्न होता है, अपने आप अतिशय सहित है, सभी प्रकार की बाधाओं से रहित है विशाल है अर्थात् उससे अच्छा सुख दूसरा कोई नही है। हानि और वृद्धि से रहित है, विषयों की वासना से रहित है, जिसमें दुख का लेश भी नहीं है, जो अन्य द्रव्यों की अपेक्षा रखनेवाला दूसरा सुख नहीं है, सीमातीत है, सर्वकाल रहने वाला है। उत्कृष्ट है और अनन्त सार वाला है।

प्र0426 अतिन्द्रिय सुख कैसा है ?

उ0 देखों, कोई व्यक्ति स्त्री प्रसंग आदि पंचेन्द्रिय के विषय सुख व्यापार से रहित अवस्था में सभी प्रकार की आकुल व्याकुलता

से दूर होकर बैठा हुआ है उसको किसी ने आकर पूछा कि कहा भाई! सुख से तो हो ? इस पर वह उत्तर देता है कि सुख से हूं, तो यह सुख अतीन्द्रिय है क्योंकि संसारिक सुख विषयों के सेवन से पैदा होता है और यहाँ पंचेन्द्रियों के विषय के व्यापार का अभाव होते हुए भी दीख रहा है वह अतिन्द्रिय है। किन्तु यह जो सुख हो रहा है वह सामान्यात्मक साधारणसा अतीन्द्रिय सुख है। किन्तु जो पाँचों इन्द्रियों से और मन से होने वाले सभी प्रकार के विकल्प जालों से रहित ऐसे जो समाधिस्थ परम योगीराज को स्वसंवेदनात्मक अतीन्द्रिय सुख होता है वह विशेष रूप से होता है अर्थात् इससे भी और अपूर्व विशेषता लिये होता है जो मुक्तात्माओं को अतीन्द्रिय सुख है, वह हम तुम सरीखे लोगों के या तो अनुमानगम्य हैं या आगमगम्य हैं।

प्र0427 सिद्धों को एक समय का सुख कैसा है ?

उ0 वर्तमान में जो पुण्याधिकारी देव और मनुष्य हैं वे सब निरर्गल रूप से अपनी सभी इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले इन्द्रियजन्य और ऋद्धि आदि से प्राप्त हुए सुख भोग रहे हैं और जो महर्दिक सुख पहले भूत काल में पुण्याधिकारी देव और मनुष्यों ने भोगा है तथा आगे होने वाले पुण्याधिकारी देव और मनुष्य इन्द्रिय जन्य स्वादिष्ट और मनोरंजक सुख को भोगेंगे उस समस्त सुख से भी अनन्तगुण अतीन्द्रिय जन्य अपने स्वभाव से उत्पन्न होने वाला परमेश्वर सिद्ध भगवान को एक समय में होता है।

प्र0428 स्याद्वाद शब्द का क्या अर्थ है ?

उ0 स्यात् अर्थात कथंचित् विवक्षित प्रकार से अपनी विवक्षा को लिए हुए अनेकान्त रूप से बोलना, कथन करना सो स्याद्वाद है।

प्र0429 अनेकान्त किसे कहते हैं ?

उ0 एक ही वस्तु में वस्तुत्व को निष्पन्न करने वाली आस्तित्व-नास्तित्व दो परस्पर विरुद्ध सापेक्ष शक्तियों का जो प्रतिपादन किया जाता है उसका नाम अनेकान्त है।

प्र0430 समयसार प्रश्नोत्तर में कितने प्रश्न हैं ?

उ0 समयसार प्रश्नोत्तरी में प्रथम भाग में तीन सौ बयालीस और द्वितीय में चार सौ बत्तीस कुल मिलाकर सात सौ चौहत्तर मात्र हैं।

प्र0431 समयसार प्रश्नोत्तरी की गुरु परम्परा क्या है ?

उ0 समयसार प्रश्नोत्तरी की गुरु परंपरा ऐसी है दक्षिण प्रांत महाराष्ट्र राज्य जो नर्मदा नदी से कृष्णा नदी के बीच में बसा हुआ है उसमें सांगली जिला है उसमें कृष्णा नदी के किनारे बसा सुन्दर अंकली ग्राम है, वहां जन्में मुनि कुंजर समाधि सम्राट चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) और उनके पट्टाधीश तीर्थभक्त समाधि सम्राट मंत्र, तंत्र, यंत्र के ज्ञाता आचार्य परमेष्ठि महावीर कीर्ति उनके पट्टाधीश परम तपस्वी सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 सन्मति सागर के सुयोग्य शिष्य क्रांतिकारी धर्मोपदेशक सिद्धान्त के मर्मज्ञ प. पू. मुनि श्री सूर्य सागर। (अरगकर)

प्र0432 समयसार प्रश्नोत्तरी के कर्त्ता का सविनय सन्देश क्या है?

उ0 प्रश्नोत्तरी कर्ता का सन्देश यह है कि सभी स्वाध्याय प्रेमी जिनवाणी उपासक, विद्वान, त्यागी, व्रती एवं चतुर्विधि संघ नायक आचार्य परमेष्ठियों के चरणों में अल्पबुद्धि के धारक अगाध आगम के रहस्योंद्घाटन मे कोई भी किसी प्रकार के त्रुटि रही हो उसको सुधार कर पढ़ें एंव शब्द रूपी छल को ग्रहण न करके आशय एवं भाव को ग्रहण करें एवं जो ज्ञात

अज्ञात रूप से श्रुतका अथवा आर्ष परंपरा के विरुद्ध कोई वात हो तो उसे छोड़ कर वीर प्रभु एवं चतुर्विधि संघ के नायक क्षमा करें उनके चरणों में बारंबार त्रिवार सिद्धाभक्ति, श्रुतिभक्ति, आचार्य भक्ति पूर्वक नमोस्तु-नमोस्तु, नमोस्तु।

शुभ मंगलमय जिनवाणी

समयसार प्रश्नोत्तरी ग्रंथ पूर्णता दिनांक 7-9-1995 मिति

भाद्रपद शुक्ल तेरस वीनि. 2521-22 दिन गुरुवार

स्थान : वासुपूज्य दिगंबर जैन मंदिर, गांधी नगर

भारत की राजधानी दिल्ली-31

जिनागम का रहस्य

प० पू० सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य 108
श्री सन्मति सागर जी महाराज
(प० पू० आ० श्री महावीर कीर्ति जी के पट्टाधीश)

''आप्त वचनादि निवंधनमर्थ ज्ञानमागमः''

वचनादि से होने वाले ज्ञान को आगम कहते हैः इसको सिद्धांत, शास्त्र, तत्वार्थ, शासन के नाम से कहा जा सकता हैः इसके विपरीत रागी-द्वेषी, और अज्ञानी मनुष्यों के वचनों को आगमाभाष कहा जाता हैः आगम वचन गुरू परंम्परा अर्थात् सवज्ञदिव, गणधरदेव, प्रतिगणधरदेव, आरातीर्य आचार्य अर्वाचीन आचार्य, एवम् आचार्य श्रृँखलावद्ध रूप आगत आगम ज्ञान पापों का नाशक और पुण्य वर्द्धक होता है ! वह आगम द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का होता है ! भाव आगम का महत्त्व है कि आप्त के वचनों से होने वाले ज्ञान का लक्षण कहने में भी आप्त वचनों को सुनकर जो श्रावण प्रत्यक्ष होता हैं उसमें लक्षण की अति व्याप्ति हैं ! अतः अर्थ पद-तात्पर्य में रूढ़ हैं प्रयोजनार्थ हैं अर्थ ही तात्पर्य वचनों में है ! परन्तु द्रव्य आगम भी व्यर्थ नहीं होता। कारण में कार्य का उपचार करने से शब्द या श्रुत अथवा द्रव्य आगम कहना उचित है !

प्रत्येक आत्मा ज्ञानात्मक है आत्मा के प्रमाण से ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान के प्रमाण से आत्मा प्रमाण है ! जिन आत्माओं का ज्ञान पूर्ण प्रगट हो गया है ! पूर्ण ज्ञानी केवलज्ञानी हैं। इतर संसारी आत्मायें क्षायोपशमिक ज्ञानी होने से भेद युक्त हैं ! यथामनः पर्ययज्ञानी या अवधि ज्ञानी, श्रुत ज्ञानी और मति ज्ञानी कहलाती है ! पूर्ण ज्ञानी समस्त त्रिकालवर्ती द्रव्य गुण पर्यायों को जानता देखता हैं ! उस अवस्था को प्राप्त करने के लिये

क्षायोपशमिक ज्ञानी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार पुरूषार्थ करते हैः विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी, परमावधि, सर्वावधि वाले नियम से उसी पर्याय में पूर्ण ज्ञानी हो जाते हैं शेष अपनी केवली अवस्था को प्रगट करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं उन्हें तदनुकूल पुरूषार्थ की आवश्यकता हैं ! चारित्र मोहनीय कर्म का जितना अधिक क्षयोपशम होगा उतना ज्ञान भी प्रशस्त होता है ! ज्ञान का स्वभाव ही स्व पर प्रकाशक है, यही पूर्ण ज्ञानी रूप परिणमन कर संकलज्ञ हो सकता है ! परम्परागंत सम्यक् ज्ञान, शुद्धात्मोपलब्धि में सही कारण कहा जा सकता है ! कषाय की मन्द दशा में किया गया आगमाध्यन से उत्पन्न सम्यकज्ञान ही अवश्य उपयोगी है ! द्रव्य संग्रह टीकाकार कहते है कि "अन्यव्दापरमागमा" विरोधेन विचारणीयं" किन्तु विवादों न कर्तव्यः ! परमागम के अविरोध पूर्वक विचारना चाहिये, किन्तु कथन में विवाद नहीं करना चाहिये।

परम् पूज्य मुनि कुंजर समाधि सम्राट दिगम्बराचार्य श्री आदि सागर जी अंकलीकर बार-बार अपने उपदेश में कहते थे कि विवाद करने से अशुभ कर्मों का आसृव होता है। आत्मा नाना कुयोनियों में दुखी होती है ! आत्मा दीर्घ संसारी हो जाती है। अतएव सम्पूर्ण आगम आध्यात्म से अविरोध रूप से जानना चाहिए ! जब परम्परा का सहारा लेते हैं तब कहीं-कहीं पर विरोध भी सम्भव हो जाता है किसी आचार्य ने जो लिखा है उससे अन्य आचार्य ने भिन्न जाना है तो इसके विषय में धवला में कहा है कि विरोध प्राप्त होता है तो होओ, जो युक्ति सिद्ध है और आचार्य परंपरा से आया हुआ है उसमें असमाचीनता नहीं आ जा सकती है अन्यथाअति प्रसंग दोष आ जायेगा। धवल ग्रन्थ की पहली पुस्तक में लिखा है कि "किन्तुण तव्वयण्पणि एयाई आइल्लु आइरिय वयाणाइं वदोएयांण विरोहस्सत्थि संमवोइदि" वचनों में विरोध नहीं होना चाहिए ! परन्तु ये जिनेन्द्रदेव के वचन न होकर उनके पश्चात् आचार्यों के वचन हैं इसलिए उनमें विरोध होना भी सम्भव है।

आगम में एक शब्द को सूचित करने वाले अनेक शब्द पाये जाते हैं उदाहरण के लिए देखिये- सम्भग्दर्शन को आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्न करण्ड श्रावकाषार में सूचित किया है यथा सदृष्टि 3, श्रद्धान 4, रूचि 11, श्रद्धा 12, गुणप्रीति 13, दृष्टि 14, दर्शन 21, सम्यक् दर्शन 28 धर्म 29, सम्यक् 32, निर्मोह 33, जिनेंन्द्रभक्त 37, स्पष्टहस्त 38, दृष्टया सुनिश्चितार्थः 39, दर्शनशरण 40, जिन भक्त 41 !

आचार्य को भिन्न-भिन्न अनेक शब्दों से अनेक स्थानों से बताया गया है यथा- गुरू मुनि, (छहढ़ाला) संघपति, प्रमुख, गणधर, संघनायक. दीक्षा गुरू, कवि, कुलपति, प्रव्रज्यदायक (देव, शास्त्र, गुरू) अध्यक्ष (पंचाध्यायी) बृहस्पति (हरिवंश पुराण) यतिपति, सूर्य, दिस, मुनि नायक, मुनिनाथ, मनीषियों, के वेदिन, गणेश. गणींद्र (म.आ.) मुनि कुंजर (मु. पु. पंचाध्यायी स. ना.) अराध्य, (आ. शा.) ऋषि. मुनि (स.ह. कोश) ! शुचि बुध (कल्पद्रुम) इत्यादि अन्यत्र अनेक शब्द पाये जाते हैं।

यह काल, शास्त्र, क्षेत्र, के अनुसार अर्थ में भिन्नता पायी जाती है। आगम में व्याकरण की प्रधानता होती है। "शब्दात्पद प्रसिद्धिः पर सिद्धे रथेनिर्णयो भर्वति, अर्थान्तत्वज्ञांन, तत्वज्ञानात् पंर श्रेयंः अर्थात् शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद से अर्थ की सिद्धि होती, अर्थ से तत्व ज्ञान होता है और तत्व ज्ञान (हेयोपादेयज्ञान) से परम् कल्याण होता है। इस प्रकार आगम में हमारी आत्मा की समस्त त्रिकालवर्ती द्रव्य गुण पर्याय प्रतिभासित होती है इससे तीर्थंकर महावीर का आगम नाम की सार्थकता समझ में आ जाती है।

परम् पूज्य आचार्य परमेष्ठी श्री महावीर कीर्ति जी महाराज का सर्वप्रथम दर्शन फिरोजाबाद चतुर्मास में हुआ था तत्पश्चात् आगरा में दर्शन किया था। वहाँ पर उनका वरद आशीर्वाद मिला था। तदनन्तर बावन गजा में उनके चतुर्मास में गुरूदेव आचार्य विमल सागर जी महाराज के संघ के साथ चतुर्मास करने का अवसर मिला ! गुरू देव की आज्ञा

से उनके साथ विद्यायाध्ययन के लिए मैं और गणिनि आर्यका श्री 105 विजयमति माता जी रहें शास्त्राध्ययन तो किया ही साथ ही उनका अनुभव भी मिला ! उनकी डायरी में उनके गुरू के विषय में लिखा प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है- यथा श्री परम् पूज्य मुनिकुञ्जर समाधि सम्राट आचार्य श्री महा गुरू देवाधिदेव 108 श्री आदि सागर जी महाराज (अकंलीकर) के पास आर्य व निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी अतः मेरे लिए दिव्योपदेशामृतः "प्रायश्चित समुच्चय शास्त्र पढ़ने का तुमको अधिकार देते है"! तथा आगमानुसार चलना चाहिए अपना आचार्य पद चतुर्मास में दे दिया आचार्य श्री श्री श्री 108 आदि सागर जी महाराज गुरूदेव का जन्म अंकली ग्राम में फाल्गुन कृष्णा 13 सन् 1866 मुनि दीक्षा कुंथलगिरी में मंगसर सुदी-2 सन् 1913 में आचार्य पद श्रुत पचंमी सन् 1915 में समाधि ऊदँगाव कुँजवन में महाशिव रात्री फाल्गुन बदी 13 सन् 1944 में हुई थी ! वे वहुत तपस्वी थे ! गृहस्थवस्था में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज उनको आहार देते थे। उनसे ऐलक दीक्षा भी ली थी ! इत्यादि

प. पू. चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर समाधि सम्राट आचार्य परमेष्ठी श्री श्री श्री 108 आदि सागर जी महाराज (अकंलीकर) के पदाधीश आचार्य श्री 108 महावीर कीर्ति जी महाराज की समाधि महसाना गुजरात में हुई थी उससे 3 दिन पूर्व उपाध्याय, प्रवर्तक, गणधर, स्थविर, गणिनि पद क्रमशः श्री 108 श्री सन्मति सागर जी महाराज, श्री 108 नेमिसागर जी, श्री 108 कुन्थुसागर जी, 108 सम्भव सागर जी, श्री 105 विजयमति जी देकर अपना आचार्य पद मुझे दिया था ! उनकी तपस्या ध्यान, अध्ययन, साधना, आराधना जीवन के अन्तिम क्षण तक सावधानी पूर्वक रही ! वे प्रमाणिक, ज्ञायक दार्शनिक संयमी अध्यक्ष थे ! सासांरिक दुखों से बचने के लिए उनकी आज्ञा माननी चाहिए ! उन्होंने मुझे जड़ से चेतन या बहिरात्मा से अन्तरात्मा बनाया है ! वे वास्तव में सच्चे गुरू थे !

"मनीषियों का मननीय विषय"

प्र0 ग0 आ0 विजयमती माता जी
(शिष्या आचार्य विमल सागर जी महाराज)

सर्वज्ञ की वाणी निर्विवाद समीचीन अकाट्य एवं अविरोधी है। यह निःसंदेह है। भारतीय आचार्यों द्वारा कृत विवेचन में यदि कही विरोध पाया जाये तो उसे विरोधाभास ही समझना चाहिए। वर्तमान में कुछ भ्रमितविचार धारायें चल रही है। जिनके कारण धर्म और धर्मात्माओं के प्रति आत्मा विचलित सी हो रही है। इस विवादास्पद विषय का निराकरण के अभिप्राय से कुछ चुने हुए तत्वांशों को यहां उद्धत किया गया है। पाठक अवश्य अध्ययन कर समाध ान प्राप्त कर सकेंगे। अतः अवश्य इस निवंध को पढ़कर वितर्क बुद्धि से मनन का प्रयत्न करें।

आचार्य का स्वरूप

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की अधिकता से प्रधान पद प्राप्त करके संघ में नायक हुए है। जो मुख्य रूप से तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में मग्न है। और जो कदाचित धर्म के लोभी अन्य जीव याचक उनको देखकर राग अंश का उदय होने से करूणा बुद्धि हो तो धर्मोपदेश देते है, जो दीक्षा ग्राहक है उनको दीक्षा देते है, जो अपने दोषों को प्रकट करते है। प्रायश्चित विधि से शुद्धि करते है। मो0 प्र0 पृ0 3)

जिनको आचार्य पद प्राप्त हुआ है। वे संघ में रहे या एकाकी आत्मध्यान करें, अथवा एकाविहारी हो अथवा आचार्यों में भी प्रधानता को प्राप्त करके गणधर पदवी के धारी हों उन सबका नाम आचार्य कहते है। (मो0 प्र0 पृ0 4)

यहां ऐसा नियम नहीं है। कि पंचाचारों से आचार्य पद होता है। समभिरूढ़नय से पदवी कीअपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानना। (मो0 प्र0 पृ0 5)

"येषामेवैतानि न विद्यन्तेत एव मुनि कुंञ्जरः" जिनके ये अध्यवसान

नहीं है वे ही मुनियों में प्रधान है। याने मुनि कुञ्जर है वे ही मुनि श्रेष्ठ है। वे ही आचार्य है। (समयसार पृ0 270)

प्रधान व श्रेष्ठ समानार्थक शब्द है। जिसका अर्थ राजा होता है। (पदमचन्द्र कोष)

जैसे कुञ्जर चक्र के जाने दल को साज।
चार संघ नायक प्रभु, वन्दू सिद्ध समाज।।

ॐ ह्री अर्हं श्री जिनकुंजराय नमः अर्घ नि0।।35।। (सि0 पू0 8)

"तिपुरसो गणो" तीन पुरूषों के समुदाय को गण कहते हैं।

(ध. 13/5, 4, 26/93)

"ऋषि मुनि यत्यनगार निवहः संघः" अथवा ऋष्यार्यिका, श्रावक श्राविका निवहः संघः" अर्थत ऋषि, मुनि, यति, अनगार के समूह का नाम संघ है अथवा ऋषि आर्यिका, श्रावक-श्राविका के समुदाय का नाम संघ है। (भा0 पा0 टी0 7/225/1)

"स्यादेतत् संघों गणों वृन्दमित्यनर्थान्तरम्" अर्थात संघ, गण, समुदाय ये एकार्थवाची है (त0 रा0 वा0 9/13/5)

उपर्युक्त उद्धरणों से आचार्य परमेष्ठी के स्वरूप की व्याख्या तीन प्रकार से की है इसी प्रकार "कुञ्जर" शब्द के कई अर्थो में जिनके साथ प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार संघ समुदाय का वर्णन भी भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। यह विरोध सा दृष्टिगत होता है परन्तु सूक्ष्मता से विविध अपेक्षाओं-नामों की दृष्टि से सर्वज्ञ अविरोध ही है। इस प्रकार के प्रसंगों से जिनवाणी पर अश्रद्धा करना महान भूल है, भ्रम है। अतः सभी मान्य है। यदि सैद्धान्तिक विरोध नहीं है तो इसी प्रकार और भी निम्न प्रसंग विचारणीय है यथा-

"राजते प्रकृति रेजयतिइति या राजा राज सदृशी महार्द्धिको भन्यते" जो स्वयं सुशोभित होता है। अथवा प्रजा को शोभाय-मान करें वह राजा है अथवा राजा के समान जो महर्द्धिधारक है उनको भी राजा कहते है (भ0 आ0 421/613/19)

"गुरूभिराचार्यरन्यत्र वृहस्पतिना" अर्थात् गुरू, आचार्य और वृहस्पति एकार्थक है (ह0 पु0 पृ.0 18)

यहां गुरू, आचार्य और वृहस्पति यद्यपि विभिन्न पदधारी है तो भी

एकार्थवाची कहे है। क्यों ? क्योंकि मूल यह है कि ये तीनों शब्द एक सन्मार्ग प्रदर्शक है। आत्म हित साधक है। अतः अनेक होकर भी एक कहने में अविरोध ा सिद्ध है।

"अमितगति यतिपति" अर्थात अमितगति आचार्य,
"नेमिषेण मुनिनायक" नेमिषेण आचार्य।
"माधवसेनाहुऽजनि मुनिनाथो" माधवसैन आचार्य।
"मनीषिनोऽमित गतिः" आचार्य अमितिगति आचार्य
"श्री वसुनन्दि योगी" वसुनन्दि आचार्य।
"पुरोवेदिनः प्राचीन आचार्य (भ० आ० श्लोक 2240, 2242, 2243, 2244, 2271, 2273)

उपर्युक्त वाक्यांशों में यतिपति, मुनिनायक, मुनिनाथ, मनीषिण, योगी, वेदिनः शब्दों का अर्थ आचार्य किया है। इसी प्रकार मुनि कुञ्जर शब्द का अर्थ आचार्य श्रेष्ठकर प० पू० आ० चा० च० आदिसागर जी अंकलीकर को सम्बुद्ध किया है। अतः मुनि कुञ्जर सम्राट आदिसागर जी का अर्थ स्वयं निःसंदेह आचार्य करना प्रमाणित व अतियुक्त है।

"गुरू" आचार्य आराध्य (आ० शा० 141/134)
"गुरू" प्रवृज्या दाता, (मू० आ० पृ० 138)
"दिवि कुञ्जर" देव प्रधान (जिनेन्द्र देव) (य० च० 8/110)

"आचार्य तेइऽस्मदाचार्य" जिनसे आचरण ग्रहण किया जाता है उन्हें आचार्य कहते है (मू० आ० अ० 4) गुरू आचार्य गणधर का लक्षण गुरू का लक्षण (मू० आ० ज्ञानपीठ-विषयसूचि)

आचार्य दीक्षा प्राचयश्चित आदिदायक गुरू आचार्य होता है (दि० मु० पृ०23)

वाइय वसंभ आचार्य वृषभं वाचक वृषभं वाचक वृषभंआचार्य प्रधानं (मू० आ० 509/729)

"इन्द्रिय शिक्षा विधायी आचार्यः" इन्द्रियों को शिक्षा देने वाला (दमन

का उपदेशक) आचार्य होता है (भ0 आ0 188/409)

"दिसं आचार्य" दिस आचार्य एकार्थक है (भ0 अ0 2023/1775)

मुनि "मुनियोऽवधिमनः पर्यय केवल ज्ञानिनश्चः कथ्यन्ते– अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान वाले मुनि कहलाते है। (चा0 सा0 49/5)

"यति" यतयः उपशमक्षपक श्रेण्यारूढ़ां भण्यते" उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ साधू यति कहलाते है। (चा0 सा0 49/4)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैनागम अनेकान्त सिद्धान्तानुसार ही स्याद्वाद शैली से वर्णन करता है। कहां किस विषय की किस अपेक्षा से अर्थ योजना की जाये उसे दृष्टि में रखते हुए विभिन्न शब्दों या एक ही शब्द के अनेक अर्थो का विवेचन किया जाता है। अतएव जैनाचार्यों के जितने भी वाक्य है वे सापेक्ष है इसलिए र्निविरोध मान्य है किसी भी कथन से सापेक्षता के कारण विरोध खड़ा ही नहीं होता, उनमें पूर्वोपर विरोध की शंका करना ठीक नहीं है। मंद बुद्धि के कारण अथवा आम्नायके अनवबुद्ध होने से दो प्रकार के कथनों में अर्थात् एक विषय को दो आचार्यो द्वारा कुछ हेर फेर कहा गया एव लिखा गया हो तो उसमें विरोध नहीं समझना चाहिए क्योंकि यह विरोध नहीं विरोधाभास ही है। विरोधाभास ही समझना चाहिए (र0 च0 पृ0 147) इस प्रकार के कथनों में विरोध उपस्थित करने वालों के लिए जागृति प्रदान करते हुए निम्न प्रसंग दर्शनीय है।

आपके माता पिता के विवाह के अस्तित्व में क्या प्रमाण है ? और अपने वंश के पूर्व पुरुषों के अवस्थान को क्यों मानते हैं ? क्योंकि वे प्रमेय विषय आपके प्रत्यक्ष इन्द्रिय गोचर तो नहीं है। आप यदि अन्य प्रमाणित पुरूषों के कथन का आश्रय लेंगे तो आपका पक्ष खंडित जायेगा और परमत की स्वीकृति सिद्ध होगी (र0 च0 पृ0. 213)

थांदला में श्री 108 श्री श्री आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज से मुनि सुमितसागर जी, ऐ0 वाहुवली जी, ऐ0 श्री धर्मसागर जी महाराज क्षु0 श्री

पार्श्वकीर्ति जी महाराज क्षु0 श्री अजितकीर्ति जी के समक्ष में क्षु0 सुमित कीर्ति ने दीक्षा शुद्धि संस्कार की प्रार्थना की मार्गशीर्ष शुक्ला 11 शनिवार, रेवती नक्षत्र, मोक्षदा एकादशी प्रातः 8 से 10 के दीक्षा निष्पन्न हुयी। सेठ केशरीमल जी व उनकी धर्म-पत्नी इन्द्र-इन्द्रानी होकर पूजा की व सबको सुंदर ज्योनारदी। पौष शुक्ला 12 मंगलवार रोहिणी नक्षत्र में श्री 108 श्री श्री आचार्य सुधर्म सागर जी महोदयस्य समाधिः सिद्धा (खंडेलवाल जैन हितेच्छु पौष कृष्णा 2 वी. 2495 ता0 8 दि0 अंक 4 में मुद्रित वर्ष 1971

श्रमण, संयत, ऋषि मुनि, साधु, वीतराग, अनगार, भदन्त, दांत यति ये एकार्थवाची है। (जै0 श0 3/313)

ऋषि शब्देन आचार्य, मुनि, भण्यते। (पदमचन्द कोशे) मुनि शब्देन ऋषि भन्यते महामुनि शब्देन बड़ा ऋषि च (संस्कृत हिन्दी शब्द कोशे)

"वहुरि जब शिक्षा दीक्षा देने वाला मुनि होय तव आचार्य कहते है"-जब शिक्षा दीक्षा देने वाला मुनि होता है तब आचार्य कहलाता है। (मो0 पा0 104/349)

बहुरि सर्वदेश पर द्रव्यते निवृति रूप परिणाम होय तव सकल चारित्र रूप छट्ठा गुणस्थान कहिए, या में कछू संज्वलन चारित्र मोह का तीव्र उदय ते स्वरूप के साधने विषे प्रमादहोय है। ताते ताका नामः प्रमत्ते है। इहां तै लगाय उपरि के गुणस्थान वाले कूँसाधू कहियै है।" सर्वदेश ते पर द्रव्य से निवृतरूप परिणाम ही तव सकल चारित्ररुप छटा गुणस्थान होता है इसमें कुछ सन्जवलन चारित्र मोह के तीव्र उदय से स्वरूप के साधने में प्रमाद होता है। इसलिए इसका नाम प्रमत्त है। यहां से लगाकर ऊपर के गुणस्थान वालों को साधू कहते है। (मो0 पा0 109/340)

"तामै तीन पदवी होय" जो आप साधू होय अन्य कूँ साधू पद की शिक्षा दीक्षा दे सो तो आचार्य कहावै" इसमें तीन पद होते है- जो आप साधू होकर अन्य को साधू पद की शिक्षा दीक्षा दे, वह आचार्य कहलाता है। (मो0 पा0 109/352)।

"समणोत्ति संजदोत्ति य रिसिमुणि साधूत्ति वीदरागोत्ति, णामणि, मुविहिदाणं अणगार भदंत दंतोत्ति।। 889।।" उत्तम चारित्र वाले मुनियों के ये नाम हैं श्रमण, संयत, ऋषि, मुनि साधू, वीतराग अनगार, भदंत, दांत, यति (जैन श0 2/457)

उक्त जैनमित्र के पुराने लेख में पूज्य आदिसागर जी की 105 वर्ष में समाधि की बात लिखी गई है। वह असंगत प्रतीत होती है। कृपया देखें इसी अंक में ब्र0 रेवती दोशी के लेख में और चा0 च0 प्रथम संस्करण पृ0 115 (धर्ममंगल सेप्टम्बर 1994 पृ0-74)

उपर्युक्त उद्धरणों का तात्पर्य इतना ही है, कि आचार्य पद क्रियाओं के आश्रय से होते हैं। उनमें विवाद करना व्यर्थ है और धर्म मार्ग को अवरूद्ध करना है जिन शासन महान है, उदार है, इसमें संकीर्णता को महत्व नहीं दिया गया, पंचाध्यायीकार ने इसे वड़े सुगम, सरल रूप में, दर्शाया है।

यथास्त्येकः समान्यात्तद्विशेषात त्रिधा गुरूः।

एकोप्यग्निर्यथा तृणेः पार्णो दार्व्यस्मिधोच्यते।। 937।। प. अ. उ.

सामान्य रीति से एक ही गुरू है और विशेष प्रकार से तीन प्रकार के गुरू है, जैसे अग्नि यद्यपि सामान्य से एक ही है तथाऽपि तिनके की अग्नि और लकड़ी की अग्नि, इस प्रकार एक ही के तीन भेद हो जाते है। आचार्यः स्यादुपाध्यायः साधुश्चेतेमिधामतः।

स्युर्विशिष्ट पदारूढ़ास्मयोपि मुनि कुञ्जराः।।938।।

अर्थ : आचार्य, उपाध्याय और साधू (मुनि) इस प्रकार तीन भेद है, ये तीनों ही मुनिवर विशेष -विशेष पदों पर नियुक्त है अर्थात् विशेष विशेष पदों के अनुसार ही आचार्य, उपाध्याय और साधू संज्ञा है। (पंचाध्यायी उत्तरार्द्ध)

मुनिपने की अपेक्षा तीनों ही एक है। विशद व्याख्यार्थ पंचाध्यायी उत्तरार्द्ध की कारिका 939 से 944 तक देखें।

आचार्य संज्ञा अनादि है - नियत है। पंचपरमेष्ठियों की सत्ता

अनादिकालीन है, योगिक दृष्टि से भी आचार्य उसे कहते है जो कि दूसरों (मुनियों) को पांच प्रकार का आचार ग्रहण कराते है। अर्थात जो दीक्षा देवें वही आचार्य है। तथा जिस किसी साधू का व्रत भंग हो जाय और वह साधू फिर से उसको प्राप्त करना चाहें तो आचार्य उस व्रत को फिर से धारण कराते हुए उस साधू को प्रायश्चित देते है। अर्थात दीक्षा के अतिरिक्त प्रायश्चित देना भी आचार्यो का ही कर्त्तव्य है। आदेश उपदेश भी आचार्य ही देते है। इस प्रकार पदानुसार क्रियाकलापों को देखकर पदों का निर्णय करें तदनुसार विनयभक्ति व श्रद्धा करना चाहिए।
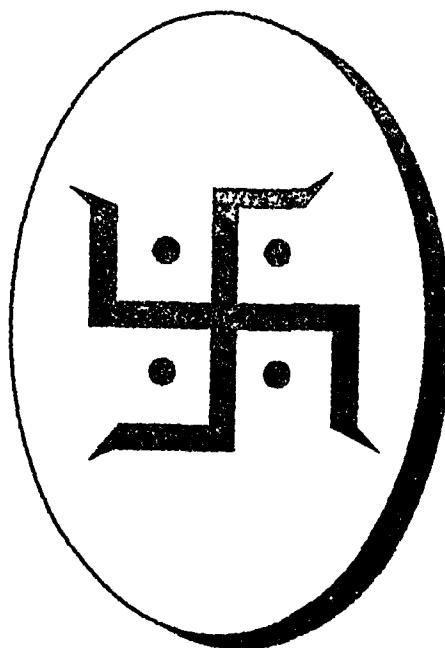
आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर)

जन्म : फाल्गुन कृष्ण तेरस सन् १८६६

आचार्य पद- ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी १६१५ जयसिंगपुर

समाधि : महाशिवरात्रि १६४४ कुंजवन उदगांव महाराष्ट्र

जन्म बैशाख १६६६ उदगांव महाराष्ट्र

आचार्य पद सन् १६४४

पट्टाधीश आ. सन्मतिसागरजी

समाधि ६ जनवरी, १६७२ मेहसाणा गुजरात

आचार्य महावीर कीर्ति जी

आचार्य सन्मतिसागर जी

जन्म संवत १६६५ फफोतु (उ.प्र.)

दीक्षा : २०१७ श्री सम्मेद शिखरजी

आचार्य पद : सं. २०२८ मेहसाणा गुजरात

परिचय
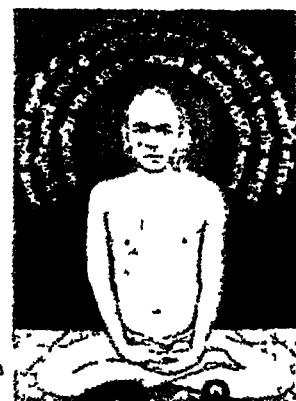
जन्म : २२ जुलाई, १६६३

स्थान : अरग ता, मिरज (सांगली) महाराष्ट्र

मुनि दीक्षा १६ मार्च १६६५ आमेर (राज०)

मुनि सूर्यसागर जी (अरगकर)